नववर्षाङ्क — जनवरी १९३२

वार्षिक मूल्य ६।।)] सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल [प्रति संख्या ।।=)

इस अङ्क का मूल्य १)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग से छप कर प्रकाशित

बालों का जीवन यानी

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

ईश्वर ने मनुष्यों को जो बाल दिये हैं, वे कुछ बेकार नहीं हैं, बल्कि उनकी देख-भाल करने की आवश्यकता रहती है। बालों की देख-भाल करने के लिए बहुत से लोग तेल इस्तेमाल करते हैं। परन्तु उनको यह ख़्याल नहीं रहता कि कौन सा तेल फ़ायदा पहुँचाने की ताक़त रखता है। जिस तेल में बालों को ख़ुराक पहुँचाने का तत्त्व नहीं है ऐसे तेल बजाय फ़ायदा के नुकसान पहुँचा देते हैं, इसलिए ऐसा निकृष्ट तेल बिना भरोसे का कदापि इस्तेमाल न करना चाहिए। बल्कि

जगत्-प्रसिद्ध

कामिनिया ऑईल (रजिस्टर्ड)

इस्तेमाल करें जो कि बालों की जड़ को पोषण देकर बाल को उगाने में मदद देता है। यह अमूल्य वनस्पतियुक्त तत्त्व से तैयार किया हुआ अत्यन्त उमदा व दिलख़ुश तेल है। बाल, दिमाग़ के लिए इससे मुफ़ीद दूसरा तेल तलाश करने पर भी आपको न मिलेगा। लाखों आदमी हमेशा इस्तेमाल करते हैं। आप भी आज ही मँगाकर आज़माइश कर लेवें।

मूल्य प्रति शीशी १) रु० डाक-व्यय ।≡)
,, तीन शीशी २॥=) डाक-व्यय १)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

पूर्वीय देशों का एक सुप्रसिद्ध सुगन्धित तोहफ़ा

OTTO DILBAHAR.

इसके चन्द बूँद अपने रूमाल पर छिड़क लीजिए, फिर इसकी आकर्षक सुगन्धि आपका पीछा न छोड़ेगी! इसमें ताज़े फूलों की मीठी ख़ुशबू वहक वहक रहती है!

इस सुन्दर मनोमोहक सुगन्ध की एक बार एक शीशी मँगवा कर आप परीक्षा करें, फिर तो आप इसे हमेशा अपने पास रक्खेंगे, और दूसरे इत्र का नाम न लेंगे।

मूल्य ½ औंस शी० २) रु०, पाव औंस शी० १।) रु०, १ ड्राम शीशी ॥।) आ०, ½ ड्राम शी० ॥) आ० ख़ुशबूदार कार्ड ॥=) दर्जन, डाक-व्यय अलग।

केवल दो आने का टिकट आने पर नमूना शी० मुफ़्त भेजी जाती है।

कामिनिया व्हाईट रोज सोप (रजिस्टर्ड)

इस साबुन को बदन में लगाते ही गुलाब की मधुर ख़ुशबू से तबीयत बाग़ बाग़ हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाईश करें।

मूल्य प्रति बट्टी ।-) ३ बट्टी का बक्स ॥।=) डा०ख़र्च अलग।

दिलबहार सोप (रजिस्टर्ड)

यह एक अजीब किस्म का साबुन बदन में लगाते ही, मोगरा, चमेली की मनोमोहक ख़ुशबू से तबीयत मुग्ध हो जाती है। एक बार अवश्य आजमाइश करें।

मूल्य प्रति बट्टी ।-) ३ बट्टी का बक्स ॥।=) डा०ख़र्च अलग।

सोल एजन्ट:—

दी एंग्लो इन्डियन ड्रग एन्ड केमिकल कम्पनी २८५ जुमा मसजिद मार्केट, बम्बई नं० २।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि, "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

क्या होगा ?
शीघ्र ही साहित्य-रत्न पं० लोकनाथ सिलाकारी
साहित्याचार्य-द्वारा सम्पादित
प्रेमा का "शृङ्गार-रसाङ्क" प्रकाशित होगा।
यह अङ्क आदि से अन्त तक आनन्द से सराबोर और रस
से चुहचुहाता हुआ होगा। शीघ्र ग्राहक बनिए।
हास्य-रसाङ्क
श्रीअन्नपूर्णानन्दजी के
सम्पादकत्व में
प्रकाशित हो चुका है। मूल्य ॥।)
शान्त-रसाङ्क
श्रीसम्पूर्णानन्दजी, बी.ए.एल.टी.
के सम्पादकत्व में
प्रकाशित हो चुका है। मूल्य ॥।)
इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में एक रस-कोष तैयार हो रहा है। अभी से संग्रह कीजिए। हास्य-रसाङ्क और शान्त-रसाङ्क की थोड़ी सी प्रतियाँ बच गई हैं।
जिसका आपको इन्तज़ार था वही
"उमर ख़ैयाम"
पुस्तक रूप में प्रकाशित होने के लिए प्रेस में भेज दिया गया।
अनुवादक श्रीकेशवप्रसाद पाठक, बी० ए०
इस अनुवाद के एक एक शब्द में जादू का असर है। पढ़ते जाइए अपने आप याद होता जायगा। चित्र क्या हैं चित्रकार ने हृदय निकाल कर रख दिया है। छपाई सफ़ाई सजधज में यह पुस्तक अपना सानी नहीं रखेगी। चित्र-संख्या लगभग बारह। मूल्य ४) चार रुपये।
विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा। शीघ्र आर्डर भेजिए।
मैनेजर प्रेमा—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, जबलपुर ब्रांच, जबलपुर

लेख-सूची

(१) वान्छा (कविता)—[श्रीयुत उमेश ... १
(२) फ़ेडरल सरकार—[श्रीयुत प्रभुदयाल मेहरोत्रा, एम० ए० ... ... २
(३) विडम्बना—[श्रीयुत केशवदेव शर्मा ... ६
(४) स्वराज्य में राजस्व-सम्बन्धी समस्यायें—[श्रीयुत दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ... १४
(५) कलकत्ते का भ्रमण—[श्रीयुत चक्रधर 'हंस' बी० ए० ... ... १८
(६) शुभ स्वागत (कविता)—श्रीयुत कुमार प्रतापनारायण कविरत्न ३६
(७) राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श और उसकी मूल-नीति—[श्रीयुत गौरीशङ्कर चटर्जी, एम० ए० ३८
(८) रक्षा—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव एम० ए० ... ... ४४
(९) गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक—[श्रीयुत नरसिंहराम शुक्ल ५१
(१०) साम्प्रदायिक शान्ति—[श्रीयुत रामप्रसाद पाण्डेय, एम० ए० ... ... ६६
(११) अमरता (कविता)—[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ७१
(१२) आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति—[श्रीयुत मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा ... ७३
(१३) स्नेहमयी—[श्रीयुत 'युगनेत्र' ... ७७
(१४) भारत और फ़िडरल-शासन—[श्रीयुत डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० ८४
(१५) शायद हम तुम फिर मिलें—[श्रीयुत श्रीनाथसिंह ९१
(१६) विरहिणी उर्मिला (कविता)—[श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त ९८
(१७) भारत की वर्तमान अवस्था—[श्रीयुत परमानन्द, एम० ए० ... ... ९९
(१८) किसान—[श्रीयुत ललिताप्रसाद सुकुल, एम० ए० ... ... १०६
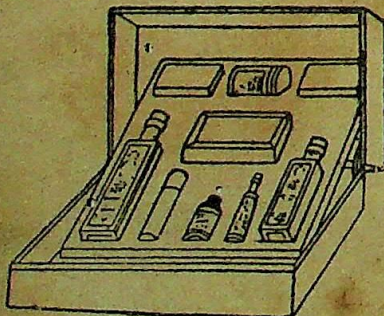
(१९) बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर—[श्रीयुत कुँवर हिम्मतसिंह साहित्यरञ्जन १११
(२०) क्या भारत पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ बनेगा?—[श्रीयुत रामधर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी० ... ... १२०
(२१) जिज्ञासा (कविता)—[श्रीयुत 'प्रणयेश' शुक्ल १२६
(२२) द्वन्द्व—[श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र... ... १२७
(२३) चारु चयन १३८
(१) शान्ति (कविता)—[श्रीयुत शिवनाथ मिश्र १३८
(२) शुक्र की सवारी—[श्रीयुत मुंशी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल-एल० बी० १३८
(३) महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री—[श्रीयुत ठाकुरदत्त मिश्र ... १४१
(४) साईमन-सवालों की स्वराज्य-कांक्षा—[श्रीयुत मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, बी० ए० ... ... १४३

(५) तुर्की और रोमन-लिपि—[श्रीयुत महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल ... १४६
(६) काव्यालङ्कारों की उपयोगिता—[श्रीयुत मुनीश्वर पाठक साहित्याचार्य ... १४९
(७) बैंक ऑव् इँग्लेंड का इतिहास—[श्रीयुत लक्ष्मीकान्त झा ... १५१
(८) शिकार — [श्रीयुत सन्तराम, बी० ए० ... ... १५३
(९) स्वप्न या अभिशाप—[श्रीयुत कालीचरण चटर्जी, बी० ए० ... ... १५६
(१०) रेशम का व्यवसाय—[श्रीयुत डाक्टर आर० एन० बंसीकर ... १५९
(११) मयङ्क (कविता)—[श्रीयुत महन्त धनराजपुरी १६२
(२४) विचार-विमर्श १६४
(१) रामचरितमानस के घाट—[श्रीयुत चन्द्रबली पाण्डेय १६४
(२) फलित ज्योतिष—[श्रीयुत हनूमान शर्मा १६९
(२५) मातृ-मण्डल—[श्रीमती जयदेवी १७४
(२६) पुस्तक-परिचय १७८
(२७) हास्य और विनोद— १८४
(१) तीन (कविता) [श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए० ... १८४
(२) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व—[श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल-एल० बी० ... ... १८४
(२८) अपनी बात १८६

—

चित्र-सूची

१—म नस्तों के······हवामहे (रङ्गीन)—मुखपृष्ठ
२-१६—कलकत्ते का भ्रमण-सम्बन्धी १५ चित्र १६-३४
१७—आसा दये पुन न करिय निराश (रङ्गीन) ४८
१८-२८—गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक-सम्बन्धी ११ चित्र ... ५२-६४
२९-३४—स्नेहमयी-सम्बन्धी ६ चित्र ... ७८-८३
३५-४८—बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर-सम्बन्धी १४ चित्र १११-११९
४९—स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री १२
५०—निठुर वालम्भु सञोलाओलसिनेहे (रङ्गीन) १४४
५१—जीवत यौवन सफल करी मानलु (,,) १६८
५२-५६—मातृ-मण्डल-सम्बन्धी ५ चित्र ... १७४-१७६
५७—श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त, 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी० ... १८५

सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ॥=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४) और प्रतिसंख्या का ॥=) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र "सम्पादक सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद", के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो दिया जायगा।

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

F. 2

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है।

पूर्व मध्य-कालीन भारत

अन्धकार में पड़ी हुई कुछ ऐतिहासिक सत्यताओं का वैज्ञानिक दिग्दर्शन, यत्र-तत्र बिखरी हुई सामग्री की निरुक्ति, इतिवृत्तात्मक समस्याओं पर गवेषणापूर्ण विचार, हिन्दू-मुसलिम-सभ्यताओं का संमिश्रण, पूर्व मुसलिम-काल की राजनैतिक समीक्षा, धर्म का राजनीति पर प्रभाव, मुसलिम-जड़ जमानेवाले सुलतानों के नैतिक चित्र, उनके आचार-विचार, रीति-नीति, आकांक्षाओं, सफलताओं तथा असफलताओं का विश्लेषण, आदि-आदि विषयों की विशद व्याख्या इस ग्रन्थ-रत्न की विशेषतायें हैं। श्रीमान् महाराजकुमार साहब श्रीरघुवीरसिंहजी बी० ए० एल्-एल्० बी० द्वारा लिखित यह ग्रन्थ धुरन्धर इतिहास-वेत्ताओं की कृतियों की समकक्षता रखता है। आज-कल मातृ-भाषा में ऐसे ग्रन्थ-रत्न दुर्लभ थे।

यह ग्रन्थ इंडियन प्रेस-द्वारा प्रकाशित होगया। इसका मूल्य लेखक के आज्ञानुसार लागत-मात्र ३) तीन रुपया है।

मैनेजर (बुकडिपो),
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

बाल-सखा का दिसम्बर वाला

विशेषाङ्क

जो नमूने के तौर पर मुफ़्त बाँटा जा रहा है;

एक बार छप कर बिलकुल बँट गया !

अब यह दुबारा छप रहा है

और छप जाने पर फ़रवरी तक उन सब लोगों के पास पहुँचेगा जिनके पास अभी तक नहीं पहुँचा।

बाल-सखा का जनवरी वाला

विशेषाङ्क

जो बहुत ही सज-धज के साथ निकल रहा है और जिसका मूल्य १) है

सिर्फ़ ग्राहकों को मुफ्त

दिया जायगा। जो ग्राहक नहीं हैं उन्हें यह विशेषाङ्क प्राप्त करने के लिए एक कार्ड भेजकर शीघ्र ग्राहक बन जाना चाहिए।

मैनेजर बाल-सखा, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद

समय है लाभ उठावें

कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कारक अमृतधारा, ५ दर्जन वैद्यक पुस्तकों के रचयिता, सम्पादक "देशोपकारक" तथा पुरुषों के गुप्त रोगों के विशेषज्ञ ने मनुष्य के शरीर को सोना बनानेवाली लगभग ६ दर्जन अकसीरें तैयार की हैं, जिनमें से किञ्चित् का वर्णन नीचे दिया जाता है। जो सविस्तर चाहें, वह "नपुंसकत्व" नामी पुस्तक आध आने का टिकट भेज कर बिना मूल्य मँगवा सकते हैं। मगर विद्यार्थी इसके वास्ते पत्र न भेजें।

अकसीर नं० १—यह पुरुषों के विशेष रोगों की उत्तम ओषधि है। शुक्रमेह को हितकर है, और निर्बलता को दूर करने के लिए अद्वितीय है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ।।)

अमृतधारी—उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त मूत्र में शक्कर आने के लिए एक ही ओषधि है; हर प्रकार के प्रमेह के लिए अद्वितीय है। मूल्य ३२ गोली ४), नमूना १)

अकसीर नं० ५०—उपरोक्त गुणों में अद्वितीय है। जगत् में कोई पौष्टिक ओषधि इसकी तुलना नहीं कर सकती है! पहली गोली ही अपना स्वास्थ्यदायक प्रभाव दिखाती है। अमीरों के वास्ते है। मूल्य १५ गोली ७), ८ गोली ४)

अकसीर नं० ११—शुक्रमेह, अनिद्रा इत्यादि को दूर करने के अतिरिक्त हृदय, मस्तिष्क, यकृत, आमाशय, मूत्राशय को भी बल देती है। मूल्य ६४ गोली १०), १६ गोली २।।) रु०, नमूना ४ गोली ।।=)

अकसीर नं० १२—विशेषकर शुक्र क्षीणता के रोगियों को हितकर है। तीसरे पहर को एक गोली खाने से उसी दिन प्रभाव होता है। मूल्य ६० गोली ३), २० गोली १), नमूना ।)

अकसीर नं० १४—प्रमेह तथा स्वप्नदोष नाशक है। चीप, लेस सबको लाभ होता है। मूल्य ३), आधा १।।)

अकसीर नं० १६—शुक्रमेह, स्वप्नदोष, प्रमेह, जीर्ण ज्वर, ज्वर के बाद की निर्बलता को दूर करनेवाली, आनन्ददायक, पौष्टिक, और हृदय मस्तिष्क को बल देनेवाली है। मूल्य ३२ गोली ४), नमूना १)

अकसीर नं० २०—वृद्ध को युवा और युवा को मल्ल बनाने के वास्ते यह योग शिवजी महाराज का निर्मित है, जो खाँसी, नजला, जुकाम, श्वास, पाण्डु आदि को भी हितकर है। मूल्य ६४ गोली ४), न ना ।।)

अकसीर नं० ३०—इससे वीर्य बहुत बढ़ता है। उसके पश्चात् पुंस्त्व बढ़ना आरम्भ होता है। मूल्य एक पाव २), नमूना ।।)

अकसीर नं० ३१—२० प्रकार का प्रमेह, या मूत्ररोग, अर्श, श्वास, अपाचन आदि को लाभकारी है। और शुक्रमेह को भी हितकर है। मूल्य ३२ गोली १), नमूना ।)

अकसीर नं० ३४—(क) शुक्रमेह के वास्ते अद्वितीय ओषधि है, मूल्य ३२ गोली २), नमूना ।।)

अकसीर नं० ३४—(ख) जो इसके अतिरिक्त हृदय, मस्तिष्क, मूत्राशय, यकृत, आमाशय आदि को बल देती है। मूल्य ३२ गोली ५), नमूना १।)

अकसीर नं० ३६—वीर्य को गाढ़ा करती और बढ़ाती है, मस्तिष्क को ताज़ा करती है, दृष्टि को बढ़ाती है। दूध में मिलाकर खाते हैं। मूल्य एक पाव २), नमूना ।।)

अकसीर नं० ४०—स्वप्नदोष की अद्वितीय ओषधि. विद्यार्थियों के लिए विशेषकर लाभकारी है। मूल्य ३२ गोली १) नमूना ।)

अकसीर नं० ५६—प्रमेह को दूर करनेवाला आनन्ददायक और पौष्टिक है। मूल्य ४), आधा २), नमूना ।।)

पत्र तथा तार का पता:—अमृतधारा ११, लाहौर

विज्ञापक—मैनेजर अमृतधारा औषधालय, अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड, अमृतधारा डाकखाना, लाहौर।

स्त्री-शिक्षा-विषयक उपन्यास और कहानियाँ

आज-कल स्त्री-शिक्षालयों से अल्प-शिक्षा प्राप्त कर निकलते ही बालिकाएँ हीन उपन्यासों और भ्रष्ट साहित्य के फेर में पड़ जाती हैं जिससे उनकी मानसिक उन्नति होना तो दूर रहा, उल्टा समय और धन, दोनों का अपव्यय होता है और प्रायः लोग स्त्री-शिक्षा के विरोधी बन जाते हैं। यदि आप अपनी बहू, बेटियों, बहनों और देवियों को यथार्थ में गृहलक्ष्मी तथा अपने घर को सोने की गृहस्थी बनाना चाहते हैं, तो नीचे लिखे उपदेशप्रद उपन्यास मँगा कर पढ़ने के लिए उनके हाथ में निःसङ्कोच दीजिए:—

षोडशी

बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय की लिखी हुई सर्वोत्तम शिक्षाप्रद षोड़श कहानियों का इसमें सङ्ग्रह है। कहानियाँ एक से एक बढ़ कर भावपूर्ण, हृदय-ग्राही और रोचक हैं। हिन्दी में एक-दम नई चीज़ है। पढ़ने पर ही मज़ा आता है। मूल्य १।)

सीता-बनवास

इसमें श्रीसीताजी के पवित्र चरित्र और अपूर्व त्याग तथा श्रीरामचन्द्रजी द्वारा गर्भवती सीताजी के परित्यक्त किये जाने की कथा विस्तार-पूर्वक बड़ी ही रोचक और करुण-रस-पूर्ण भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़-सुन कर आँखों में आँसू बहने लगते हैं और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह मुलायम हो जाता है। मूल्य ।।≈)

सुशीला-चरित

सुशीला का चरित स्त्रियों को बहुत कुछ शिक्षा दे सकता है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री को सुशीला-चरित्र पढ़ना चाहिए। इसके पढ़ने से अपने आप उन्नति करने की उन्हें इच्छा होगी। मनोरंजक इतना है कि बिना पढ़े छोड़ने का जी नहीं चाहता। मूल्य १॥)

तारा

लेखक ने इसे बँगला के "शैशव सहचरी" नामक उपन्यास के अनुकरण पर लिखा है। यह सामाजिक उपन्यास बहुत ही चित्ताकर्षक और मनोरञ्जक है। घटनाओं की विचित्रता पढ़ते ही बनती है। छपाई सफ़ाई उत्तम। मूल्य १)

पार्वती और यशोदा

इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा बढ़िया चित्र अङ्कित किया गया है कि समझते ही बनता है। इसके पढ़ने से स्त्रियों का स्वभाव बहुत कुछ सुधर सकता है। स्त्रियों के लिए ऐसे उपन्यासों की बड़ी आवश्यकता है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥≈)

सौभाग्यवती

पढ़ी लिखी स्त्रियों को एक बार यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। सौभाग्यवती सचमुच सौभाग्यवती ही है। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य ।)

लक्ष्मी

यह उपन्यास सामाजिक है। फलतः इसमें समाज के भले-बुरे सभी चित्र अङ्कित हैं। लक्ष्मी का चरित उच्च श्रेणी का है। वह बहुत अधिक सताई गई,—बदनाम की गई—किन्तु उसने अपने धर्म को नहीं छोड़ा। जिन्होंने उसके साथ बुरा व्यवहार किया उनकी भी उसने भलाई की। उधर विलासराय को देखिए जिसने किसी का भी, अपनी जान में, भला नहीं होने दिया। दूसरे का घर उजाड़ करके अपना ख़ज़ाना भरा और दूसरों की बहू-बेटियों को सदा कुदृष्टि से देखा। बड़े घर के लाड़ले लड़के, मुँह-लगे नौकर, चापलूस साथी और देवशङ्कर जैसा सच्चा मित्र—क्या करता है, यह इस पुस्तक में देख कर कहीं तो पाठक को विस्मित होना पड़ता है और कहीं खिन्न भी। यह उपन्यास बहुत बढ़िया है और अभी ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य सिर्फ़ ॥≈) दस आने।

पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग की
कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें

यों तो हमारे यहाँ की सभी पुस्तकें उत्तम और उपयोगी हैं, परन्तु उनमें से कुछ ऐसी हैं, जो हर एक हिन्दी-भाषा-भाषी के लिए उपयोगी हैं, और जिनका प्रचार घर घर में होना आवश्यक है। पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ हम कुछ ऐसी ही पुस्तकों की नामावली दे रहे हैं।

धार्मिक पुस्तकें

सचित्र हिन्दी-महाभारत—महाभारत हिन्दूसंस्कृति का सच्चा स्वरूप है। हिन्दूधर्म से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों का इसमें वर्णन है। रंग-बिरंगे और भावपूर्ण चित्रों की भरमार है। अब तक इसके ३० अङ्क प्रकाशित हो चुके हैं। प्रति अङ्क का मूल्य १।) और स्थायी ग्राहकों से १)

हिन्दी-महाभारत—महाभारत के अठारह पर्वों की कथा इसमें संक्षेप में लिखी गई है। भाषा बहुत सरल, सरस और हृदयग्राही है। सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) चार रुपये।

महाभारत-मीमांसा—महाभारत पढ़ते समय पाठकों के हृदय में जो जो शङ्कायें उत्पन्न होती हैं, इस पुस्तक में उन्हीं का समाधान किया गया है। महाभारत पढ़ने से पहले यह पुस्तक अवश्य पढ़ लेनी चाहिए। मूल्य ४) चार रुपये। महाभारत के ग्राहकों से केवल २॥) दो रुपये आठ आने।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—यह आदिकवि वाल्मीकि के रामायण का हिन्दी अनुवाद है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के चरित के सम्बन्ध में यही सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। मूल्य १०) दस रुपये।

रामचरितमानस (सटीक)—रामचरितमानस का यह संस्करण काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के प्रतिष्ठित सदस्यों द्वारा शुद्ध कराकर प्रकाशित किया गया है। रामचरित-मानस के जितने संस्करण आजकल मिलते हैं, यह उनमें सबसे अधिक प्रामाणिक है। टीका भी सरल है। मूल्य ६) छः रुपये।

विनयपत्रिका (सटीक)—गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में विनय-पत्रिका का स्थान बहुत उच्च है। इसमें गोस्वामीजी के विनय-सम्बन्धी पद्यों का संग्रह है। इसके टीकाकार हैं पण्डित रामेश्वर भट्ट। मूल्य ३) तीन रुपये।

ज्ञानयोग—इस पुस्तक में स्वामी विवेकानन्दजी के ज्ञानयोग-सम्बन्धी उन व्याख्यानों का संग्रह किया गया है जो उन्होंने योरप तथा अमेरिका में दिये थे। पुस्तक क्या है, सारे उपनिषदों तथा वेदान्त का सार है। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड का मूल्य २॥) है। दो रुपये आठ आने।

कविता-कहानी, नाटक और उपन्यास

संक्षिप्त सूरसागर—इसमें महाकवि सूरदास के पदों का संग्रह है। इसका एक एक पद भक्ति तथा प्रेम के रस से ओतप्रोत है। मूल्य २॥) दो रुपये आठ आने।

संक्षिप्त बिहारी—महाकवि बिहारी के दोहों का यह बहुत अच्छा संस्करण है। बिहारी की सतसई में जितने अधिक अश्लील दोहे थे, वे छाँट कर इसमें से निकाल दिये गये हैं। मूल्य १॥)

गङ्गावतरण— हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि श्रीयुत जगन्नाथदास रत्नाकर का लिखा हुआ यह एक खण्ड-काव्य है। संयुक्त-प्रान्त की हिन्दुस्तानी एकाडमी ने इसकी उत्तमता पर मुग्ध होकर रत्नाकरजी को ५००) का पुरस्कार दिया है। मूल्य १)

माधवी—यह ठाकुर गोपालशरणसिंह के चुने हुए कवित्तों का संग्रह है। ठाकुर साहब ने खड़ी बोली की कविता करने में कितनी सफलता प्राप्त की है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। शुद्ध खड़ी बोली में कवित्तों का प्रवर्तन ठाकुर साहब ने ही किया है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपये।

भारतेन्दु नाटकावली—वर्तमान हिन्दी के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटकों का यह संग्रह है। पुस्तक के आदि में एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें भारतेन्दुजी की जीवनी और उनकी रचनाओं की विशेषता पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य ३॥) तीन रुपये आठ आने।

गौरमोहन—यह रवीन्द्र बाबू के सुप्रसिद्ध उपन्यास गोरा का हिन्दी अनुवाद है। रवीन्द्र बाबू के उपन्यासों में यह सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। पुस्तक दो भागों में है। मूल्य ४) चार रुपये।

राजर्षि—यह भी रवीन्द्र बाबू के इसी नाम के बँगला उपन्यास का अनुवाद है। इसका कथानक ऐसा रोचक और शिक्षाप्रद है कि इसे पढ़ते पढ़ते हृदय की सारी दुर्भावनायें दूर हो जाती हैं, हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और एक निश्चल प्रेम का भाव उमड़ आता है। मूल्य १।) एक रुपया चार आने।

गल्पगुच्छ—इसमें रवीन्द्र बाबू की छोटी छोटी कहानियों का संग्रह है। कहानियाँ कितनी सुन्दर और भावपूर्ण हैं, इसके सम्बन्ध में लेखक का नाम ही यथेष्ट है। पुस्तक चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग का मूल्य ।।।) बारह आने हैं और शेष तीन भागों में से हर एक का १) एक रुपया है।

तीर्थयात्रा—यह सुदर्शनजी की चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। जिन लोगों ने सुदर्शनजी की कहानियाँ पढ़ी हैं, वे उनकी रचना-शैली पर मुग्ध हैं। मूल्य २) दो रुपये।

लेनदेन—शरद् बाबू के बँगला उपन्यास का अनुवाद है। उपन्यास की प्रशंसा के सम्बन्ध में शरद् बाबू का नाम ही यथेष्ट है। मूल्य २) दो रुपये।

पण्डितजी—यह शरद् बाबू के मास्टर साहब का अनुवाद है। इसमें कुलीनता, उच्च शिक्षा, द्विज और द्विजेतर, गाँव की भलाई और अपनी तरक्की, नई शिक्षा और मिथ्या अभिमान आदि के सम्बन्ध में बहुत ही विशद और रोचक विवेचना की गई है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

देहाती समाज—शरद् बाबू के इस उपन्यास में ग्राम्य जीवन का जैसा सुन्दर और रोचक वर्णन है वैसा शायद और कहीं भी न मिल सके। यह उपन्यास लेखक की अमर कीर्ति है। मूल्य २)।

बहू-बेटियों के उपहार में देने लायक़ पुस्तकें

आदर्श महिला—इस पुस्तक में सीता, सावित्री, दमयन्ती, शैब्या और चिन्ता आदि पाँच देवियों की जीवन-घटनाओं का सजीव वर्णन किया गया है। मूल्य २) दो रुपये।

सीता-वनवास—श्रीसीताजी के पावन चरित के सम्बन्ध में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बँगला में एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक लिखी थी, उसी का यह अनुवाद है। इस पुस्तक की एक एक पंक्ति करुण-रस से ओतप्रोत है। मूल्य ।।=) दस आने।

***बड़ी दीदी**—यह पुस्तक शरद् बाबू के बँगला-उपन्यास का अनुवाद है। इसमें एक हिन्दू-विधवा की करुण-कथा का वर्णन है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य १) एक रुपया।

शिशु-पालन—यह पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। इसमें प्रसूति-चर्या से लेकर बच्चों के पालन-पोषण के सम्बन्ध की सभी आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला गया है। मूल्य १।।) डेढ़ रुपया।

नीरोग कन्या—यह पुस्तक स्वास्थ्य-सुधार के सम्बन्ध में है। इसे पढ़ कर कन्याओं को तो अपना स्वास्थ्य सुधारने में सहायता मिलती ही है, साथ ही बड़ी और परिपक्व अवस्था की स्त्रियों के लिए भी यह लाभदायक है। मूल्य १) एक रुपया

विविध विषय की पुस्तकें

कोशोत्सव स्मारक-संग्रह—इस संग्रह में जिन जिन लेखों का सङ्कलन किया गया है उनका मनन करने से साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। इसके सम्पादक हैं रायबहादुर महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा। मूल्य ५) पाँच रुपये।

कर्मवाद और जन्मान्तर—(श्रीयुत हीरेन्द्रनाथ दत्त, एम० ए०, बी० एल०, वेदान्तरत्न की बँगला-पुस्तक का अनुवाद) मूल्य २।।) ढाई रुपये।

सौर-परिवार—डाक्टर गोरखप्रसाद डी० एस-सी० ए० आर० ए० एस० (छप रही है)। इसमें ६०० से भी अधिक चित्र होंगे और यह सबको रोचक प्रतीत होगा।

गुलिस्ताँ—शेख़शादी का गुलिस्ताँ फ़ारसी-साहित्य का एक उत्कृष्ट और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। कहानियों के रूप में इसमें ऐसी ऐसी उपदेशमय बातें लिखी गई हैं कि पढ़ कर तबीयत फड़क उठती है। यह पुस्तक उसी का अनुवाद है। मूल्य २) दो रुपये।

राज्य-विज्ञान—इस पुस्तक में राज्य-सम्बन्धी विषयों की विवेचना बहुत ही अच्छे और विस्तृत ढंग से की गई है। मूल्य २) दो रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

***परिणीता, नवविधान, अरक्षणीया तथा मझली दीदी आदि भी**—शरद् बाबू के सुन्दर उपन्यासों में हैं। ये उपन्यास क्या हैं, हिन्दू-समाज के जीते जागते चित्र हैं। इन्हें पढ़ते ही समाज की सारी कुरीतियाँ आँखों के सामने नाचने लगती हैं और उनका सुधार करने के लिए हृदय व्यग्र हो जाता है। प्रत्येक उपन्यास-प्रेमी को ।।) प्रवेश-शुल्क भेज कर शरद्ग्रन्थावली का स्थायी ग्राहक बनना चाहिए। इस प्रकार इस ग्रन्थावली के सभी उपन्यास पौने मूल्य में मिल सकेंगे।

इतिहास, राजनीति तथा भ्रमण

मौर्य-साम्राज्य का इतिहास—(श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालङ्कार) मौर्यकालीन भारत का यह सबसे अधिक प्रामाणिक इतिहास है। इसके लिए लेखक को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से १,२००) बारह सौ रुपये का मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक मिला है। मूल्य ५) पाँच रुपये।

योरप का इतिहास—(श्रीयुत भाई परमानन्द एम० ए०) इस पुस्तक में योरप का इतिहास बिलकुल मौलिक ढंग से और बड़ी छानबीन के साथ लिखा गया है। भाषा बहुत ओजपूर्ण तथा शैली आकर्षक है। मूल्य ४) चार रुपये।

फ़्रांस का इतिहास—फ़्रांस का इतिहास कितनी रहस्यमय घटनाओं से पूर्ण है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। वहाँ की राज्यक्रान्ति में अत्याचार-पीड़ित जनता ने जो उग्ररूप दिखाया था, एक सत्तात्मक वादियों को उनकी करनी का मज़ा चखाया था। उसका वर्णन इस ग्रन्थ की प्रभावशालिनी पंक्तियों में पढ़कर पाठकों को अपूर्व आनन्द मिलेगा। मूल्य केवल ३) तीन रुपये।

दुखी भारत—(स्वर्गीय लाला लाजपतराय) यह पुस्तक पढ़कर आप केवल भारत के स्वतन्त्रता-सङ्ग्राम में ही आगे न बढ़ेंगे, बल्कि संसार की विजय के लिए आपके हाथ में एक अमोघ अस्त्र आ जायगा। लालाजी की इस कृति ने सारे योरप में तहलका मचा दिया है। मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

हिन्दू-राज्य-तन्त्र—(महामहोपाध्याय श्री काशीप्रसाद जायसवाल, एम० ए० बार-एट-ला) इस ग्रन्थ में यह बात भली-भाँति प्रमाणित कर दी गई है, कि प्राचीन काल में भारतवासियों की शासन-व्यवस्था बहुत अच्छे रूप में थी। यह ग्रन्थ उन लोगों के लिए मुँहतोड़ जवाब है जो हमारे पूर्वजों को निरे असभ्य सिद्ध करने की चेष्टा किया करते हैं। मूल्य केवल ३॥) साढ़े तीन रुपये।

कौटिलीय अर्थशास्त्र-मीमांसा—अर्थात् कौटिल्य की राज्य-शासन-व्यवस्था (श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०, एल-टी०)—इस पुस्तक में राजनीति के अनन्य विद्वान् चाणक्य-द्वारा निर्दिष्ट राज्य-शासन-व्यवस्था पर सरलरूप से आलोचनात्मक विवेचना की गई है। इसे पढ़ने से पता चलेगा कि आधुनिक कूट-नीति, राजनीति और शासन-व्यवस्था की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बातें किसी समय भारतवासियों को भली भाँति मालूम थीं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

भूप्रदक्षिण—(श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर)—यदि देश-विदेश की बातें पढ़ कर व्यवहार-कुशलता और चतुरता प्राप्त करनी हो तो इस अमूल्य पुस्तक को मँगा कर अवश्य पढ़िए और थोड़े ही व्यय में अपूर्व मनोरञ्जन और साथ ही साथ ज्ञानसञ्चय भी कीजिए। मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

मैनेजर, (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि
मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः
सदमित्त्वा हवामहे—

श्वेताश्वतरोपनिषत्
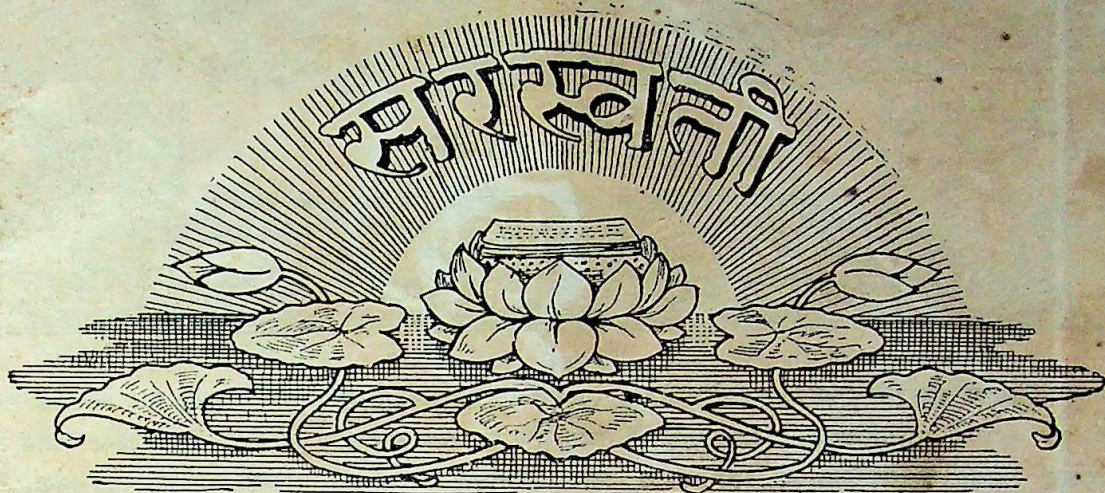
वार्षिक मूल्य ६॥)
Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ॥=)
As. 10 per copy.

भाग ३३, खण्ड १] जनवरी १९३२—पौष १९८८ [सं० १, पूर्ण-संख्या ३८५

—वाञ्छा

(१)

अति कमनीय सौम्य शिशु-सा स्वभाव मेरा,
सुन्दर हो शान्त हो सरस हो सरल हो।
मेरे करतल में ही सारे सुख का हो वास,
प्राप्त मुझे स्वीय सुकृतों का सदा फल हो।
पूर्ण ज्ञान का ही आभरण हो 'उमेश' मेरा,
गंगाजल-बिन्दु-सा पवित्र प्रतिपल हो।
मेरे शीश पर हो तुम्हारा कृपा-छत्र मेरी,
जीवन की रेखा चन्द्रलेखा-सी अमल हो॥

(२)

जब इस गात का सुयोग पञ्चतत्त्व से हो,
भूमि-भाग मिले हिम-अवनी निखिल में।
वारिधि में बूँद के समान वारि-सार मेरा,
लीन हो सहस्रधा के सुन्दर सलिल में।
गुप्त आरती के दिव्य दीप में हो अग्नि-तेज,
लुप्त वायु-अंश हो कैलाश के अनिल में।
व्योम-तत्त्व मेरा सम्मिलित हो तुम्हारे नाथ!,
मञ्जु मणि मन्दिर के अम्बर अखिल में॥

—उमेश

फ़ेडरल सरकार

[लेखक महोदय ने अपने इस लेख में फ़ेडरल सरकार का सङ्गठन बताया है ? इसके बाद लिखा है कि इस ढंग की सरकारें प्राचीन काल में यूनान, इटली तथा एशिया और रूस आदि देशों में थीं और इस समय उसका प्रचलन स्वीज़लैंड, अमरीका के संयुक्त-राज्य, जर्मन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका आदि देशों में है। उन्होंने इन देशों की सरकारों का थोड़े में रूप भी निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार उन्होंने अपने इस सुन्दर लेख में संसार में प्रवर्तित फ़ेडरल सरकारों का अच्छा परिचय दिया है।]

मनुष्य एक सामाजिक जीव है। वह समाज में रहना ही पसन्द करता है। पर मनुष्य समाज में तभी रह सकता है जब उसे यह विश्वास हो कि समाज में उसके अधिकार सुरक्षित रहेंगे; समाज के लोग एक दूसरे पर अत्याचार न करेंगे; और कोई अनुचित लाभ न उठायेगा। इन सब बातों की देख-भाल करने के लिए समाज में एक शक्ति की आवश्यकता होती है। अन्यथा मनुष्य मनमानी कर सकता है। ऐसी शक्ति को सरकार कहते हैं।

सरकार मुख्यत: दो प्रकार की होती है। जब समाज या देश का शासन एक ही केन्द्र से होता है और देश के भिन्न-भिन्न भागों के जिन्हें बहुधा प्रान्त कहते हैं, कोई निजी स्वतन्त्र अधिकार नहीं रहते तब ऐसी सरकार को यूनिटरी सरकार कहते हैं। ऐसी सरकार के अन्तर्गत प्रान्तों के अधिकार केन्द्रीय सरकार-द्वारा दिये हुए होते हैं। जब दो या दो से अधिक स्वतन्त्र तथा स्वाधीन राज्य आपस में मिलकर कुछ स्थायी लाभों के लिए एक केन्द्रीय सरकार को स्थापना करते हैं और अपने कुछ अधिकार उस केन्द्रीय सरकार को दे देते हैं तब उस प्रकार की सरकार को फ़ेडरल सरकार कहते हैं। फ़ेडरल सरकार में शासनाधिकार आपस में बाँट दिये जाते हैं। कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार के पास रहते हैं, कुछ अधिकार प्रान्तों के पास रहते हैं। शासनाधिकार बाँटने के दो ढङ्ग होते हैं। प्रथम ढङ्ग के अनुसार कुछ स्पष्ट तथा निश्चित अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं, शेष अधिकार प्रान्तों के पास रह जाते हैं। दूसरे ढङ्ग के अनुसार कुछ स्पष्ट तथा निश्चित अधिकार प्रान्तों को दे दिये जाते हैं, शेष अधिकार केन्द्रीय सरकार के पास रह जाते हैं। जो अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं उन अधिकारों के बारे में केन्द्रीय सरकार का सम्बन्ध न केवल उन प्रान्तों से किन्तु उन प्रान्तों के नागरिकों से भी सीधा रहता है। जो अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे दिये जाते हैं उन्हें छोड़ कर शेष अधिकार प्रान्तों के पास बने रहते हैं और उन बातों में वे पूर्णतया स्वतन्त्र तथा स्वाधीन होते हैं। फलतः नागरिकों को दो सरकारों

की आज्ञा माननी पड़ती है। कुछ बातों में वे अपने प्रान्त के शासन के अधीन होते हैं, कुछ बातों में वे केन्द्रीय सरकार के अधीन होते हैं। उन्हें दो के क़ानून मानने पड़ते हैं—प्रान्त का क़ानून एवं फ़ेडरल सरकार का क़ानून। उपर्युक्त दोनों भाँति की सरकारों में कौन श्रेष्ठ है? यह प्रश्न पूर्णतया निरर्थक है। किसी देश के लिए कोई सरकार अच्छी है, किसी देश के लिए कोई। सरकार की उपयोगिता तो देश या समाज की हालत पर निर्भर करती है। इँग्लेंड के लिए यूनिटरी सरकार अच्छी है, अमेरिका के लिए फ़ेडरल। अस्तु!

फ़ेडरल सरकार नवीन वस्तु नहीं है। संसार के प्राचीन इतिहास में इस सरकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन काल में यूनान का प्रत्येक नगर स्वतन्त्र तथा स्वाधीन था। प्रत्येक नगर एक राज्य होता था। इन नगर-राज्यों में आपस में एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न था। 'अपनी अपनी डफली अपना अपना राग' की कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती थी। इस प्रकार छोटे से यूनान-देश में सैकड़ों राज्य थे, जिनमें बहुधा आपस में एक दूसरे से युद्ध हुआ करते थे। इन राज्यों की शासन-प्रणाली भी भिन्न-भिन्न थी। किसी नगर में लोक-तन्त्र-शासन था, किसी में एकतन्त्र और किसी में शासन की बागडोर कुछ चुने लोगों के हाथों में थी। इसी यूनान-देश में प्राचीन काल में कई एक फ़ेडरल सरकारें थीं। थेसेली, ब्योटिया, अकारनेनिया, ओलिंपस, आरकेडिया, एटोलिया, एचेदया, ईटोलियन लीग और एचियन लीग आदि वहाँ के प्रधान फ़ेडरल सरकारें थीं।

ईटोलियन लीग की शासन करनेवाली कौंसिल एक स्थायी प्रतिनिधि-संस्था थी। एक आम सभा भी होती थी, जो बहुत अंशों में प्रतिनिधि-सभा भी थी। इसमें कोई भी पुरुष उपस्थित हो सकता था। प्रत्येक राज्य का एक ही सरकारी प्रतिनिधि तथा एक ही वोट होता था। यूनान में जितनी फ़ेडरल सरकारें थीं उनमें से उपर्युक्त लीग में अवश्य लोकतन्त्र था। फ़ेडरल अफ़सरों की पूरी योजना थी। प्रधान फ़ेडरल अफ़सर को सैनिक तथा सिविल दोनों अधिकार प्राप्त थे। यह अफ़सर प्रति वर्ष चुना जाता था। एचियन लीग भी सुसङ्गठित थी। प्रत्येक शहर अपने आन्तरिक मामलों में स्वाधीन तथा स्वतन्त्र था। उसमें भी फ़ेडरल अफ़सर होते थे। तमाम शहरों की सेनायें लीग के अधीन रहती थीं। फ़ेडरल ख़ज़ाना पृथक् होता था।

यूनान को छोड़ कर अन्य देशों में भी फ़ेडरल सरकारें होती थीं। लघु एशिया में भी एक फ़ेडरल सरकार थी, जिसमें तेईस शहर शामिल थे। एक कौंसिल शासन करती थी, जिसकी बैठकें समय समय पर होती थीं। ये बैठकें किसी एक नगर में न होती थीं। जब जिस नगर में सबसे अधिक सुबिधा होती थी तब उसी नगर में बैठक होती थी। शहरों के प्रतिनिधि एक से तीन तक होते थे। छोटे शहर का एक प्रतिनिधि होता था। बड़े शहर के तीन प्रतिनिधि होते थे। उसी भाँति ये शहर सरकारी ख़र्च का भार भी उठाते थे।

इटली के इतिहास में भी फ़ेडरल सरकार के उदाहरण मिलते हैं। उनमें सबसे प्रधान लेटियम् नगरों की लीग थी।

रूस में भी तीसरी और चौथी शताब्दियों में नीपर और नीस्टर नदियों के बीच में एक बलवान् जाति रहती थी, जिसे आन्टे कहते थे। इन लोगों का भी अपना एक फ़ेडरेशन था।

वर्तमान समय में स्वीजलेंड का प्रजातन्त्र सर्व-श्रेष्ठ फ़ेडरल शासन है। इसमें २२ राज्य शामिल हैं। शासन का कार्य दो धारा-सभायें करती हैं। बड़ी धारा-सभा में जिसे सिनेट या कौंसिल आफ़ स्टेट कहते हैं, प्रत्येक राज्य का समान प्रतिनिधित्व रहता है। छोटी सभा (राष्ट्रीय कौंसिल) के सदस्य जनता-द्वारा चुने जाते हैं—२०,००० पुरुषों पीछे एक सदस्य। उपर्युक्त दोनों सभायें 'फ़ेडरल ऐसम्बली'

कहलाती हैं। कार्य-कारिणी कौंसिल जिसमें सात सदस्य होते हैं, तीन वर्ष के लिए फ़ेडरल ऐसम्बली-द्वारा चुनी जाती है। इसका एक सदस्य साल भर के लिए फ़ेडरल ऐसम्बली-द्वारा ही कौंसिल का सभापति चुना जाता है। फ़ेडरल कौंसिल की दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। पहली बात तो यह है कि किसी एक राज्य का एक से अधिक प्रतिनिधि कौंसिल में नहीं रह सकता। दूसरी बात यह है कि यद्यपि यह फ़ेडरल ऐसम्बली के प्रति उत्तरदायी रहती है, तथापि इसके सदस्य किसी एक दल के नहीं होते और यदि इसकी नीति को धारा-सभा रद कर देती है तो कौंसिल त्याग-पत्र नहीं देती। आम तौर से इसके सदस्य वर्षों तक बार बार चुन लिये जाते हैं।

अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में भी फ़ेडरल सरकार है। प्रेसीडेन्ट चार वर्ष के लिए चुना जाता है और वह प्रजातन्त्र का उच्चतम शासक है। वह स्वयम् अपनी कैबिनट को नियुक्त करता है और बर्ख़ास्त करता है। कैबिनट के सदस्य अपने अपने विभागों की नीति और शासन के लिए धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी न होकर प्रेसीडेंट के प्रति उत्तरदायी होते हैं। वाइसप्रेसीडेंट जो सदा सिनेट का सभापति होता है, प्रेसीडेन्ट के मरने पर या उसके त्याग-पत्र देने पर प्रेसीडेंट होता है। वहाँ कांग्रेस ही उच्चतम धारा-सभा है। कांग्रेस में दो सभायें होती हैं। सिनेट में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि होते हैं, जो ६ वर्ष के लिए चुने जाते हैं। छोटी सभा में आबादी के लिहाज़ से प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि रहते हैं, जिनका कार्य-काल दो वर्ष का होता है। 'सुप्रीम-कोर्ट' उच्चतम अदालत होती है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश तथा आठ अन्य न्यायाधीश होते हैं। इनको प्रेसीडेंट जीवन भर के लिए नियुक्त करता है। पर इनकी नियुक्ति पर सिनेट की स्वीकृति अवश्य होनी चाहिए।

जर्मनी के शासन को भी फ़ेडरल ही समझना चाहिए। यद्यपि कुछ लोगों का कहना है कि जर्मनी का शासन फ़ेडरल नहीं कहा जा सकता। जर्मनी का उच्चतम शासक प्रेसीडेंट है, जो जनता-द्वारा सात वर्ष के लिए चुना जाता है। प्रेसीडेंट सदा विशेष बहुमत-द्वारा ही चुना जाता है, और जब प्रथम चुनाव में किसी एक उम्मेदवार के पक्ष में विशेष बहुमत नहीं रहता तो चुनाव फिर होता है। पार्लामेंट में दो सभायें होती हैं। बड़ी सभा को रीचसरैट कहते हैं। रीचसटैग छोटी सभा का नाम है। बड़ी सभा में जर्मनी के तमाम राज्यों और स्वतन्त्र नगरों के प्रतिनिधि रहते हैं। ये प्रतिनिधि सदा राज्यों के मन्त्रि-मण्डलों से लिये जाते हैं। प्रतिनिधियों की संख्या राज्यों की आबादी पर निर्भर करती है—१० लाख की आबादी पीछे एक प्रतिनिधि। पर यदि किसी राज्य की आबादी १० लाख से कम हो तो भी उसका एक प्रतिनिधि बड़ी सभा में अवश्य होता है। और किसी राज्य के प्रतिनिधियों की संख्या सभा के दो तिहाई से अधिक नहीं हो सकती, चाहे उसकी आबादी कितनी ही अधिक क्यों न हो। छोटी सभा के सदस्य चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इनकी संख्या निश्चित नहीं रहती। सदस्यों की संख्या चुनाव के समय पड़े हुए वोटों पर निर्भर करती है। प्रत्येक साठ हज़ार पड़े हुए वोटों के पीछे एक सदस्य चुना जाता है। ये सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर चुने जाते हैं। जर्मनी के चुनाव एक विशेष योजना के अनुसार होते हैं, जिसे बेडन-योजना कहते हैं और जो सन् १९२० से जर्मनी में जारी है।

कनाडा की सरकार भी फ़ेडरल है। यहाँ की पार्लामेंट की भी दो सभायें होती हैं। बड़ी सभा को सिनेट कहते हैं। इसके सदस्यों को राजा नियुक्त करता है। छोटी सभा को हाउस आफ़ कामन्स कहते हैं, जिसके सदस्य भिन्न-भिन्न प्रान्तों-द्वारा उनकी आबादी के अनुसार चुने जाते हैं। गवर्नर-जनरल

को राजा पाँच वर्ष के लिए नियुक्त करता है। फ़ेडरल सरकार के तमाम मामलों में वह राजा का प्रतिनिधि माना जाता है। प्रान्तों के गवर्नरों को गवर्नर-जनरल नियुक्त करता है। प्रान्तीय पार्लमिंटें अपने अपने प्रान्तों के लिए क़ानून बनाती हैं।

आस्ट्रेलिया में भी सन् १९०१ में फ़ेडरल सरकार की स्थापना की गई थी। आस्ट्रेलिया और कनाडा की फ़ेडरल सरकारों के अधिकारों में एक उल्लेखनीय अन्तर है। कनाडा की फ़ेडरल पार्लामेंट को उन सब बातों का अधिकार है जो स्पष्ट रीति से प्रान्तीय पार्लमिंटों को नहीं दिया गया है। आस्ट्रेलिया की फ़ेडरल पार्लमेंट को केवल उन्हीं बातों पर अधिकार है जो इसे स्पष्ट रीति से दिया गया है। शेष बातों पर वहाँ के राज्यों का अधिकार रहता है। आस्ट्रेलिया में यह सिद्धान्त पूर्णतया माना गया है कि पार्लामेंट की एक सभा में राज्यों का समान प्रतिनिधित्व होना चाहिए। कनाडा में यह सिद्धान्त पूर्णतया नहीं माना गया है।

बहुत वर्ष पूर्व दक्षिणी अफ़्रीका के उपनिवेशों में भी फ़ेडरल सरकार को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया था। इसी लिए सन् १८७७ में एक क़ानून भी पास किया गया था। यह क़ानून अभी कार्यान्वित भी न होने पाया था कि सन् १८८२ में इसका अन्त हो गया। पर सन् १९०८ में एकता-आन्दोलन ने अफ़्रीका में ज़ोर पकड़ा। फलतः सन् १९०९ में दक्षिणी अफ़्रीका-क़ानून-द्वारा अफ़्रीका में फ़ेडरेशन के स्थान पर एक सङ्घ की स्थापना की गई। यद्यपि कुछ बातों में फ़ेडरल की विशेषतायें भी रख ली गई थीं।

अभी तक जानबूझ कर मैंने इस लेख में भारतवर्ष का ज़िक्र नहीं किया है। भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास में फ़ेडरेशन के उदाहरण समय समय पर मिलते हैं। इस समय भी भारतवर्ष में फ़ेडरल सरकार की स्थापना करने का भगीरथ प्रयत्न किया जा रहा है। पर मार्ग इतना सुगम नहीं है जितना कुछ लोग समझते हैं।

—प्रभुदयाल मेहरोत्रा

विडम्बना

मंसूरी में जितनी स्वच्छ और रम्य सड़कें हैं, उतनी ही एक तंग और गन्दी गली भी है। उसके एक तरफ़ घाटो है जहाँ कूड़े और राख के ढेर लगे रहते हैं, दूसरी तरफ़ मकान हैं जहाँ अंडे और सड़े हुए फल बिका करते हैं। यहीं एक चार खन के ज़्यादातर टीन और लकड़ी के बने हुए जीर्ण दुर्गन्ध-युक्त मकान में अब्दुल्ला की दूकान थी।

वह दर्ज़ी था। सड़क के पास सबसे नीचे की मंजिल में उसकी एक कोठरी थो। मुश्किल से आठ-दस फ़ुट चोकोर भूमि होगी। उसी में जहाँ एक ओर उसकी कपड़े सीने की पुराने ढंग की मशीन और कपड़ों का एक संदूक़ रक्खा था वहाँ दूसरी तरफ़ एक खाट भी बिछी हुई थी, जिस पर उसका एक अठारह वर्ष का भतीजा अहमद सोता था। रात को सोते समय वह अपने बने-अधबने वस्त्रों को उस बाक्स में भर देता था और फिर उस गर्म जगह पर आप सो जाता था। बचे हुए स्थान पर उसके कुछ एल्यूम्यूनियम और तामचीनी के पुराने बर्तनों का अधिकार था। एक अँगीठी थी, जिसका तला बहुत दिन हुए अपनी आयु समाप्त कर चुका था, और अब अब्दुल्ला के जीवन की भाँति कोयलों से शनैः शनैः गिरती हुई खाक को वह अपने अन्दर नहीं रख सकती थी।

फिर भी रात्रि होने पर जब आस-पास के दो-तीन कुँजड़े, एक टीन के बर्तनोंवाला और एक तम्बाकू-वाला जो उस समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति था, आकर बैठक जमाते थे तब न जाने दिन भर उसके घर को एक गन्दा दृश्य बनाये रखनेवाली सब वस्तुएँ कहाँ किनारा कस जाती थीं। एक मैली दीवार सेलेकर दूसरी मैली दीवार तक चेहरे ही चेहरे दिखाई पड़ते थे।

अब्दुल्ला की दूकान यहाँ चौदह वर्ष से थी, किन्तु ग्राहक-मण्डल बहुत ही परिमित था। रोज़ के बैठनेवालों को छोड़कर और कुछ ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें कपड़े बनवाने की आवश्यकता कभी न कभी पड़ जाती थी और वे अब्दुल्ला को ही उस कार्य के योग्य समझते थे। कम आयुवाले ज़रा शौक़ीन मिजाज़ लोग उसके यहाँ कभी न आते थे। वह पुराने फ़ैशन का दर्ज़ी था। वह यह नहीं समझता था कि कपड़े बनाने में भी विशेषता होती है और सभी दर्जियों में नहीं होती है। दस वर्ष की आयु से जिस प्रकार वह सुई-क़ैंची और मशीन चलाता आया है, उसी प्रकार अब भी चलाता रहता है। जिस तरह तब वह सारे दिन कपड़े और टाँकों पर दृष्टि गड़ाये रहता था, वही वह अब भी करता है। अपने ग्राहकों को किसी नवीन कट या फ़ैशन के द्वारा ख़ुश करने का उसे कभी विचार ही नहीं हुआ। उसके मस्तिष्क में उतना आविष्कार, उतनी स्फूर्ति थी ही नहीं। उत्साह या नवीनता ने

कभी उसके जीवन को आलोकित किया ही नहीं। उसके ख़याल में ही कभी यह बात न आई कि उसके काम और जीवन में कुछ सुधार हो सकता है, या वह बुरा भी है। बहुत दिनों से रहते-रहते वह स्वयं भी उस अँधेरी कोठरी का एक भाग हो गया था। वर्ष भर में ऐसे बहुत कम दिन होते थे जब वह अपने जवानी के ढीले खाकी कोट और छोटे छोटे काँचों के हास्यास्पद चश्मे को चढ़ा कर बाज़ार में घूमने निकलता था। उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया था। सुन्दर और सजीली सड़कों की चमक से उसका निर्बल हृदय भयभीत-सा होता था, आँखें घबराती-सी थीं। दिया जले बाद उस तम्बाकूवाले के आग्रह से यदि कभी चला भी जाता तो अशान्ति और चञ्चलता से ग्रस्त उसका खिन्न हृदय बार-बार उसे उसके कृत्य के लिए धिक्कारता था। वह मन ही मन दुखी होता और पछताता था, पर मुँह से कुछ न कहता था। किसी अद्भुत वस्तु के दिखाने पर वह तम्बाकूवाले की ओर देखकर एक सूखी हँसी हँस देता था। आख़िर वह तम्बाकूवाला भी उसकी उदासीनता और जड़ता से उकता कर शीघ्र ही उसे घर लौटा लाता और उस दिन अपनी सन्ध्या को नष्ट हुई समझता।

अब्दुल्ला किसी विषय पर अपनी कोई निजी सम्मति न रखता था। अमुक कार्य इस प्रकार क्यों होता है? उस तरह क्यों नहीं होता? यह क्यों आवश्यक है? इसके बिना क्या होगा? यदि कहीं ऐसा हो सकता? इस तरह के प्रश्न उसकी विचार-सीमा से बहुत परे थे। संसार और उसमें अपने जीवन को जैसा उसने पाया वैसा ही मंज़ूर कर लिया। सुधार के लिए भाग्य से उसने कभी आन्दोलन नहीं खड़ा किया। उत्सुकता और कुतूहल के भावावेश से भी वह बिलकुल अनभिज्ञ था।

जिस मशीन पर उसने अपनी आयु भर काम किया था उसके बारे में भी उसने कभी यह न जानना चाहा कि वह कपड़ा सी कैसे देती है। मशीन का व्यक्तित्व भी उसके हृदय में एक विशेष स्थान रखता था। उसका रहस्य उसने अज्ञेय समझ रक्खा था। वह उस मशीन से ऐसा व्यवहार रखता था, मानो उसमें आत्मा हो और वह बुरा-भला मानने का विचार भी रखती हो। उसने उसके लिए भिन्न-भिन्न रंगों की कई खोलियाँ बनाई थीं और समय-समय पर उसे उन्हें पहने देखकर बहुत ख़ुश होता था। यदि उसमें कभी कुछ ख़राबी हो जाती थी तो धीरे-धीरे खोल कर उसे देखता और एक एक करके अपनी सारी पाँचों-छहों युक्तियों को क़ायदे से आज़माता। एक एक स्क्रू खोलने के पहले कई बार उस स्थान पर झुक झुककर विवशता और दुखभरी दृष्टि डालता, फिर वहाँ अपना पेचकस रखता था। कैसी विडम्बना है? इस पर भी कभी कभी वह ठीक न होती थी। बेचारा निराश होकर अपनी कुहनियों को घुटनों पर रख कर और सिर को अपने दोनों हाथों में लेकर, खिड़की के उजाले के नीचे बैठ जाता। उसका सारा दिन फिर चिन्ता और उदासी के सन्नाटे में ही गुज़रता था। रात को जब वह टीनवाला आता था तब विवश होकर अब्दुल्ला अपनी प्यारी मशीन को उसके सामने रख देता था। किन्तु जब वह मिस्त्री बड़ी निश्चिन्तता और अधिकार से मशीन के अन्तराल में अपना निर्दय पेचकस घुमाता था तब अब्दुल्ला के सोते हुए दुबले चेहरे की लकीरें क्षण-क्षण में बदलती रहती थीं। मानो लोहे का वह औज़ार मशीन के किसी दोष को नहीं बल्कि अब्दुल्ला के कायर कलेजे को ढूँढ़ रहा है।

इस मशीन के समान ही उसकी ममता का अधिकारी एक और भी था। वह था उसका भतीजा जो उसकी तिल-मात्र भी परवा न करता था और जिसकी छोटी किन्तु सख़्त खाट हर समय उस कोठरी में अपने चारों पैर जमाये रहती थी। उसका नाम अहमद था। बचपन से ही आवारा लड़कों से उसका साथ रहा था। उसका चरित्र यद्यपि अभी कुछ बन नहीं चुका था, तथापि आसार अच्छे न

थे। ख़ूब खा-पीकर सुबह घर से निकलता तो रात को सूरत दिखाता। कभी कभी इसमें भी नागा हो जाता था। एक दिन किसी ने अब्दुल्ला से शिकायत की कि तुम्हारा लड़का दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा है। रोज़ दूर दूर के झरनों पर जाकर शराबें उड़ती हैं।

अब्दुल्ला बचपन में उसे बहुत प्यार करता था, इसलिए कभी कुछ न कहता था। पर इधर दो-तीन वर्ष से असल में वह उससे कुछ भय खाने लगा था। फिर भी यह शिकायत सुनने पर उसने उसे फटकार कर लज्जित तो किया, किन्तु बिना उसका उत्तर पाये ही शीघ्र ही नम्र भी पड़ गया और उसे समझाने लगा। अहमद शायद अब्दुल्ला को अच्छी तरह जानता था। उसने बहुत ही थोड़े से शब्दों में उसे यह अच्छी तरह समझा दिया कि ये सब झूँठी बातें हैं, परन्तु अपने समय के उपयोग या दुरुपयोग का हिसाब देने की अब भी उसने कुछ आवश्यकता न समझी, न अब्दुल्ला ने ही इस विषय में कुछ तर्क किया।

इसी प्रकार बिलकुल भिन्न प्रकृति के दो यात्रियों को लिये हुए यह नौका संसार का सफ़र कर रही थी। और यदि एक साधारण सी घटना बीच में ही न हो जाती तो शायद कुछ दिन और इसी तरह निकल जाते।

संध्या हो रही थी। सूर्य डूबने में कुछ देर थी, बादल भी घिर रहे थे, परन्तु मेह न था। लोग डर से घर के बाहर न निकलते थे। न जाने कहाँ टूट पड़े, पहाड़ी मेह ठहरा। अब्दुल्ला की गली में सिवा प्रातःकाल के जब उसमें आम के व्यापारी गला फाड़ फाड़कर अपनी टोकरियों के नीलाम की बोली बोला करते थे, प्रायः हर समय सुनसान रहता था। इस समय तो वहाँ बिलकुल ही सन्नाटा था, कीच भी काफ़ी हो रही थी। कोठरी में अँधेरा होने के कारण अब्दुल्ला से काम भी न होता था। दिन पर दिन गिरती हुई आँखों की नज़र और उँगलियों के पोरुओं पर ठीक ठीक क़ाबू नहीं, तिस पर भी सुई का काम ठहरा। दिया जलाने के नित्य के समय में अभी दो घंटे की देरी थी, इसी लिए लैम्प के तीन दिन के तेल को दो दिन में ही समाप्त करना भी उसकी नीति के प्रतिकूल था। परन्तु एक बार जब सुई इतनी चुभ गई कि उस सूखी उँगली पर भी रक्त की एक बूँद चमक आई तब उसने काम उठा कर रख दिया और दरवाज़े पर आकर बादलों की ओर देखने लगा। अँधेरा होता आ रहा था। ख़ूब ठंडी हवा चल रही थी। उसे सर्दी-सी मालूम पड़ने लगी। मन में आया कि ओढ़ कर कुछ देर लेट रहूँ। किन्तु इसी समय गली की मोड़ पर उसे कोई आता हुआ दिखाई पड़ा। और जब वह असाधारण राही अब्दुल्ला के सम्मुख ही आकर खड़ा हो गया तब तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

चूड़ीदार पायजामा और अचकन पहने हुए, सिर पर जाली की ऊँची टोपी लगाये वह एक भद्र पुरुष जान पड़ता था। उसकी लम्बी काली दाढ़ी में कहीं कहीं सफ़ेद लकीरें मालूम पड़ती थीं, परन्तु चेहरे पर दमक थी। पोशाक सादी होते हुए भी उसे काफ़ी रोबीला बनाये हुए थी। मालूम होता था, पुरानी सभ्यता में वह अमीर रह चुका है।

अब्दुल्ला ने पूछा—क्या आप कोई कपड़ा सिलवायेंगे? आगन्तुक ने कहा—नहीं, सिलवाना तो नहीं है। फिर बग़ल से एक छोटा सा बंडल निकाला और कमख़ाब की एक पुरानी जीर्ण वासकट खोल कर कहा—सिर्फ़ इसकी मरम्मत करवानी है। कई दिन से सोचता था किसी पुराने दर्ज़ी को इसे दूँगा, पर मौक़ा ही न मिलता था। अब परसों ही इसकी ज़रूरत है। इसी लिए आज लाना पड़ा। आज-कल के ये नये दर्ज़ी इन कपड़ों की क़द्र नहीं जानते।

अब्दुल्ला ने कुछ देर तक ग़ौर से वासकट को देखा। ऐसा कपड़ा पहले उसके देखने में कभी न आया था। काम साधारण था, पर उसे अपने ऊपर भरोसा न होता था। ऐसे कपड़े पर वह सुई चला

सकेगा ? साहस का उसके चरित्र में एक-दम अभाव था। स्वाभिमान का भी उसके हृदय ने कभी अनुभव नहीं किया था, परन्तु आज उस मरम्मत के काम के लिए भी नहीं कर देने में उसे कुछ ग़ैरत-सी मालूम पड़ने लगी। वासकट ले ली। आज पहली पर उसे किसी विशेष आयोजन के भार का अनुभव हुआ।

दूसरे दिन सब काम छोड़ कर वह उसी वासकट में लगा रहा। उसमें उसे कुछ विशेष आनन्द-सा आने लगा। खाना-पीना भी उसे उस दिन विघ्नकर जान पड़ा। इधर वासकट में काम निकलता ही चला जाता था। परन्तु अब्दुल्ला अथक होकर उसमें रत हो रहा था। उसे इसकी तनिक भी चिन्ता न होती थी कि काम बढ़ रहा है। ऐसी तन्मयता, ऐसा विस्मरण उसे कभी न हुआ था। उसके मन में यह एक अव्यक्त भाव पैदा हो गया था कि यदि यह कार्य कभी समाप्त ही न हो तो अच्छा। मानो उसे अपने जीवन की प्रतिभा का कुछ आभास मिल गया हो।

दिन छिप कर अँधेरा हुए तीन घंटे हो गये। अब्दुल्ला की धुएँ से रँगी हुई पुरानी लालटेन उसके सामने जल रही है। पास ही उसकी पीली रोशनी में किसी दार्शनिक की भाँति सिर झुकाये अब्दुल्ला वासकट को देख रहा है। जैसे वह उसके किसी रहस्य में उलझ रहा हो। एक तरफ़ देखकर फिर दूसरी ओर जाँचता। कल सुबह ही उठकर वह किधर से काम शुरू करेगा ? फिर इतने भाग को वह कब तक समाप्त कर सकेगा ? पूरा होने पर यह कैसा दिखाई पड़ेगा ? साथ ही वह उसे यदि इस प्रकार बदल दे तो बड़ा सुन्दर हो। कहीं ऐसा न हो कि यह कपड़ा यहाँ से खुल जाय। यह भाग अगर किसी तरह ज्यादा कट गया तो ? वासकट कुरूप हो जायगी। क्या कल यह पूरी हो जायगी ? फिर ? इसके बाद ? 'वह' ले जायगा ? इस विचार से उसका मन एक-दम गिर गया। उसे अपना काम निरुद्देश, निस्सार-सा जान पड़ा। पर ऐसा हुआ क्यों—वासकट का मालिक उसे लेता ही—यह वह ज़रा भी समझ न सकता था। वेदना थी, पर उसका स्थान न था।

वासकट के तरह तरह के विचार लैम्प के असंख्य भुनगों की तरह उसके सुनसान मस्तिष्क में चक्कर लगा रहे थे, जिनका न कोई आधार था न क्रम। वासकट का सुनहरी बूटियोंवाला काला कपड़ा उसके लिए एक सघन वन हो गया। एक के बाद एक काल्पनिक समस्या उसे आकर ग्रसती और छोड़ती थी। उत्सुकता और प्रेम, क्षोभ और व्याकुलता का उसे एक विचित्र अनुभव हो रहा था। वह यह भी भूल गया कि समय क्या हो गया है और उसे सो जाना चाहिए। मेंह का शब्द जब एकाएक बन्द हो गया और गिरजे की घंटी ने टन टन करके उसके कानों में अपना शब्द भरा तब उसे ख़याल आया। एक लम्बी साँस लेकर अपना सिर उठाया। कुछ देर चुपचाप बैठकर फिर लालटेन बुझाई और सो गया।

सो गया पर नींद उस दिन अच्छी तरह नहीं आई। उसका अशान्त मन अब भी वासकट के ही भ्रमजाल में फँस रहा था। बड़ी बड़ी विचित्र घटनाओं और वस्तुओं को पीछे लगाये हुए वह वासकट उसकी आँखों के सामने घूमती थी। अनेक भयानक और मनोरम दृश्यों में वह पार्ट ले रही थी। एक बार उसने देखा कि वासकट का काला कपड़ा धीरे धीरे बढ़ कर आकाश-सा हो गया है और उसके बूटे असंख्य लाल लाल मशालों की तरह उसमें चमक रहे हैं। कभी उसे भ्रान्ति होती कि वासकट पर काम करते समय उसकी बूटियाँ एक स्थान पर नहीं रहती हैं, देखते देखते वे उसकी अँधेरी लालटेन की क्षीण रोशनी में नाचने लगते, जिससे वह डर कर भागता है।

रात्रि भर को अनेक स्वप्नमयी विभीषिकाओं का भ्रान्त दर्शक सुबह कुछ देर में सोकर उठा। कोठरी के दरवाज़े पर धूप चमक रही थी। रात्रि की अगणित विकृत घटनाओं को यद्यपि अब वह याद न कर सकता था,

तथापि उसका मन अभी उनकी छायाओं से अधिक दूर नहीं पहुँच सका था। उनसे उसका अशान्त मस्तिष्क और भी भड़क गया। शरीर की नस नस ग्लानि और क्षोभ से ऐंठी-सी जाती थी। उसे अपने चारों ओर की वस्तुओं से घृणा होने लगी।

वासकट का काम आज ही समाप्त करना था, यह उसे याद थी। आलस्य को त्याग कर शीघ्र ही उठ बैठा और अपने दैनिक कार्यों से शीघ्र ही छुटकारा पाने के लिए तेज़ी से हाथ-पैर चलाने लगा।

खिड़की के सींकचों में से होकर उसके काम करने के स्थान पर काफ़ी प्रकाश पड़ रहा था। आमवालों के नीलाम का शोरगुल भी ख़तम हो चुका था। उधर अहमद भी कोठरी से जा चुका था। इस प्रकार एकान्त पाकर अब्दुल्ला ने वासकट को पूरा करने के लिए अपना बक्स खोला। ऊपर के बिना तह किये हुए कपड़ों को निकाल कर नीचे पटका, फिर नीचे की तहों को खोल खोल कर देखा, पर वासकट का कहीं पता न था।

अब्दुल्ला का मस्तक धीरे धीरे गर्म होकर सुन्न हो गया। कुछ क्षणों के लिए उसकी आँखों से कुछ भी न देख पड़ा। चारों ओर अंधकार था। दिल बैठ रहा था। कुछ मिनिटों के बाद उसे फिर ढूँढ़ने का विचार आया। परन्तु विपत्ति की अनुवर्ती दीवार इतनी विशाल थी कि माथा चक्कर खाने लगता था और हाथ-पैर निर्जीव पड़ जाते थे। उस सन्दूक़ के सिवा उसके पास और क्या था जिसमें उसे वासकट के मिलने की आशा होती? तो भी उसने अपनी कोठरी के कोने कोने को देख डाला, जहाँ उस वासकट का एक बटन भी न समा सकता था वहाँ खूब झुक झुककर तलाश किया, मगर वह कहीं न मिली। हताश होकर बैठ गया।

आशा की डोर धैर्य को अटकाये रहती है, लेकिन जब वह टूट जाती है तब वह भी अपने स्वामी को अकेला छोड़ कर चल देता है। सब तरफ़ से निराश बेचारे अब्दुल्ला की आँखों से आँसुओं का एक मूक प्रवाह बह निकला। उसके निर्बल स्वभाव में इतनी कठोरता कहाँ थी कि वह इतनी बड़ी घटना के भार को संसार के अन्य मनुष्यों की तरह साधारणतया सह लेता। बरसाती नदी से गिराये हुए पेड़ की भाँति वह निस्सहाय जीव ज़मीन पर लोटकर अपने दुर्भाग्य पर रोने लगा।

तम्बाकूवाले का वह अपने मन में कुछ अधिक भरोसा रखता था। ऐसी विपत्ति के समय उसके सिवा और किससे वह अपना दुखड़ा रोता? रुलाई का उच्छ्वास उसकी छाती में इतना भरा हुआ था कि वह उससे एक बात भी पूरी न कहने पाता था कि कंठ रुक आता था और हिचकियाँ बँध जाती थीं। तम्बाकूवाले ने उसे रोते हुए आज ही देखा था, यद्यपि उसके स्वभाव की विलक्षणता को वह सबसे अधिक पहचानता था। उसके दुख को देखकर वह मोटा लापरवाह आदमी भी एक बार आँखों में आँसू भर लाया। उसने उसे बहुत समझाया कि घबराने से कोई लाभ नहीं। वासकट को उसे उन्हीं लोगों के पास तलाश करना चाहिए जो आज उसके यहाँ आये हों।

अब्दुल्ला उस टीनवाले के पास पहुँचा। उसे भी रो रो कर अपनी सारी कहानी सुनाई। परन्तु वह ऐसा कठोर निकला कि थोड़ी देर के लिए उसने अपने लकड़ी के हथौड़े की खटखट को भी बंद करना आवश्यक नहीं समझा। उसने संक्षेप में अब्दुल्ला को यह बतला दिया कि वासकट के विषय में उसे कुछ भी नहीं मालूम है। यह भी नहीं कह सकता कि उसे कौन ले गया होगा।

अपने यहाँ बैठनेवाले प्रत्येक मनुष्य के पास अब्दुल्ला इस आशा से जाता था कि शायद उससे वासकट का पता लगाने में कुछ सहायता मिले। वह उससे अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करता, रोता, गिड़गिड़ाता, उसके पैर पकड़कर उसे समझाता—भाई, अगर तुम्हें वासकट के बारे में कुछ भी मालूम हो तो बता दो, मेरे प्राण बच जायँगे। नहीं तो दीन-दुनिया कहीं का भी न रहूँगा। मुझे इस बार किसी तरह

इस विपत्ति से छुटकारा दिलवा दो तो फिर कभी ऐसा कपड़ा बनाने का नाम भी न लूँगा। मैं अपना सारा संसार बेच कर भी उसका मूल्य पूरा नहीं कर सकता। क्या तुम इससे बचने का कोई उपाय भी नहीं बता सकते हो?

परन्तु कई तो अब्दुल्ला के इस आचरण पर रुष्ट हो गये। कहा कि वह तो कपड़े की वासकट थो। यदि सोने की होती तो हम उस पर भी थूक देते। किसी की चीज चुराने से कोई पूरा थोड़े ही पड़ता है। दो-तीन आदमियों ने नम्रता-पूर्वक वासकट के विषय में कुछ बतलाने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

सवेरे के दस बजे से लेकर सूर्यास्त तक कृश कमज़ोर अब्दुल्ला एक से दूसरे के पास और दूसरे से तीसरे के पास भटकता रहा। खाने-पीने की कुछ भी सुध न थी। भूख-प्यास का कच्चा होने पर भी आज उसे उसका ख़याल ही नहीं रहा। मेंह का यह हाल था कि दस मिनट के लिए रुकता तो आध घंटे तक फिर बरसता रहता। उन छोटे-छोटे तंग रास्तों में जहाँ अब्दुल्ला को चलना पड़ रहा था, काफ़ी कीच हो रही थी। कहीं-कहीं पानी भी भरा था। परन्तु उसे इसका तनिक भी ध्यान न था। न सिर पर छतरी थी, न पैर में जूता था। बचाकर पैर रखना भी वह अपने जैसे अभागे व्यक्ति के लिए व्यर्थ समझता था। शरीर का कुर्ता पानी से तर हो जाता था, किन्तु उसके भीतर जो व्याकुलता की एक भट्टी जल रही थी उसके ताप से वह सूखता रहता था। उसका पतला लम्बा चेहरा इस समय और भी रोगी और पीला मालूम पड़ने लगा। होठ सिकुड़ रहे थे। आँखें विकलता और नैराश्य से बुझी जाती थीं। उसकी सूखी टाँगें बहुत देर से निरंतर क़दम रखते रखते अब दर्द करने लगी थीं। घर में आया और सीधा खाट पर लेट रहा।

रात हो गई पर उसने आज दिया भी नहीं जलाया। शुक्लपक्ष था। बादलों से छन कर जो थोड़ी-बहुत चाँदनी आ रही थी, वही खिड़की-द्वारा घुसकर उसकी कोठरी में प्रकाश का आभास-मात्र बनाये हुए थी। अब्दुल्ला छत की ओर शून्यभाव से ताकता हुआ नैराश्य और शोक के भीषण प्रदेश में रास्ता ढूँढ़ रहा था। उसे ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानो उसके जीवन का कोई अव्यक्त भूत आज उसके सामने आकर खड़ा हो गया है और उसका गला घोटने के लिए अपने हाथ बढ़ा रहा है। कैसी भयानक बेचैनी थी? हृदय में कैसा चीत्कार था? शरीर का एक एक रोम एक दूसरे से पृथक् होकर वायु में उड़ जाना चाहता था। क्या यही जीवन है? यही इसका रहस्य और यही इसका अंत है? क्या सभी मनुष्यों को कभी न कभी ऐसी वेदना सहनी ही पड़ती है?

बीच-बीच में उसकी यह कल्पना कि आह कहीं वासकट मिल जाती तो कितने सहज में ही मुझे इस असह्य यंत्रणा से छुटकारा मिल जाता, उसे और भी विह्वल कर देती थी। दोनों हाथों को बड़े ज़ोर से अपने सिर पर दे मारता। शरीर के ताप में ही फुक जाने को तबीयत चाहती थी।

अब्दुल्ला के ग़रीब जीवन में अकस्मात् ही कैसा घोर परिवर्तन हो गया था। कहाँ वह लकीर की तरह सीधा, नीरस किन्तु निर्विघ्न जीवन, कहाँ यह पीड़ा और आवेशों का रणस्थल। वह सन्तोष और वह सुनसान अब उसे कहाँ मिल सकता है? उसकी सुखकर शीतलता से वह कितना दूर हट चुका है?

बूँदाबाँदी होने के कारण आठ बजे से ही सर्वत्र सन्नाटा छाया हुआ था, जिसमें अब तो रात आधी से अधिक बीत चुकी थी, बादलों के पहाड़ इधर से उधर आकाश में गश्त लगा रहे थे, मानो वे किसी भीषण आयोजन की तैयारी में लगे हों। इसी तरह एक विशाल स्याह-नीला बादल चन्द्रमा के सामने आ गया। सारे पहाड़ी प्रदेश पर अँधियारी-सी एक मोटी चादर पड़ गई।

अब्दुल्ला सोया हुआ था, पर उसे नींद नहीं आ रही थी। बीच बीच में बार बार कुछ बड़बड़ा उठता था। अचानक उसे मालूम हुआ कि उसकी कोठरी के किवाड़ कुछ हिल रहे हैं। दरवाज़ा खुला। धीरे-धीरे एक आकृति ने घर के भीतर प्रवेश किया। अब्दुल्ला को बड़ा डर मालूम पड़ने लगा। परन्तु उसकी दृष्टि वहीं पर लगी हुई थी। हटा भी कैसे सकता था? अब्दुल्ला ने बोलना चाहा, पर कण्ठ रुका हुआ था। फिर बड़े प्रयास से मुँह खोला और धीरे से कहा—कौन अहमद? इस पर वह मूर्ति हँस पड़ी और उसके दाँतों की ज्योति से क्षण भर के लिए एक अजीब रंग का उजेला कोठरी में फैल गया। अब्दुल्ला ने देखा ढीले-ढाले सफ़ेद कपड़े पहने हुए वह आकृति उसकी वासकट भी पहने हुए है। पहचान लिया। वही वासकट थी। उस अद्भुत अलौकिक रंग की रोशनी में वासकट की बूटियों का एक एक कण जैसे तिलमिला उठा हो। उनमें से अनेक प्रकार के डरावने रंगों की किरणें निकलने लगीं।

अब्दुल्ला को ऐसा जान पड़ा मानो पहननेवाले के चौड़े सीने पर एक-दम तनी हुई वह वासकट मसककर फट जाना चाहती है। उसे वहाँ पर एक एक क्षण असह्य हो रहा है। उसकी परिचित बूटियाँ विकलता से झल्ला रही हैं। अब्दुल्ला की प्यारभरी लम्बी पतली उँगलियाँ छिपना चाहती हैं।

वह उठ बैठा और बड़े ध्यान से उस आकृति की ओर ताकने लगा। लेकिन अँधेरे के फिर गहरा हो जाने से केवल उसका आभास-मात्र उसे होता था। खाट से उतर कर उसकी ओर वह बढ़ने लगा, पर इसी समय वह मूर्ति न जाने कहाँ खो गई। अब्दुल्ला आँखें फाड़-फाड़ कर अपने चारों तरफ़ के अँधेरे को घूरने लगा। सहसा दरवाज़े के धुँधलेपन में उसे कुछ देख पड़ा। वहाँ पहुँचा तो वह आकार कुछ आगे बढ़ गया था। वह उसी के पीछे पीछे चलने लगा। तेज़ी से उसके पास पहुँचकर उसे पकड़कर कुछ पूछने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी।

कभी कभी चाँद गहरे बादलों से निकल कर वासकट की बूटियों को अपने क्षीण प्रकाश में चमका देता था तब अब्दुल्ला चौंक कर फिर तेज़ी से बढ़ने लगता था। किन्तु शीघ्र ही वह उसे भूल जाता और अपनी विलक्षण परिस्थिति के विचारों में खो जाता, गति धीमी पड़ जाती। असल में उसे अपना कर्तव्य न सूझता था। यह सब क्या है? मैं कहाँ जा रहा हूँ? इस व्यक्ति का क्या रहस्य है?

थोड़ी देर तक इसी प्रकार चलने के बाद वह आकृति वृक्षों से आवृत एक अँधेरे मार्ग-द्वारा पहाड़ी के शिखर पर चढ़ने लगी। अब्दुल्ला भी उसके पीछे ही था। कभी वह वृक्षों में छिप जाती, कभी उसे फिर स्वयं दिखाई देने लगती। अब्दुल्ला धीरे-धीरे पहाड़ी पर चढ़ कर एक छोटे से मैदान पर आ पहुँचा। यही उस शिखर की चोटी थी। देखा, वहीं उससे एक किनारे पर खड़ी हुई वह मूर्ति उसकी ओर हँस रही है। अब्दुल्ला में एक विचित्र स्फूर्ति, एक पागल का-सा उत्साह भर गया। उसे अपना शरीर फूल की तरह हलका मालूम पड़ने लगा। वह उसकी ओर तेज़ी से लपका और उसे पकड़ लिया।

लेकिन वास्तव में वह वृक्ष की हिलती हुई पत्तियों पर पड़ता हुआ चाँदनी का एक लम्बा सा टुकड़ा था। बग़ल के वृक्षों के अंतर में से होकर वह रोशनी आ रही थी। शिखर से बहुत नीचे पहाड़ के उतार पर उन चमकती हुई टहनियों के वृक्ष की जड़ थी। नीचे ऐसी खाई थी जिसकी थाह नहीं थी।

अब्दुल्ला को ऐसा मालूम हुआ मानो उसने वासकट को पकड़ लिया है। परन्तु वह मायावी आकृति उसे बड़े वेग से किसी अनन्त अंधकार की ओर घसीटे लिये जा रही थी।

रात्रि का एक बड़ा भाग बीतने पर जब अहमद आया तब उसने चुपके से अपने शरीर पर से उस वासकट को उतारा और मशीन को उठा कर उसके नीचे उसे दबा दिया। फिर नित्य की भाँति चुपचाप अपनी खाट पर जाकर सो गया। सुबह उसने उठकर देखा, अब्दुल्ला कोठरी में न था। बाहर देखा, जान पहचानवालों से पूछा। पर वह कहाँ गया सो कोई न जानता था।

अहमद अब भी उस कोठरी में रहता है, पर अब वह बड़ा हो गया है। एक साहब का ख़ानसामा है। शराब ख़ूब पीता है। अपने जीवन से बड़ा ख़ुश है।

—केशवदेव शर्मा

स्वराज्य में राजस्व-सम्बन्धी समस्यायें

[लार्ड पील की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रसङ्घ के राजस्व-सम्बन्धी नियमों पर विचार करने के लिए एक समिति नियत की गई थी। इस समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई है। इस लेख में अर्थशास्त्र के पण्डित श्री दुबेजी ने उस समिति की रिपोर्ट की मुख्य मुख्य बातों पर विचार किया है।]

आज-कल भारत में और विलायत में स्वराज्य-सम्बन्धी योजनाओं की ख़ूब चर्चा है। जब से लंदन में गोलमेज़-परिषद् का कार्य आरम्भ हुआ है, स्वराज्य-योजना के भिन्न-भिन्न भागों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। सब दलों के नेता भारत में राष्ट्रसङ्घ स्थापित करने का निश्चय कर चुके हैं। लार्ड पील की अध्यक्षता में एक समिति इस भारतीय राष्ट्रसङ्घ के राजस्वसम्बन्धी नियमों पर विचार करने के लिए नियत की गई थी। इस समिति की संक्षिप्त रिपोर्ट समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई है। इस लेख में हम इसी संक्षिप्त रिपोर्ट पर विचार करते हैं।

इस राजस्व-समिति की प्रधान सिफ़ारिशें नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) भारतीय राष्ट्र-सङ्घ-सरकार की आमदनी के साधन परोक्ष कर ही होने चाहिए। उसको केवल आयात-निर्यात-कर और नमक-कर लगाने का अधिकार हो।

(२) आयकर की आमदनी प्रान्तीय सरकारों को दे दी जाय।

(३) केवल दो ही कर लगा सकने के कारण भारतीय राष्ट्रसङ्घ-सरकार की आमदनी में जो कमी होगी उसकी पूर्ति प्रान्तीय सरकारें तथा देशी राज्यों की सरकारें करें। प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को कितनी रक़म प्रतिवर्ष राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को देना होगा इसका निर्णय विशेषज्ञों की एक समिति करे। १०-१५ वर्षों के अन्दर ही राष्ट्र-सङ्घ-सरकार की इस प्रकार की आर्थिक सहायता बन्द कर दी जाय।

(४) देशी राज्यों से जो आज-कल प्रतिवर्ष नज़राना लिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय। विशेषज्ञों की एक दूसरी समिति इस बात का निर्णय करे कि १०-१५ वर्षों तक प्रतिवर्ष देशी राज्यों की सरकारें कितनी आर्थिक सहायता राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को करें।

(५) भारत तथा प्रान्तीय सरकारों के वर्तमान ऋण के कितने भाग की जिम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को तथा कितने भाग की ज़िम्मेदारी प्रान्तीय सरकारों को लेनी चाहिए, इसका निर्णय भी विशेषज्ञों की समिति करे।

(६) बिना राष्ट्रसङ्घ-सरकार की आज्ञा के प्रान्तीय सरकारें या देशी राज्यों की सरकारें भारत के बाहर क़र्ज़ न लिया करें। भविष्य में क़र्ज़

किन नियमों के अनुसार लिया जाया करे, इसका निर्णय भी विशेषज्ञों की समिति करे।

राष्ट्रसङ्घ की सरकार की आमदनी के साधन परोक्ष कर ही रक्खे जाना बहुत अच्छा है। परन्तु हमारी समझ में इस सरकार को प्रान्तीय सरकारों या देशी राज्यों की सरकारों से प्रति-वर्ष १०-१५ वर्ष तक भी आर्थिक सहायता प्राप्त करना उचित नहीं है। सन् १९१९ की शासन-सुधार-योजना के अनुसार केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों से प्रतिवर्ष आर्थिक-सहायता दिये जाने की व्यवस्था की गई थी। इसका परिणाम बहुत ही ख़राब हुआ। प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक दशा इस भार के कारण कई वर्षों तक न सुधर सकी और शिक्षा, कृषि, स्वास्थ्य इत्यादि विभागों के लिए पर्याप्त धन भी न मिल सका। इस प्रकार देश की आशातीत उन्नति भी न हो सकी।

हम नमक-कर के पक्ष में भी नहीं हैं। नमक जीवन-रक्षक पदार्थ है, उस पर तो किसी प्रकार का भी कर न होना चाहिए। आमदनी को दृष्टि में रखते हुए इस कर का भार ग़रीबों पर सबसे अधिक पड़ता है और धनवानों पर सबसे कम। राष्ट्रसङ्घ-सरकार का सबसे पहला कार्य यह होना चाहिए कि वह इस कर को उठा ले। इस कर के उठ जाने पर लार्ड पील की समिति की सिफ़ारिश के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ-सरकार के पास आमदनी का साधन केवल आयात-निर्यात कर ही रह जायगा। सैनिक तथा शासन-सम्बन्धी ख़र्च आशानुसार कम करने पर भी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को आयात-निर्यात कर से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वह बिना किसी आर्थिक सहायता के अपना काम चला ले। प्रान्तीय सरकारों तथा देशी राज्यों की सरकारों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने के बदले यदि राष्ट्रसङ्घ-सरकार को एक और कर लगाने का अधिकार दे दिया जाय तो बहुत अच्छा हो। मादक वस्तुओं पर प्रान्तीय सरकारों-द्वारा जो कर लगाया गया है उससे आज-कल १५-२० करोड़ रुपयों की आमदनी प्रतिवर्ष होती है। यह परोक्ष कर है और इसका भारतीय राष्ट्रसङ्घ की सरकार-द्वारा लगाया जाना उचित है। अच्छा तो यह हो कि देशी राज्य भी मादक वस्तुओं पर कर लगाने का अपना अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे दें। यदि मादक वस्तुओं-सम्बन्धी कर राष्ट्र-सङ्घ-सरकार-द्वारा लगाया गया तो जैसे जैसे उसे आयात-निर्यात कर से अधिक आमदनी होने लगेगी, वैसे ही मादक वस्तुओं के निषेध-सम्बन्धी नीति का शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत करना सरल हो जायगा; और राष्ट्र-सङ्घ-सरकार को भी किसी प्रान्तीय सरकार या देशी राज्य से प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता लेने की आवश्यकता न पड़ेगी।

देशी राज्यों से नज़राना न लेने का प्रस्ताव बहुत अच्छा है। राष्ट्र-सङ्घ के स्थापित हो जाने पर देशी राज्यों को सेना-सम्बन्धी किसी प्रकार का कोई ख़र्च करने की आवश्यकता न होगी। सम्पूर्ण भारत के लिए आवश्यक सेना-ख़र्च करने की पूरी जिम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार पर होगी। इस प्रकार देशी राज्यों के ख़र्च में प्रतिवर्ष काफ़ी कमी हो जायगी। परन्तु साथ ही साथ देशी राज्यों को आयात-निर्यात-कर तथा मादक वस्तुओं पर कर लगा देने का अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे देना होगा। यदि देशी राज्य भी आयात-निर्यात-कर लगाते रहे तो देशी राज्यों के निवासियों को यह कर दुबारा देना होगा। बाहरी वस्तुओं का मूल्य देशी राज्यों में अधिक बढ़ जायगा और प्रजा की हानि होगी।

राष्ट्रसङ्घ के स्थापित होने के साथ ही साथ यह भी ज़रूरी है कि देशी राज्यों में राजस्व-सम्बन्धी आवश्यक सुधार कार्यरूप में परिणत कर दिये जायँ। आज-कल कई देशी राज्यों में बजट (आय-व्यय का अनुमान-पत्र) ठीक समय पर नहीं तैयार किये जाते और न वे जनता के प्रतिनिधि-द्वारा प्रति-वर्ष स्वीकार ही किये जाते हैं। कई देशी नरेश राज्य की सम्पूर्ण

आमदनी को अपनी निजी सम्पत्ति समझते हैं और उसका ख़र्च अपने इच्छानुसार करते हैं। कई नरेशों का निजी ख़र्च भी बहुत अधिक होता है। देशी नरेशों को चाहिए कि वे अपना निजी ख़र्च जितना कम हो सकता है उतना कम कर दें, आय-व्यय का अनुमान-पत्र प्रतिवर्ष नियमानुसार ठीक समय पर तैयार किये जाने का प्रबन्ध करें, उसको जनता के प्रतिनिधियों-द्वारा स्वीकार करावें और उनकी स्वीकृति के अनुसार ही ख़र्च करें।

आय-कर प्रान्तीय सरकारों को दे दिये जाने का प्रस्ताव बहुत अच्छा है। इस कर के द्वारा प्रान्तीय सरकारों की आमदनी आवश्यकतानुसार बढ़ाई जा सकती है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग इत्यादि विभागों पर अधिकाधिक रुपया प्रान्तीय सरकारों को ख़र्च करना होगा और उसके लिए आय-कर-द्वारा काफ़ी आमदनी भी प्राप्त की जा सकेगी।

राष्ट्रसङ्घ के स्थापित हो जाने पर मालगुज़ारी के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकारों को गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। नमक-कर के समान इस कर का भार भी ग़रीबों के ऊपर सबसे अधिक पड़ता है। खेतों के छोटे छोटे टुकड़ों में दूर दूर पर बँटे हुए होने के कारण असंख्य किसानों को खेती से लाभ नहीं हो पाता। उनको खेती से इतनी उपज प्राप्त नहीं होती कि वे अपना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण कर सकें। उनको आधा पेट भोजन करके ही कई महीने प्रतिवर्ष बिता देने पड़ते हैं। तिस पर भी इन ग़रीब किसानों को अत्यधिक लगान देना पड़ता है और इसी लगान के आधार पर सरकार-द्वारा मालगुज़ारी ली जाती है। यदि सरकार-द्वारा मालगुज़ारी कम कर दी जाय और इन किसानों का लगान भी कम हो जाय तो उनको कम से कम भर पेट भोजन प्राप्त करने का अवसर तो प्राप्त हो जाय। हमारी राय तो यह है कि प्रान्तीय सरकारों को मालगुज़ारी कम करके ग़रीब किसानों का लगान आधे से भी कम करा देना चाहिए और मालगुज़ारी से जो आमदनी प्राप्त हो उसे ज़िला-बोर्डों को प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर देने के लिए दे देना चाहिए, जिससे ग्रामों से प्राप्त रक़म ग्रामों में ही शिक्षा-प्रचार के पवित्र कार्य में लगा दी जाया करे।

भारत में राष्ट्रसङ्घ स्थापित होने पर राजस्व-सम्बन्धी समस्याओं को नीचे लिखे तरीक़ों से हल करना अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से उचित होगा—

(१) नमक-कर उठा लिया जाय तथा ग़रीब किसानों के लगान में आधे से अधिक कमी कर दी जाय। इसके लिए मालगुज़ारी में भी आवश्यकतानुसार कमी कर दी जाय।
(२) मालगुज़ारी को आमदनी ज़िलाबोर्डों को ग्रामों में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिए दे दी जाय।
(३) प्रान्तीय सरकारों तथा देशी राज्यों के आमदनी के साधन हों—आय-कर, स्टाम्प, रजिस्ट्री, आबपाशी, दाय-विभाग-सम्बन्धी कर इत्यादि।
(४) राष्ट्रसङ्घ की सरकार की आमदनी के साधन हों—आयात-निर्यात-कर, मादक-वस्तु-कर, रेल, डाक और तार-विभाग की आमदनी।
(५) देशी राज्यों का आयात-निर्यात-कर तथा मादक-वस्तु-कर लगाने का अधिकार राष्ट्रसङ्घ-सरकार को दे दिया जाय।
(६) देशी राज्यों से जो आज-कल नज़राना प्रतिवर्ष लिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय।
(७) देशी राज्य आज-कल जो फ़ौज-सम्बन्धी ख़र्च करते हैं वह बन्द कर दिया जाय और सम्पूर्ण भारत के लिए फ़ौज-सम्बन्धी ख़र्च की जिम्मेदारी राष्ट्रसङ्घ-सरकार को ही सौंप दी जाय।
(८) राष्ट्रसङ्घ-सरकार फ़ौजी तथा शासन-सम्बन्धी ख़र्च कम करने का पूर्णरूप से प्रयत्न करे।

(९) देशी राज्यों के नरेश अपना निजी ख़र्च कम करने तथा उसकी रक़म निश्चित कर देने का पूर्ण प्रयत्न करें।

(१०) देशी नरेश ऐसा प्रबन्ध करें जिससे अगले वर्ष का आय-व्यय का अनुमान-पत्र नियमानुसार ठीक समय पर प्रतिवर्ष तैयार किया जाया करे, वह जनता के प्रतिनिधियों-द्वारा स्वीकार किया जाया करे और सब ख़र्च उसी स्वीकृति के अनुसार किया जाया करे।

आशा है, स्वराज्य-प्रेमी सज्जन राजस्व-सम्बन्धी उपर्युक्त बातों पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे।

—दयाशङ्कर दुबे

कलकत्ते का भ्रमण

गत वर्ष इलाहाबाद-यूनिवर्सिटी के एम० ए० के संस्कृत के छात्रों को डाक्टर प्रसन्नकुमार आचार्य ने अपने प्रारम्भिक भाषण प्राचीन शिल्प-कला के विषय पर किये थे। यह विषय हमें अत्यन्त रुचिकर मालूम हुआ। अतएव अपने देश के प्राचीन ऐतिहासिक महलों, देवमन्दिरों, बौद्ध-विहारों और सुन्दर मूर्तियों के भग्नावशेष देखने के लिए हम विशेष लालायित होने लगे।

हमारे सौभाग्य से जन्माष्टमी का तीन दिन का अवकाश समीप आगया। एक बंगाली सहपाठी के परामर्श से कलकत्ते जाने का निश्चय हुआ। उन्होंने कहा कि कलकत्ता जाने से हम बुद्ध-गया, राजगिर, नालन्द, शान्तिनिकेतन, पटना, सारनाथ आदि आदि स्थान भी देख सकेंगे।

३ सितम्बर को रात के ११ बजे हम मित्र-मण्डली के साथ इलाहाबाद से गाड़ी में सवार हुए। रात के ठीक ढाई बजे हम मुग़लसराय पहुँचे। यह ई० आई० रेलवे का बड़ा भारी जंकशन है। यहाँ चाय, दूध, और अनेक प्रकार के फल अच्छे और ताज़े मिलते हैं। सफ़ाई अच्छी रहती है, मुसाफ़िरों को कोई कष्ट नहीं होता। यह बनारस ज़िले में स्थित है। गया जाने के लिए यहाँ पर हमें साढ़े तीन घंटे ठहरना पड़ा। रात्रि का मध्यभाग था, बिस्तरे पर लेटते ही निद्रा ने आ घेरा। थोड़ी देर बाद ज्यों हीं आँखें खुलीं, साढ़े पाँच बज चुके थे। यहाँ से गाड़ी ठीक ६ बजे छूटी।

बिहार-प्रदेश का प्राकृतिक सौन्दर्य सराहनीय था। गाड़ी की लाइन के दोनों ओर हरे-भरे धान के खेत ऐसे प्रतीत होते थे, मानो प्रकृति-देवी ने पृथ्वी के ऊपर सुन्दर हरित गलीचा बिछा दिया हो। इस सुरम्य हरियाली के अतिरिक्त मार्ग में कुछ दूर तक ऊँची-नीची पर्वत-श्रेणियाँ अपने सुहावने नैसर्गिक सौन्दर्य से दर्शकों के नेत्रों को मुग्ध कर रही थीं। इस बिहार-भूमि में प्रकृति की समस्त सुन्दरता देखने को मिलती है। कदाचित् इसी निराली प्राकृत शोभा के प्रेम से प्लावित होकर प्रकृति-प्रेमी बुद्धदेव ने इस प्रान्त को अपना निवास-केन्द्र बनाया हो। प्रातःकाल की मन्द मन्द चलती हुई शीतल हवा हमें अत्यन्त आनन्दित कर रही थी। प्रकृति की सौन्दर्य-सुधा का पान करते हुए हमनेसोन-नदी के पुल को पार किया। यह पुल सारे भारतवर्ष में सब पुलों से बड़ा पुल है। कहा जाता है कि संसार भर में सब पुलों में बड़ा पुल स्काटलैण्ड में 'फ़र्थ आव फोर्थ' नदी के ऊपर है। इस प्रकार अनेक दृश्य देखते हुए हम ४ सितम्बर को ८ बजे सुबह हिन्दुओं के परम पवित्र तीर्थ गया में पहुँचे।

गाड़ी से उतरकर हम स्टेशन के समीप एक धर्मशाला में ठहरे। गया में अनेक धर्मशालायें हैं। धर्मशाला में पहुँचते ही हमें अनेक पंडों ने आ घेरा। जब वे सीधी तरह न माने तब हमने कहा कि हम तो

'आर्यसमाजी' हैं, हम यहाँ इसलिए आये हैं कि पंडे जिस यात्री को तंग करें, हम उस यात्री की मदद करें। 'सो तो ठीक है' कहकर सारे के सारे पंडे दुम दबाते हुए भाग निकले। गया में कच्चा भोजन नहीं मिलता, इसलिए विवश होकर पूड़ियाँ खानी पड़ती हैं। यहाँ की दूकानें और बाजार अत्यन्त गन्दे हैं। ज्यों ही यात्री कुछ खाने के लिए दूकान में बैठता है, दूकान की ओर से भौंरे और बाजार से आकर कँगले उसे घेरकर इतना बेचैन कर देते हैं कि उसे उठने परही चैन मिलता है। यहाँ से बुद्ध-गया लगभग ८ मील की दूरी पर है। पूरी बग्घी का किराया २) लगता है, किन्तु ये लोग पहले ४) माँगते हैं। गया से फल्गु नदी के किनारे से होती हुई सीधी सड़क छोटी-छोटी पर्वत-राशि के पाद-प्रदेश को मापती हुई बुद्ध-गया तक चली जाती है। गया में प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त रमणीक है। गया तीन ओर से अत्यन्त शोभाशालिनी ऊँची-नीची पहाड़ी की श्रृंखलाओं से घिरी हुई है। पर्वत-श्रेणी की स्वाभाविक सौन्दर्य-छटा खिन्न हृदय को भी आनन्दित कर देती है। एक पर्वत की ऊँची चोटी पर ब्रह्मयानी का मनोहर मन्दिर है। यह मन्दिर समतल पृथ्वी से इतना सुन्दर प्रतीत होता है कि यात्री बिना इसके दर्शन किये रह नहीं सकता। मन्दिर के भीतर शिव की मूर्ति स्थापित है। फल्गु नदी में पानी बहुत कम रहता है। कहा जाता है, यह जमीन के अन्दर बहती है। अनेक मन्दिरों के अतिरिक्त गया में विशेष देखने योग्य कोई स्थान नहीं है। लगभग तीन बजे हम बुद्ध-गया में पहुँचे। महाबोधि-मन्दिर के गगन-चुम्बी शिखर बड़ी दूर से दिखाई दिये।

[गया से बुद्धगया को]

महाबोधि-मन्दिर के सामने सड़क के दूसरी ओर मन्दिराधीश संन्यासी का एक विशाल और सुरम्य भवन है। यदि इसे महल कहें तो अत्युक्ति न होगी।

यह महल चारों ओर से एक मजबूत दीवार से घिरा हुआ है। इसके मध्य में महन्त का निवास-स्थान है। भवन में प्रवेश के लिए एक ऊँचा और चौड़ा दरवाज़ा है, जिसमें हमेशा एक पहरेदार मौजूद रहता है। इस महल के भीतर बौद्ध-भिक्षुओं को भोजन भी मिलता है।

महाबोधि-मन्दिर—इस विशाल आकाशव्यापी सुरम्य मन्दिर में प्रवेश करने के लिए पृथक् एक अटूट पत्थर (monolithic stone) का बना हुआ दरवाज़ा है, जिसके सामने अभिन्न पत्थर की एक लाट खड़ी है। कहा जाता है, यह लाट भी अशोक ने ही खड़ी की थी। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की एक चहार-दीवारी है। यह अधिकतर टूटी हुई है। इस चहार-दीवारी पर पाली-भाषा में अशोक के समय की लिपि खुदी हुई है। इस लिपि के अतिरिक्त पाली गाथाओं के अनुसार कुछ चित्र भी खुदे हुए हैं। मन्दिर के पीछे एक पवित्र पीपल का पेड़ है, जिसके नीचे एक 'वज्रासन' है। इस पर बैठ कर बुद्ध भगवान् तप किया करते थे। वर्तमान वृक्ष दो हज़ार वर्ष के पूर्व का अर्थात् बुद्ध के समय का नहीं है। प्राचीन वृक्ष के नष्ट होने पर उसी स्थान में यह वृक्ष लगाया गया है। मन्दिर के चारों ओर पत्थर की सैकड़ों मूर्तियाँ खड़ी हैं, कई क्षत हैं और कई अक्षत। उनमें अधिकतर बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पाली गाथाओं के अनुसार बनी हुई हैं। मन्दिर के बाँईं ओर एक तालाब है, जिसमें पत्थर की एक लाट खड़ी है। कहा जाता है, भगवान् बुद्ध इस तालाब में स्नान किया करते थे। मन्दिर के सामने औ दाहनी ओर अनेक मूर्तियों के अतिरिक्त स्तूपों के सदृश पत्थर के अनेक छोटे छोटे मन्दिर बने हुए हैं। यहाँ एक छोटा सा अजायब-घर भी है। इसमें प्राचीन शिल्प-कला के नमूने रक्खे गये हैं, जिनमें अधिकतर बुद्ध की खण्डित या अखण्डित मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के सामने दरवाज़े की ओर थोड़ी दूर पर स्वामी शंकराचार्य आदि की समाधियाँ बनी हुई हैं। ये समाधियाँ भी देखने के योग्य हैं।

वज्रासन—यह आसन एक पवित्र पीपल के वृक्ष के नीचे बना हुआ है। इसी स्थान पर बैठकर भगवान् बुद्ध तप किया करते थे। सभी इतिहासज्ञों का यही मत है कि यह वही स्थान है जहाँ
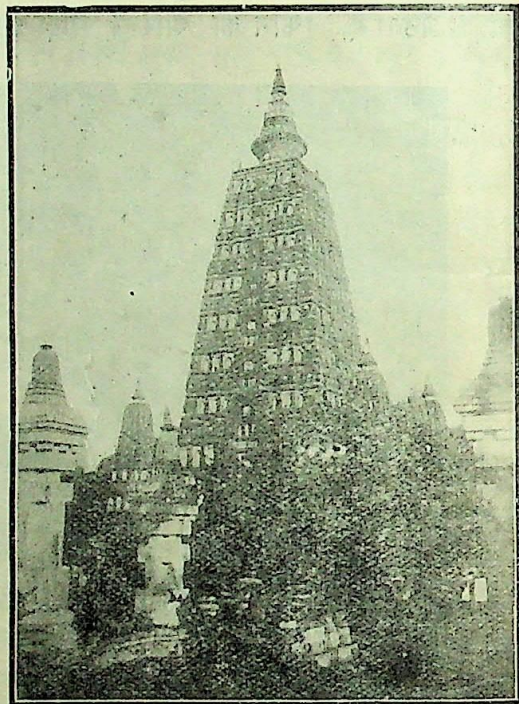
[बुद्धगया का बुद्ध-मन्दिर]

बैठ कर बुद्ध ने यहाँ तप किया था। इस स्थान पर बुद्ध के चरण का निशान भी बना हुआ है। केवल बुद्ध के यहाँ तप करने से इस स्थान का नाम बुद्ध-गया (बोधिगया) रक्खा गया।

चहारदीवारी और उस पर खुदी हुई शिल्प-कला—भगवान् बुद्ध के तप करने के कारण इस स्थान को अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हुआ। जब अशोक ने स्वयं बौद्ध-धर्म ग्रहण किया तब उसने बौद्धों के तीर्थों, मन्दिरों और विहारों को बन-

वाया। उसने इस पवित्र स्थान (वज्रासन) के चारों ओर पत्थर की एक दृढ़ चहारदीवारी बनवाई, जिस पर स्त्रियों तथा देवों के अनेक सुन्दर चित्र खुदवा डाले। इस चित्रकारी से उस समय की शिल्पकला की कुशलता झलकती है। इस दीवार के स्तम्भों के ऊपर सुन्दर चित्रकारी बनी हुई है। इस का निर्माण-काल अशोक का राज्य-काल (ईसा से लगभग ३०० वर्ष पूर्व) समझना चाहिए।

[बुद्ध-मन्दिर का प्रवेश-द्वार]

महाबोधि मन्दिर—यह मन्दिर किसने और कब बनवाया, यह विवाद-ग्रस्त है। अशोक के राज्य-काल के केवल स्तूप मिलते हैं। इस प्रकार के शिखरवाले मन्दिर उसके समय नहीं बने। डाक्टर स्पूनर तो यहाँ तक कल्पना कर बैठे हैं कि यह मन्दिर फ़ारसवालों का बनाया हुआ है और इसमें मगियन पूजा हुआ करती थी। इसी मगियन (फ़ारसी शब्द) के आधार पर उनकी यहाँ तक कल्पना है कि इस देश का नाम 'मगध' पड़ा। यह मत कहाँ तक युक्ति-युक्त या पक्षपात-युक्त है, इसका उत्तर अनेक इतिहासज्ञ दे चुके हैं। गुप्त-वंश के समय में शिखरवाले मन्दिर बनने लगे, इसलिए इस मन्दिर का निर्माण-काल गुप्त-वंश से पूर्व नहीं हो सकता। गुप्त-वंश ईसा के जन्म के अनन्तर चतुर्थ शताब्दी से माना गया है। अतएव इस मन्दिर का निर्माण-काल भी चतुर्थ या पञ्चम शताब्दी
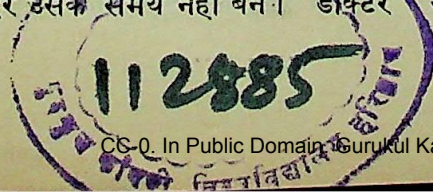
है। इस मन्दिर के भीतर भगवान् बुद्ध की एक विशाल और मनोहर मूर्ति रक्खी गई है, परन्तु इसकी शोभा कृत्रिम वस्त्र और रंग से कुछ घट गई है। मूर्ति के निर्माण में शिल्पकार ने अपूर्व कौशल दर्शाया है। मन्दिर के बाहर अनेक धातुओं के बने हुए दो बड़े बड़े घंटे टँगे हुए हैं। ये घंटे यहाँ किसी ऐश्वर्यशाली बौद्ध-भक्त ने दान के रूप में भेजे होंगे।

[बुद्ध-मन्दिर के भीतर भगवान् बुद्ध की मूर्ति]

महाबोधि-मन्दिर का संक्षिप्त इतिहास—ईसा के जन्म से १२वीं शताब्दी तक इस मन्दिर की महत्ता और पवित्रता न केवल समग्र भारतवर्ष में, किन्तु लङ्का, चीन, जापान और एशिया के दूर दूर देशों तक विख्यात थी। १२वीं सदी के अन्त में जिस समय बौद्ध-भिक्षु वज्रयान के तान्त्रिक साधक बन गये, बुद्ध के मूल-सिद्धान्त को भूल गये, उनमें केवल छल-कपट शेष रह गया तब वे तुर्कों की चमकती हुई तलवार का सामना न कर सके। फल यह हुआ कि तुर्कों ने पाल-वंश के राजा को मार कर बौद्धों के मठों को, बुद्ध की अनेक मनोमोहक मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर बौद्ध-धर्म की जड़ पर कुठाराघात

किया ! यह मन्दिर भी मुसलमानों के हमले से न बच सका ! बौद्ध-समाज इतना गिर गया कि इन मन्दिरों और मठों की मरम्मत कराना उनकी शक्ति दब गया। २०वीं सदी में लार्ड कर्ज़न (सन् १८-९९ से १९०५ तक) के प्राचीन-भवन-रक्षक क़ानून के अनुसार प्राचीन भवनों की रक्षा होने लगी।
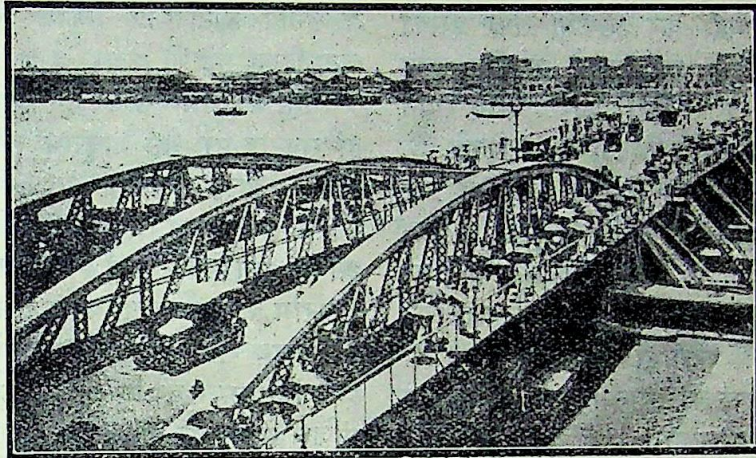
[हवड़ा का पुल]
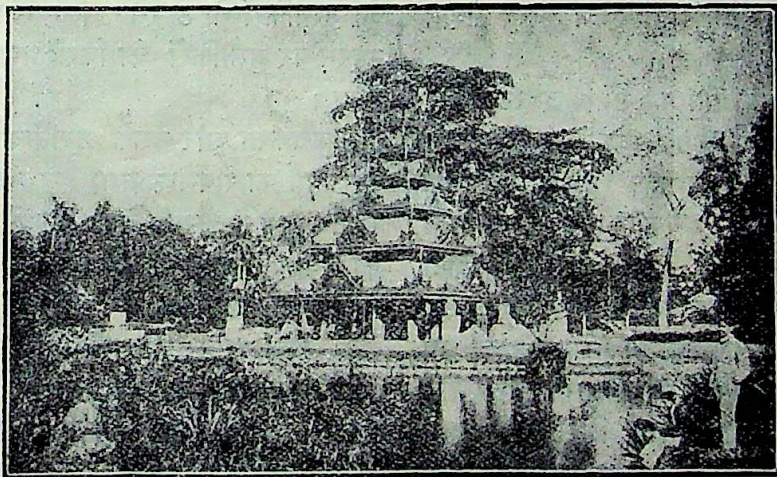
[ईडन गार्डेन में पगोडा बौद्ध-मन्दिर]

के बाहर की बात हो गई। और जब उनका यहाँ से नामशेष हो गया तब इस मन्दिर को यह नौबत पहुँची कि १९वीं सदी तक इसका आधा भाग पृथ्वी के तले इस मन्दिर का भी जीर्णोद्धार हुआ। इसके तले असंख्य टूटी हुई मूर्तियाँ निकलीं, जिनमें से कुछ तो यहीं हैं और कुछ कलकत्ता आदि के

अजायबघरों में रक्खी गई हैं। बहुत सी मूर्तियाँ सीमेंट के साथ इसी महाबोधि-मन्दिर के ऊपर चिपका दी गई हैं। इस मन्दिर की मरम्मत ऐसे अच्छे ढंग से की गई है कि देखनेवाला इसको देख कर ऐसा मालूम नहीं कर सकता कि इसका बाहरी कलेवर तुर्कों के आघात से जर्जरित हुआ होगा। मन्दिर की दाहनी ओर एक स्थान है, जहाँ यात्री पिण्ड-दान करते हैं। कहते हैं, इस स्थान पर पिण्ड देने से कई पीढ़ी के मरे हुए पूर्वज सीधे पितृ-लोक चले जाते हैं। बुद्ध-गया की समग्र मूर्तियों के नमूने, चहारदीवारी की चित्रकारी, मन्दिर के लघु या दीर्घ शिखरों का निर्माण, मूर्तियों का पहनावा केवल पूर्वी ढङ्ग को दर्शाते हैं। इस ढङ्ग को गान्धार या अमरावती ढङ्ग कहना सर्वथा निर्मूल होगा।

लगभग चार बजे शाम को हम बुद्ध-गया से गया लौट आये। सात बजे शाम को भोजन आदि से निवृत्त होकर हम कलकत्ते के लिए गाड़ी में बैठे और ५ सितम्बर को ६ बजे सुबह हम हवड़ा स्टेशन पर पहुँच गये।

हवड़ा स्टेशन भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध स्टेशनों में से एक है। यह स्टेशन बहुत लम्बा-चौड़ा है। यहाँ हर समय बड़ी भीड़ रहती है। हवड़ा स्टेशन से कलकत्ता को जाने के लिए एक सुन्दर लम्बा-चौड़ा पुल है। स्टेशन पर बसें (बड़ी लारियाँ), छोटी लारियाँ, इक्के, बग्घी और रिक्सा मिल जाती हैं। पुल को पार करके कलकत्ते में ट्रामगाड़ियाँ भी मिल जाती हैं। ट्रामगाड़ी का किराया अन्य सब सवारियों से कम लगता है। जिस समय हम हवड़ा स्टेशन पर पहुँचे, वह बड़े जहाज़ों को निकल जाने के लिए तोड़ दिया गया था। उस समय मनुष्य या सवारियाँ पुल के ऊपर नहीं जा सकती थीं। यह दृश्य बड़ा मनोहर था। हमने जहाज़ कभी नहीं देखे थे, इसलिए हमारा मन जहाज़ को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो गया। प्रातःकाल का अत्यन्त सुहावना समय, और फिर गङ्गा के किनारे की शीतल मन्द-मन्द हवा हमारे विशेष उत्कण्ठित मन को कितना आनन्दित कर रही थी, वर्णन नहीं किया जा सकता। बड़े बड़े दानवाकार जहाज़ों के समीप छोटी छोटी नौकायें अपनी निराली ही छटा दिखा रही थीं।

हम मोटर पर सवार हुए और बड़े बाज़ार को हरिसनरोड पर सेठ बाबूराम की धर्मशाला में जा ठहरे। वाइ० एम० सी० ए० में भी मुसाफ़िरों के ठहरने का अच्छा प्रबन्ध है, किन्तु मुसाफ़िरों के अधिक होने से हमें वहाँ स्थान ख़ाली न मिला। सेठ बाबूराम की धर्मशाला बहुत प्रसिद्ध है। यह एक सुन्दर ढङ्ग से बनी हुई है। इसमें पाँच मंज़िलें हैं। हम सबसे ऊपर की मंज़िल में ठहरे थे। ऊपर की मंज़िल से बाज़ार की सुन्दरता देखने योग्य थी। इस धर्मशाला में सफ़ाई और पानी का अच्छा प्रबन्ध है। इसके कार्य-सञ्चालन के लिए एक कमेटी बनी हुई है। कमेटी की ओर से एक जमादार नियुक्त है, जो मुसाफ़िरों को ठहरने के लिए स्थान देता है। यहाँ ठहरने पर मुसाफ़िरों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

कलकत्ता और उसके दर्शनीय स्थान—कलकत्ता भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर है। समुद्र के अत्यन्त समीप होने से इसकी विशेष ख्याति है। यह व्यापार का प्रधान केन्द्र है। इसके विशाल और ऊँचे भवनों की असंख्य अट्टालिकायें दर्शकों को विस्मित कर देती हैं। पाँच या छः मंज़िलोंवाले भवन यहाँ साधारण रूप से विद्यमान हैं। प्रातःकाल और सायंकाल बाज़ारों में इतनी मोटर, बग्घियाँ और अन्य सवारियाँ चलती हैं कि मनुष्य को बाज़ार पार करना असम्भव हो जाता है; पुलिस का इतना उत्तम प्रबन्ध है कि इतनी भीड़ होने पर भी सवारियों की एक दूसरे के साथ किसी प्रकार टक्कर नहीं होने पाती। ट्रामगाड़ी का किराया बहुत सस्ता है और विशेष रूप से मध्याह्न में किराया आधा होजाता

है, क्योंकि उस समय भीड़ कम रहती है। कलकत्ते में अनेक देशों के मनुष्य देखने में आते हैं, क्योंकि यह एक व्यापार का मुख्य केन्द्र है। यहाँ चाय, कपड़े, चीनी मिट्टी के बर्तन, शीतलपाटी आदि वस्तुएँ सस्ती मिलती हैं। काश्मीरी फल भी यहाँ सस्ते बिकते हैं, क्योंकि काश्मीर से फलों से भरे हुए गाड़ी के डिब्बे यहाँ सीधे आते हैं और फिर नीलाम होते हैं। यहाँ के रसगुल्ले और संदेश बहुत विख्यात हैं। यहाँ से जहाज़ सीधा रंगून, जापान और सीलोन आदि स्थानों को जाते हैं। इँग्लेंड या अमेरिका आदि स्थानों को जानेवाले बड़े बड़े जहाज़ यहाँ नहीं आते। यहाँ अजायबघर, चिड़ियाघर, काली का मन्दिर, विक्टारिया स्मारक, बाली पुल के पास दक्षिणेश्वर का मन्दिर, शाम बाज़ार के समीप पार्श्वनाथ का मन्दिर, बेलूर में स्वामी रामकृष्ण का मठ, बोटेनिकल गार्डन, बालीगंज तालाब, फ़ोर्ट विलियम, हाईकोर्ट की इमारत, इम्पीरियल लाइब्रेरी, अदनगार्डन, लाटसाहब का निवासस्थान, कालेज-विभाग, जहाज़ों के ठहरने का स्थान, बड़ा डाकख़ाना, डलहौजी स्कायर, प्रेसीडेंसी कालेज, बैंकों के मकान विशेष दर्शनीय हैं।

५ सितम्बर मध्याह्न के अनन्तर हम उत्तरपाड़ा होकर दक्षिणेश्वर के मन्दिर को देखने गये। शाम को कलकत्ता लौट आये। हमारे सहपाठी बङ्गाली छात्र के आत्मीय स्वजन उत्तरपाड़ा में रहते हैं।

उत्तरपाड़ा—यह स्थान कलकत्ता से छः मील की दूरी पर है। यहाँ मुकर्जीपाड़ा बहुत प्रसिद्ध है। मुकर्जी-वंश प्राचीन काल से गौरव और प्रतिष्ठा का स्थान रहा है। उत्तरपाड़ा में बड़े विशाल और सुरम्य भवन, रमणीक उद्यान, छोटे छोटे तालाब, और इंटरमीडियेट कालेज देखने योग्य हैं। उत्तरपाड़ा में छोटे छोटे तालाब तो सैकड़ों हैं, किन्तु अधिकतर गन्दे हैं। यहाँ से ग्रैन्डट्रंक रोड सीधी पश्चिमोत्तर की ओर चली जाती है। यह सड़क शेरशाह (१५४० से ४५ ई०) ने प्रजा के हित के लिए बनवाई थी। उत्तरपाड़ा गङ्गा के अत्यन्त समीप तट पर स्थित है। सुबह हम गङ्गा में स्नान के लिए जाते थे। वहाँ अनेक बङ्गाली बाबू भी स्नान करने आते थे। जाते समय वे लोग हाथ में

[ईडन गार्डेन का एक दृश्य]

सेर दो सेर मछली ख़रीद ले जाते। यहाँ मछली बहुत सस्ती बिकती है। दो आने सेर के भाव से ताज़ी मछली मिलती है। इन मच्छमारों का जीवन भी हमें अत्यन्त कौतूहलोत्पादक और असाधारण प्रतीत हुआ। ये लोग नाव में ही खाना पकाते, खाते और उसी में रहते हैं। इनकी स्त्री और बच्चे भी साथ रहते हैं। इनके लिए यह नौका ही एक-मात्र जीवन-पथ का सहारा, सांसारिक सुख की क्रीडा-स्थली अथवा मनोविनोद की एक-मात्र साधन है। उत्तरपाड़ा के निकट बाली नामक स्थान है। यहाँ गङ्गा के ऊपर बाली-पुल बन रहा है। इस पुल का सन् १९२६ में बनना प्रारम्भ हुआ था और अनुमान किया जाता है कि दिसम्बर तक बन जायगा। जनवरी में बड़े लाट इसका प्रवेशोत्सव स्वयं करेंगे। कहा जाता है कि इस पुल के बनने में लगभग एक करोड़ रुपये लगे हैं। इसके बनाने में मनुष्य-शक्ति से कम और विद्युत् तथा यन्त्रों की शक्ति से अधिक काम लिया गया है।

दक्षिणेश्वर का मन्दिर—यह मन्दिर बाली स्थान के सम्मुख गङ्गा के दूसरे तट पर स्थित है। गङ्गा के तट से मन्दिर में जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दरवाज़े के दाहनी और बाईं ओर शिव के छोटे छोटे तीन मन्दिर हैं। इनके सामने एक बड़ा विस्तृत चौक है, जिसमें कटे हुए पत्थर बिछाये गये हैं। चौक के सामने काली का एक विशाल आकाश-भेदी मन्दिर है, जिसके गगन-चुम्बी लघु और दीर्घ शिखर शिल्पकार का अनुपम शिल्प-नैपुण्य प्रकट करते हैं। मन्दिर के दाहने और बायें दो बड़े बड़े नाट्य-मन्दिर हैं। इन नाट्य-मन्दिरों में कुछ समय पूर्व सुन्दरी ललनाओं के ललित नृत्य और मनोहर गान हुआ करते थे। इन मन्दिरों के मध्य में कई विशाल दृढ़ स्तम्भ खड़े हैं। मन्दिरों की दीवारों और भीतरी छतों पर चित्रकार की चित्रकला के कुछ नमूने दर्शकों की दृष्टि को अपने विचित्र सौन्दर्य से आप्यायित करते हैं। चौक के एक ओर रामकृष्ण परमहंस की समाधि है। समाधि के भीतर परमहंसजी का शयनागार है, जहाँ एक काष्ठ-मञ्च पर कुछ वस्त्र बिछे हैं। ये वस्त्र परमहंसजी के नैतिक उपयोग के थे। समाधि की दूसरी ओर पञ्चवटी (पाँच वट के वृक्षों का एक स्थान पर मेल) है।

[बैटेनिकल गार्डेन का प्रसिद्ध विशाल वट-वृक्ष]

इसके नीचे बैठकर परमहंसजी समाधि लगाया करते थे। यह प्रदेश वास्तव में एकान्त और रमणीक है। बाली-पुल के बनने से इसकी नैसर्गिक एकान्तता कुछ घट गई है। आज-कल यहाँ सैकड़ों यात्री दर्शन के लिए आते हैं। बड़े मन्दिर के भीतर काली की विकराल मूर्ति है। कहते हैं, परमहंसजी काली के दर्शन करके इतने उन्मत्त और विकल हो जाते थे कि उन्हें अपने बाहरी शरीर का तनिक भी ध्यान नहीं रहता था। यहाँ तक कि एक दिन उन्होंने काली के हाथ से खड्ग लिया और यह कह कर कि हे माता, यदि तू मुझे साक्षात् दर्शन नहीं देती तो मैं इसी खड्ग से अपना सिर काटे देता हूँ। ज्यों ही अपना सिर काटना चाहते थे, लोगों ने उनका हाथ पकड़ लिया। इसमें भक्ति-भाव की नितान्त पराकाष्ठा थी। भक्ति के विचार से यह स्थान बड़ा मनोरम है; इस स्थान पर प्रकृति की अनूठी लीला नित्य विविध कौतूहलमय क्रिया करती रहती है। एक ओर गङ्गा का परम-पावन तट और दूसरी ओर विस्मय-जनक प्रकृति का मनोहर उद्यान किस मानव के हृदय में भक्ति-भाव का सञ्चार न करेंगे! इस मन्दिर की शिल्पकला बहुत प्राचीन ढंग की नहीं है। मन्दिर की पिछली ओर एक छोटा सा तालाब है, जो मन्दिर की प्राकृतिक शोभा को बढ़ा रहा है।

[कलकत्ते का बड़ा अस्पताल]

७ सितम्बर को सबेरे हम बेलूर में रामकृष्ण परमहंस के मठ को देखने गये। यह स्थान कलकत्ता से लगभग ५ मील की दूरी पर स्थित है। गंगा के तट की मृदु, मन्द, सुगन्धित, शीतल समीर की अबाधित गति से इस मठ की रमणीयता द्विगुणित हो गई है। इस मठ की स्थापना स्वनामधन्य श्रीविवेकानन्द स्वामी ने परमहंसजी की इच्छापूर्ति के लिए की थी। यहाँ स्वामी विवेकानन्द की समाधि, पठनागार, शयनस्थान दृष्टिगोचर होते हैं। इस मठ में एक दर्शनीय ओंकार-मन्दिर है, जिसके भीतर एक अनवद्य और हृद्य ओंकार की मूर्ति स्थापित है। स्वामी विवेकानन्द इस ओंकार के अत्यन्त भक्त थे। उनका यह अटल विश्वास था कि एक-मात्र ओंकार की साधना से मानव को परमेश्वर का परम पुनीत पद प्राप्त हो सकता है।

इस मठ में एक छोटा सा पुस्तकालय भी है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द-निर्मित पुस्तकों के अतिरिक्त दार्शनिक विषय की बहुत-सी पुस्तकें उपस्थित

हैं। पुस्तकालय में एक दर्शनज्ञ संन्यासी बैठे रहते हैं, जो छात्रों को पढ़ाने के अतिरिक्त समय-समय पर दार्शनिक चर्चा भी किया करते हैं। यहाँ एक छोटा सा निःशुल्क औषधालय भी है। इसका सञ्चालन जनता की आर्थिक सहायता से होता है। इस मठ में एक छोटा सा मन्दिर और है, जिसमें स्वामी विवेकानन्द की माता का चित्र स्थापित है। इसे स्वामी विवेकानन्द के एक श्रद्धालु भक्त ने बनवाया है।

मठ की दूसरी ओर एक सुरम्य घर बना हुआ है। इस अतिथि-विश्रामालय में किसी पर्व या
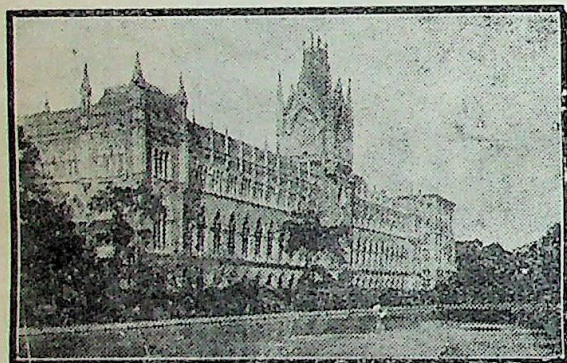
[कलकत्ते का हाईकोर्ट]

उत्सव के दिन केवल स्त्रियाँ विश्राम करती हैं। इसकी दूसरी ओर एक विस्तारयुक्त भोजनालय है, जहाँ नित्य अनेक साधु-संन्यासी और ईश्वर-प्रेमी महात्मा भोजन करते हैं। यहाँ अनेक मनुष्य आकर द्रव्य का दान या अन्य भाँति की सहायता कर जाते हैं। इसी आधार पर यह संस्था चल रही है। न केवल भारत के, किन्तु अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी इस मठ के दर्शनार्थ आते हैं। इस मठ के पार्श्व में एक ऐश्वर्यशाली मारवाड़ी का एक विशाल उद्यान है। इस उद्यान में रङ्ग-बिरङ्गे चटकीले नाना भाँति के कुसुम छोटी-छोटी ललित लताओं के साथ रँगरलियाँ करते रहते हैं।

बेलूर-मठ में हमने एक विचित्र वृक्ष देखा, जिसका नाम नाग-लिंग वृक्ष था। यह वृक्ष विस्तार या ऊँचाई में चम्पा या मौलसिरी के वृक्ष के समान था। इसकी विचित्रता इस बात में थी कि इस पर मूल के पास फूल लगते हैं, न कि अन्य वृक्षों की भाँति टहनियों पर। फूल का आकार कुंडलाकार नाग (साँप) का सा और मध्य में इसके एक शिव-लिङ्ग सा खड़ा रहता है। इस वृक्ष की विभिन्न प्रकृति को देख कर हमें अत्यन्त आनन्द और कौतुक के साथ सृष्टि का वैचित्र्य विज्ञान भी प्राप्त हुआ। स्थान की एकान्तता, मनोरञ्जकता, पावनता प्रशंसा के योग्य थी। ऐसे स्थानों में निवास करने से मनुष्य के हृदय में अच्छे-अच्छे भावों का विकास होने लगता है।

कलकत्ते का चिड़ियाघर भारत भर में विख्यात है। भारत में इसकी समता किसी दूसरे स्थान का चिड़िया-घर नहीं कर सकता। यह स्थान अजायबघर से लगभग तीन मील की दूरी पर स्थित है। इसको देखने के लिए एक आने का प्रवेश-टिकट लेना पड़ता है। यहाँ न केवल भारत के किन्तु अफ़्रीका, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जापान आदि अनेक देशों के पशु-पक्षी रक्खे गये हैं। यहाँ हिमालय जैसे शीत-प्रधान प्रदेश के पशु और अफ़्रीका जैसे उष्णता-प्रधान देश के पशु भी देखने को मिलते हैं। यहाँ इन विभिन्न प्रकृति के पशु-पक्षियों के खाने के सुप्रबन्ध के अतिरिक्त उनके रहने के लिए स्थान का भी बहुत सुन्दर प्रबन्ध है।

हाथियों के साथ बालकों का खेल—इस चिड़िया-घर में दो विशाल शरीरवाले हाथी एक वृक्ष के तले बँधे हुए थे। बालकों का उनके साथ खेलना बहुत रुचि-कर था। बालक उन्हें कहते थे—'सलाम करो'। इस पर हाथी अपनी सूँड़ नमस्कार करने के लिए सिर पर ले जाते थे और छोटे बालक उन्हें गन्ने के टुकड़े एक एक करके देते थे। इसी खेल के कारण वहाँ पर एक गन्ने की दूकान खुल गई है। यह दृश्य भी देखने योग्य था।

वनमानुष—ये आकार में मनुष्य का पूरा अनुकरण करते हैं। किन्तु एक तो इनके शरीर में रोम अधिक हैं और दूसरे इनका मुख अधिक ऊपर उठा हुआ है। इनका रस्सो के साथ व्यायाम करना बड़ा मनोरञ्जक था। इनको देखने के लिए लोगों की बड़ी भीड़ लगी रहती है।

रफ़स काँगरू—यह अद्भुत जानवर आस्ट्रेलिया के वनों में पाया जाता है। इसका आकार भेड़ के समान है, इसमें विचित्रता इस बात की है कि यह पूँछ की सहायता से चलता है। इसका चलना भी देखने योग्य है।

गोरिला—यह एक पर्वतीय जानवर है। इसका क़द भेड़ और बकरे के समान है। यह काश्मीर, भूटान, आसाम और हिमालय पर्वत में पाया जाता है। इसका रूप-रङ्ग देखने योग्य है।

महिष-गौ—यह जानवर अत्यन्त अद्भुत है। इसको देखकर मनुष्य को स्वाभाविक रूप से भ्रम होता है कि यह गौ है या महिष। इसके सींग, पूछ और मुँह गौ के से हैं, किन्तु चर्म, रोम आदि महिष के समान हैं। यह भी यहाँ विदेश से मँगाया गया है।

त्रिडल्डघू—यह जानवर दक्षिणी अफ़्रीका में पाया जाता है। इसकी पूँछ के ऊपर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। और गले के नीचे भी सिंह की भाँति लम्बे-लम्बे बाल हैं। यह भी दर्शनीय है।

सफ़ेद रीछ—यह रीछ हिमालय जैसे शीतप्रधान स्थानों में पाया जाता है। इसका रङ्ग सफ़ेद है। कलकत्ता जैसे उष्ण प्रदेशों में यह कदापि जीवित नहीं रह सकता, किन्तु इस चिड़ियाघर में इसके लिए इसकी प्रकृति के अनुसार शीतोपचार किये गये हैं।

अमेरिका का बिसन—यह जानवर अमेरिका के पहाड़ी देशों में पाया जाता है। इसका आकार भैंस के समान है। इसका रूप अत्यन्त भयानक और विचित्र है। भारत में इसके आकार का कोई जानवर नहीं है।

जिरैफ़—इसका रूप ठीक ऊँट के समान है। इसकी पूँछ पर अधिक बाल होते हैं। यह भी अमेरिका में पाया जाता है। इसके चर्म पर एक प्रकार के चिह्न हैं। इसके पैर और गर्दन लम्बी होती हैं।

दरियाई घोड़ा—यह घोड़ा अफ़्रीका की नदियों में पाया जाता है। इसका आकार घोड़े से बहुत कम मिलता है। इसका चर्म बहुत मोटा है। इस चिड़ियाघर में इसके लिए पानी का एक बड़ा कुंड बनाया गया है। यह कभी कभी पानी से बाहर भी आ जाता है।

सर्पशाला—पशु और पक्षियों के अतिरिक्त इस
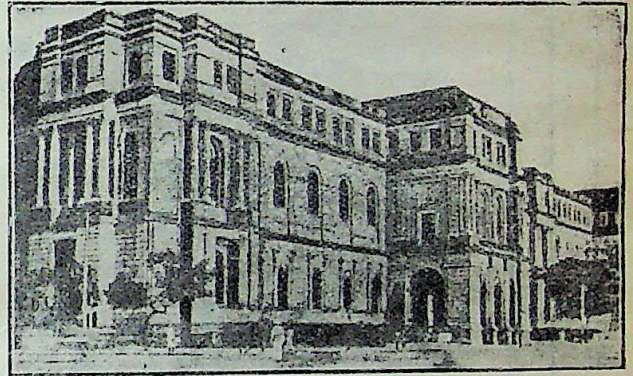
[कलकत्ते का अजायबघर]

चिड़ियाघर में एक सर्प-शाला भी है, जिसमें अनेक प्रकार के सर्प और काले रङ्ग के मगरमच्छ रक्खे गये हैं। साँप शीशे के डिब्बों में बन्द हैं और दर्शक बाहर से उन्हें भली भाँति देख सकते हैं। साँपों की सूक्ष्म गति बड़ी भयावनी प्रतीत होती है।

सर्प-भक्षक सर्प—यह सर्प अत्यन्त विषैला होता है। यह सर्पों को भी खा जाता है। इसका रूप तो अन्य सर्पों की ही भाँति है, किन्तु इसका रंग विशेष रूप से असाधारण है।

रंग-परिवर्तक सर्प—यह सर्प अत्यन्त ही विचित्र है। यह देखते ही देखते रङ्ग परिवर्तन करता है। अभी हरा-सा है तो अभी पीला हो जाता है। इसी

प्रकार अनेक रंग बदलता है। यह वृक्ष पर भी चढ़ जाता है।

इस सर्प-शाला में अनेक प्रकार के सर्प हैं। कई ऐसे हैं जिनका शरीर बहुत भारी है और कई ऐसे हैं जिनका शरीर बहुत छोटा। कई सर्प बहुत ही विषैले हैं और कई निर्विष हैं। इन विविध प्रकार के सर्पों के अतिरिक्त इस सर्प-शाला में पानी के दो छोटे-छोटे कुंड बने हुए हैं, जिनमें हर समय पानी आता-जाता रहता है। उन्हीं कुंडों में तीन काले मगरमच्छ रक्खे गये हैं जो दो दो गज से अधिक लम्बे नहीं हैं। इनकी कौतुक-क्रीड़ा भी देखने के योग्य है।

काली का मन्दिर—८ सितम्बर को प्रातःकाल हमने कालीघाट में काली के दर्शन किये। कालीघाट जाने के लिए बसें, मोटर, और ट्रामगाड़ियाँ मिल जाती हैं। काली-मन्दिर-पर्यन्त लगभग चौथाई मील पैदल चलना पड़ता है। एक पण्डा जो अँगरेज़ी-भाषा में भली-भाँति बातचीत कर सकता था, काली के मन्दिर तक हमारे पीछे पीछे आया। हमने उसके साथ तय किया कि हम दो दो आने प्रतिमनुष्य के हिसाब से दर्शन करवाने के लिए उसे देंगे। उसने दो-चार पैसे का फूल-प्रसाद हमारे लिए मोल लिया, और हमारे आगे हो लिया। एक ओर से मन्दिर की आधी परिक्रमा

[दक्षिणेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर]

करके हम ज्यों ही मन्दिर के द्वार से प्रवेश करना चाहते थे कि हमसे दो दो पैसे प्रति मनुष्य प्रवेश-शुल्क माँगा गया। हमने प्रवेश-शुल्क दिया और दर्शनार्थ काली के मन्दिर के भीतर गये। मन्दिर के भीतर काली की भयावनी मूर्ति स्थापित है। मूर्ति के गले में फूलों के अनेक हार पड़े हुए थे। मूर्ति की जिह्वा सोने के एक बहुत पतले पत्ते की बनी हुई है और इसी कारण वह स्वाभाविक रूप से कुछ हिलती रहती है। भोले-भाले श्रद्धालु यहाँ तक विश्वास कर बैठते हैं कि काली उनके सम्मुख जिह्वा हिलाती हुई उग्ररूप दिखा रही हैं। काली के दर्शन करने के उपरान्त यात्री को वहाँ अधिक काल तक खड़ा नहीं होने देते, क्योंकि ऐसा करने से अधिक भीड़ होजाने का डर रहता है।

मन्दिर के मुख के सामने एक बहुत लम्बा-चौड़ा ऊपर से छाया हुआ स्थान है, जिसके तले सैकड़ों पण्डित सप्तशती का पाठ करते रहते हैं। इसी स्थान के सम्मुख एक खुला चौक है, जिसमें दो-चार लकड़ी की कीलें गाड़ दी गई हैं, जिसके मध्य में स्थान ख़ाली है जिसमें बकरों और भैंसों के सिर रक्खे जाते हैं और फिर एक चोट में काट दिये जाते हैं। कीलों के आस-पास रक्त की धारायें बहती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। यह स्थान वास्तव में बीभत्स-रस का एक केन्द्र है। जिस समय हम इस स्थान को देखने के लिए गये उस समय भी यहाँ अनेक पशु मारे जाने के लिए खड़े किये गये थे।

मनसा वृक्ष—जिस समय हम मन्दिर की परिक्रमा करके उसकी दूसरी ओर गये, हमें एक विचित्र वृक्ष दिखाई दिया। हमारे साथी पंडे ने कहा—यह मनसा वृक्ष है। यदि किसी स्त्री को सन्तान न होती हो, वह बाँझ हो और यहाँ आकर इस वृक्ष की पूजा करे तो उसके सन्तान हो जायगी। उसके कथन में कहाँ तक सत्यता थी, ईश्वर ही जाने। वृक्ष की उँचाई तीन-चार गज़ से अधिक नहीं थी, किन्तु वह अधिक फैला हुआ था। वृक्ष पर पत्ते नहीं थे, टहनियाँ कुछ मोटी और काँटेदार थीं।
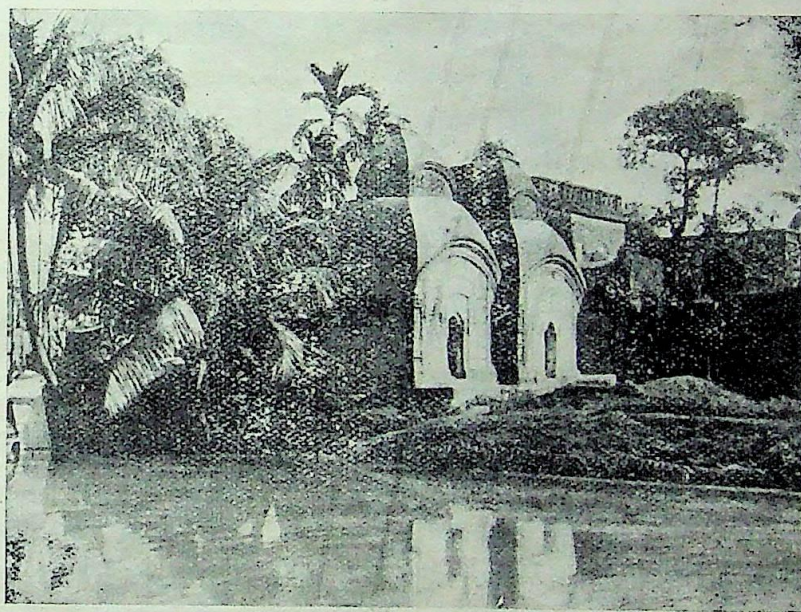
[कालीघाट के मन्दिर के समीप मन्दिर और तालाब]

मन्दिर की चित्र-कला—कालीघाट में छोटे घरों के अतिरिक्त केवल काली का मन्दिर ही देखने योग्य है। इस मन्दिर की उँचाई बहुत अधिक नहीं, किन्तु इसके ऊपर की चित्रकारी बहुत ही सुन्दर और चित्ताकर्षक है। चित्रकार ने मन्दिर के ऊपर इतने सुन्दर फूलों के चित्र बनाये हैं कि देखते ही बनता है। विशेषरूप से परिक्रमा के ऊपर अनुपम

[विक्टोरिया मेमोरियल]

कौतुकोत्पादक चित्रण किया गया है। इतनी मनोहर चित्रकारी बहुत कम स्थानों में देखने में आती है।

बालीगंज तालाब—८ सितम्बर को सायंकाल हम बालीगंज में तालाब देखने गये। बालीगंज अजायबघर से लगभग तीन मील की दूरी पर है। यहाँ जाने के लिए मोटर, रिक्सा आदि सवारियाँ मिल जाती हैं, किन्तु ट्रामगाड़ी यहाँ नहीं जाती। सायंकाल था, मन्द और मृदु शीतल हवा चल रही थी। तालाब के चारों ओर प्रकृति-प्रेमी अपनी प्रेम-पिपासा की पूर्ति कर रहे थे। सड़क के किनारे के विद्युत्-दीपक तालाब के जल में प्रतिबिम्बित होकर ऐसे प्रतीत होते थे मानो निर्मल गगन में चारों ओर से तारकमाला अपूर्व सुन्दरता का आभास कर रही हो। तालाब के एक ओर पानी के बीच में एक छोटी सी मस्जिद बनी हुई है, उसके चारों ओर अनेक बेंचें बिछी हुई हैं, जिन पर बैठ कर प्रकृति के उपासक प्रकृति के प्रेम की आराधना में इतने लवलीन हो जाते हैं कि उन्हें प्रकृति की लीला के अतिरिक्त समस्त विश्व में कुछ नहीं दीखता।

इस तालाब में केवल अँगरेज़ ही नौकाओं में बैठ कर सैर कर सकते हैं। छोटी छोटी नौकायें पानी के ऊपर तैरती हुई बहुत सुहावनी लगती हैं। डाँड़ों के निरन्तर आघात उसकी ललित लहरों को इतना विचलित कर देते थे कि उन्हें तटों का सहारा लेना पड़ता था। मन्द पवन की उन लोल लहरों के साथ बहुत ही सुन्दर लीला दृष्टिगोचर होती थी। तालाब के तट की भूमि पर प्रकृति देवी के स्वागत के लिए कोमल हरी हरी घास के रूप में हरे गलीचे बिछे हुए थे। प्रकृति के राज्य में समग्र वस्तुओं की रमणीयता लोचनों को लुभानेवाली थी, जिसको देखकर मन अघाता ही नहीं।

विक्टोरिया-स्मारक—यह स्मारक अजायबघर से लगभग आधा मील की दूरी पर स्थित है, और महारानी विक्टोरिया की याद में बना है। इस स्मारक पर चित्रकला का अधिक काम है। स्मारक एक विचित्र प्रकार से बना हुआ है, आगे और पीछे दोनों ओर से आने-जाने के मार्ग हैं। स्मारक के गुम्बज़ की भीतरी ओर अनुपम और अद्भुत चित्रकारी की गई है। यहाँ के भिन्न-भिन्न चित्र महारानी विक्टोरिया के राज्य-सम्बन्धी उत्सवों या विशेष कार्यों को प्रदर्शित करते हैं।

गुंबज़ के आस-पास ऊपर की मंज़िल में अनेक छोटी छोटी कोठरियाँ बनी हुई हैं। इन कोठरियों में अनेक चित्र रक्खे हुए हैं जिनमें अधिकतर फ़ोटो हैं। कई चित्र ४ × ३ गज़ लम्बे-चौड़े हैं। कुछ चित्र हिमालय आदि भारतीय प्रदेशों के अच्छे दृश्य प्रदर्शित करते हैं और कुछ १८५७ के ग़दर के दृश्य का चित्रण करते हैं। कुछ लखनऊ के सैनिकों का विद्रोह, लखनऊ का आक्रमण, और लखनऊ के विजय को दर्शाते हैं। एक विशाल चित्र में हैवेलौक, औट्रम और सर कोलिन कैंपबेल के विजय के उपरान्त उनके मिलने का चित्रण किया गया है। कानपुर, दिल्ली, इलाहाबाद के विद्रोह के भी यहाँ अनेक चित्र रक्खे गये हैं। एक बड़े चित्र में सम्राट् ज़ार्ज का १९११ का राज्याभिषेक अत्यन्त उत्तम प्रकार से चित्रित किया गया है। इनके अतिरिक्त बड़े लाटों के भी यहाँ अनेक विशाल चित्र हैं।

स्मारक के नीचे के भाग में अनेक कोठरियाँ हैं। एक कोठरी में अनेक अँगरेज़ शासकों के चित्र रक्खे गये हैं। एक दूसरी कोठरी में महारानी विक्टोरिया के चित्र अन्य स्त्रियों के साथ हैं। ये चित्र महारानी का स्त्रीत्व के साथ आदरभाव प्रकट करते हैं। एक कोठरी में महारानी की कुर्सी और मेज़ लगी हुई है। इनके अतिरिक्त रेशमी वस्त्रों के नमूने, ऊनी वस्त्रों के नमूने, गलीचे और अन्य वस्तुओं के नमूने भी यहाँ रक्खे गये हैं। इस स्मारक के भीतर एक नहीं, अनेक संगमरमर की विशाल मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं। इन मूर्तियों में महारानी की मूर्ति, बड़े लाटों की मूर्तियाँ भारतीय राजा-महाराजाओं ने और नवाबों ने भेंट के रूप में इस स्मारक में प्रदान की हैं। स्मारक के बाहर सेना के चित्र बने हुए हैं।

स्मारक के गुंबज़ के ऊपर एक बहुत भारवाली परी की मूर्ति रक्खी गई है। कुछ समय पूर्व यह मूर्ति स्वयं पंखों-द्वारा वायु के वेग से घूमा करती थी, किन्तु आज-कल यह कुछ बिगड़ी हुई है। इस स्मारक में सिक्ख सैनिकों का पहरा लगा रहता है।

स्मारक के बाहर बड़े मनोहर उद्यान बने हुए हैं। इन उद्यानों के मध्य में तालाब बने हुए हैं। इन तालाबों और उद्यानों से इस स्मारक की सुन्दरता बहुत बढ़ गई है। उद्यानों की हरी भूमि अत्यन्त सुहावनी प्रतीत होती है। उद्यान में अनेक रंग के सुगन्धित पुष्प अपनी चमक-दमक से दर्शकों के लोचनों को तृप्त करते हैं। पुष्पों की सुगन्धि मन्द, मृदु, शीतल पवन के साथ मिलकर स्मारक के आस-पास वायु-मण्डल को शुद्ध करती है। स्मारक के उद्यानों में तालाबों का जल अतीव निर्मल और स्वच्छ रहता है। जिस समय तालाब में स्मारक का प्रतिबिम्ब पड़ता है, ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्मारक के

साथ प्रतिद्वन्द्विता के लिए पाताल से एक मणिमय स्मारक पृथ्वी के ऊपर आ रहा है। सायङ्काल के समय हज़ारों दर्शक इस स्मारक के उपवन में आकर बैठते हैं और इसकी सुलभ सुगन्धि आदि का लाभ उठाते हैं।

पार्श्वनाथ का मन्दिर—पार्श्वनाथ का मन्दिर शामबाज़ार के अत्यन्त समीप है। शामबाज़ार तक ट्रामगाड़ी भी जाती है और फिर लगभग आधा मील पैदल जाना पड़ता है। यह मन्दिर जैन-सम्प्रदाय का है। यहाँ पार्श्वनाथ (जैन-धर्म-प्रवर्तक) की पूजा होती है। मन्दिर के गगनचुम्बी शिखर बहुत दूर से दिखाई पड़ते हैं। मन्दिर के स्थान का क्षेत्रफल अधिक नहीं; किन्तु मन्दिर का स्थापत्य और चित्रकला-कौशल अतीव प्रशंसनीय है।

मन्दिर में प्रवेश-तोरण पर सदैव एक पहरेदार बैठा रहता है। मन्दिर के ऊपर चढ़ने के लिए कुछ सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। मन्दिर के मध्य-भाग में पार्श्व-नाथ की मूर्ति स्थापित है जो अनेक वस्त्रों और आभूषणों से सजाई रहती है। मन्दिर का स्थान अनेक झाड़-फ़ानूसों और विविध प्रकार के सुन्दर चित्रों से जगमगाता रहता है। मन्दिर की सजावट को देखकर दर्शक आश्चर्यान्वित हो जाता है। मन्दिर में पिरोये हुए काँच के छोटे टुकड़े हीरे, मणियों और रत्नों की भ्रान्ति पैदा करते हैं। इस छोटे से आकारवाले मन्दिर में शिल्पकला बड़ी उत्तमता से प्रदर्शित की गई है। जब इन काँच के टुकड़ों पर विद्युत्प्रकाश पड़ता है तब असंख्य प्रज्वलित प्रदीप दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

[कलकत्ते का प्रसिद्ध जैन-मन्दिर]

मन्दिर के चौक में भी अद्भुत शिल्प-कला का चातुर्य प्रकट किया गया है। स्थान स्थान पर अप्सराओं की मूर्तियाँ सजीव सी जान पड़ती हैं। मूर्तियों का लचकदार खड़े होने का ढंग, मूर्तियों के प्रति अङ्ग की सुन्दर बनावट अत्यन्त चित्ताकर्षक है, दर्शक की दृष्टि जिस चित्र पर पड़ती है वहाँ से बड़ी कठिनता से हटती है। मन्दिर की सीढ़ियों के दोनों ओर दो बड़े बड़े हाथी बनाये गये हैं। ऐसा प्रतीत होता

है, ये श्वेत हाथी ऐरावत हैं और यहाँ अमरावती के भ्रम से आगये हैं।

अनेक स्थानों पर संगमरमर के कौतुकोत्पादक जँगले और सुन्दर मूर्तियाँ इस मन्दिर की मनोरञ्जकता को बहुत अधिक बढ़ा रही हैं। मन्दिर के सामने एक छोटा सा तालाब बना है। उसने मन्दिर की शोभा चौगुनी बढ़ा दी है। सायङ्काल के समय जब यह मन्दिर विद्युत्प्रकाश से जगमगाता है, इसका ठीक प्रतिबिम्ब पानी में दूसरे मन्दिर का भ्रम पैदा करता है। छोटी लहरों के हिलने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सारा मन्दिर पानी के ऊपर तैर रहा है। स्थान स्थान पर दर्शकों के बैठने के लिए बेंचें लगी हुई हैं।

मिस्टर स्मिथ ने लिखा है कि गुप्तकाल के उपरान्त भारतीय शिल्प-कला का ह्रास होता जाता है। यह कथन भले ही किसी अंश में ठीक हो, किन्तु पार्श्वनाथ के मन्दिर को देखकर मानना पड़ेगा कि गुप्तकाल के उपरान्त शिल्पकला ने कई अंशों में उन्नति भी की है। अस्तु।

हमें १३ सितम्बर को यूनिवर्सिटी में उपस्थित होना था और हम ११ तारीख़ तक अधिक समय लगा चुके थे। हमारे बङ्गाली साथी का मन अभी नहीं भरा था। वे हमसे अधिक ठहरने के लिए कहने लगे। उनके सौभाग्य से उन्हें एक अच्छा बहाना भी मिल गया। 'शेष बहादुरी' बङ्गाल के एक अद्वितीय नाटक खेलने के पात्र हैं। १३,१४ सितम्बर को इनका खेल होना था। हमारे साथी ने कहा, हम बिना खेल देखे कलकत्ता से कदापि न जायँगे। हमारे एक पहाड़ी साथी भी कहने लगे कि 'शेष बहादुरी' का खेल तो हम भी अवश्य देखेंगे। इन्होंने अपना कार्यक्रम बनाया कि नालन्द, राजगिर, शान्तिनिकेतन आदि इस भ्रमण में न देखे जायँगे। हमने सोचा, नाटक तो जीवन में अनेक बार देखेंगे, किन्तु ये स्थान नहीं देखे जा सकेंगे, और आचार्यजी की आज्ञा का भी हमें ध्यान था। अतएव अपने कार्यक्रम के अनुसार हम अपने बङ्गाली मित्र के यहाँ से विदा हुए और शान्ति-निकेतन जाने के विचार से हम अन्य साथियों से 'बख़्तियारपुर स्टेशन' पर जा मिले।

—श्रीचक्रधर 'हंस'

शुभ स्वागत

(१)

स्वागत बारम्बार तुम्हारा,
आओ आओ नूतन वर्ष !
बड़ा हर्ष होता है हमको,
देख तुम्हारा यह उत्कर्ष ॥

(२)

मङ्गलदायक मोद-विधायक,
जो करता विघ्नों का नाश।
वही विनायक विघ्नराज बन,
करता तू बल-बुद्धि-विकाश ॥

(३)

भरे हुए हैं मोह-लोभ के,
सागर के सागर जो आज।
तू उनको पीनेवाला है,
बलधारी कुम्भज ऋषिराज ॥

(४)

जो अपने कर में रखते हैं,
दुष्ट-विदारक परशु ललाम।
शोक-सहस्रबाहु-संहारक,
तू है वही परशुधर राम ॥

(५)

क्रोध-द्वेष-दशकन्धर का जो,
है वर वीर वाम बलधाम।
वही महा अभिराम राम बन,
तू आया देने आराम ॥

(६)

हमें चैन की वंशी की नित,
सुघर सुनाता है जो तान।
वही श्याम तू यहाँ लुटाने,
आया गीता-ज्ञान-निधान॥

(७)

सत्य-युधिष्ठिर-बन्धुजनों को,
जो देता आनन्द असीम।
वही कष्ट-कीचक-नाशक तू—
महामहिम है भीषण भीम॥

(८)

तृप्ति-दान कर जो हरता है,
शुद्ध सुधा का गर्व बलात।
पारतन्त्र्य-पावक-क्षय-कारक,
तू है वही विमल जल-पात॥

(९)

कान्त-कामनाओं का कानन,
साहस-शौर्य-सदन जयमाल।
तू उत्साह-शक्ति-बल-निधि है,
दुःख-निराशाओं का काल॥

(१०)

जो साहित्य-सुधा का सन्तत—
सिन्धु बहाती सदा सहर्ष।
प्यारी मेरी सरस्वती वह,
अजर-अमर हो हे नव वर्ष!॥

—प्रतापनारायण
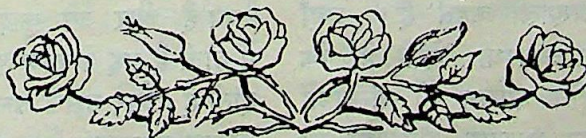
राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श और उसकी मूलनीति

[जनतन्त्र-राष्ट्र-सम्बन्धी दो पृथक् शासन-प्रणालियों का उल्लेख करके राष्ट्र-सङ्घ की रचना एवं तत्सम्बन्धी विशेषताओं का विद्वान् लेखक ने अपने इस लेख में विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसके बाद उन्होंने भारत की आधुनिक दशा को दृष्टि में रखकर यह लिखा है कि राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श भारत के लिए कहाँ तक उपयोगी है। अन्त में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि प्रान्तों और देशी राज्यों को जब तक स्वायत्त शासन नहीं प्राप्त होगा तब तक भारत में राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना हितकर न होगी।]

अँगरेज़ सरकार ने गोलमेज़-सभा की बैठक में यह स्वीकार कर लिया है कि समग्र भारतवर्ष के शासन-यन्त्र का संस्कार राष्ट्र-सङ्घ के आदर्श को सामने रखते हुए किया जायगा। राष्ट्र-सङ्घ क्या है, इसकी मूलनीति क्या है और भारतवर्ष की आधुनिक दशा की दृष्टि से राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श कहाँ तक उसकी कठिन शासन-समस्या के समाधान करने में समर्थ है—इन बातों का जनसाधारण को स्पष्ट ज्ञान नहीं है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि ये सब लोगों के लिए स्पष्ट हो जायँ।

जनतन्त्र-राष्ट्र के शासन का स्वरूप दो प्रकार का होता है। इनमें से राजनीति-शासन के आचार्यों ने दो भेद रक्खे हैं—एक को तो वे एकात्मक प्रणाली (यूनीटरी फ़ार्म) का शासन कहते हैं। और दूसरे को संयुक्त प्रणाली कहते हैं। जहाँ जिस राष्ट्र की शासन-व्यवस्था ऐसी हो कि सम्पूर्ण शासन-शक्ति केन्द्रीय शासन की संस्थाओं में ही प्रतिष्ठित हो और स्थानीय संस्थाओं को केन्द्रीय शासन-यन्त्र से ही अपने अधिकार प्राप्त होते हों, उस राष्ट्र को एकात्मक प्रणाली के नियमाधीन कह सकते हैं। ऐसे राष्ट्र में स्थानीय सरकार का अपने अस्तित्व के लिए भी केन्द्रीय सरकार के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार के शासन की यह विशेषता है कि राष्ट्र के केन्द्रीय और स्थानीय संस्थाओं में पूर्वनिर्दिष्ट राजनीति या विधानानुसार शासनाधिकारों का बँटवारा नहीं होता। संक्षेप से यह कहा जा सकता है कि शक्ति का एक ही मूलाधार होता है और वह केन्द्रीय सरकार होता है। शासन की सुगमता के लिए इस प्रकार के राष्ट्रों के भी छोटे-छोटे भाग किये जाते हैं जैसे कि प्रान्त, म्यूनिसिपलिटी, डिस्ट्रिक्टबोर्ड इत्यादि में से प्रत्येक का अपना एक सीमाबद्ध स्वतन्त्रता का क्षेत्र या मण्डल रहता है और स्थानीय शासन का भी अधिकार रहता है। परन्तु साधारणतः यह स्थानीय शासन का क्षेत्र केन्द्रीय शासन के द्वारा ही परिवर्तित या स्थापित होता है और जो कुछ भी स्वतन्त्रता उसके अंश में होती है वह केन्द्रीय सरकार के द्वारा ही सौंपी हुई होती है और उसके इच्छानुसार सङ्कुचित अथवा विस्तृत हो सकती है। संक्षेप से यह कहा जा सकता

है कि ये केन्द्रीय सरकार के ही भाग होते हैं जो केन्द्रीय सरकार से ही स्थापित होते हैं इसलिए कि वे केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि-स्वरूप कार्य करते रहें। वे केन्द्रीय सरकार के ही अधीन होते हैं। और यदि उनका कोई अलग अधिकार है तो यह समझना चाहिए कि वह केन्द्र की अनुमति या आज्ञा से ही उन्हें प्राप्त है।

योरप और एशिया के भिन्न भिन्न देशों में प्रायः इसी श्रेणी के राष्ट्र पाये जाते हैं। ग्रेटब्रिटेन में कौन्टी और नगरों को स्थानीय स्वतन्त्रता अधिक परिमाण में प्राप्त तो सही है, परन्तु यह पार्लियामेंट के नियमों से ही प्राप्त होती है। पार्लियामेंट के इच्छानुसार यह स्वतंत्रता घटाई-बढ़ाई जा सकती है—स्थानीय सरकार की बहुत सी कार्यवाही केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों के ही हाथों में होती है।

योरप में फ्रांस एक ऐसा देश है जो एकात्मक शासन-प्रणाली का मुख्य उदाहरण गिना जा सकता है। फ्रांस में केन्द्रीय शासन का प्रभुत्व स्थानीय शासन के ऊपर सुदृढ़रूप से जमा हुआ है। फ्रांस की स्थानीय शासन-विधि बहुत उत्तम है और उसका प्रभाव दूसरे देशों पर भी पड़ा है।

अब देखना चाहिए कि संयुक्त शासन-प्रणाली किसे कहते हैं? जिस राष्ट्र में शासन-व्यवस्था ऐसी हो कि उसकी समग्र शासन-शक्ति केन्द्रीय और प्रान्तीय अथवा स्थानीय सरकारों में सम्पूर्णतः अलग अलग प्रथम से ही राज-विधानानुसार बाँट दी गई हो तो उसको संयुक्त शासन-प्रणाली के अधीन कह सकते हैं। ऐसी प्रणाली में प्रान्तीय शासक-सम्प्रदाय केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं होता है। प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकार का ही एक अंश-मात्र नहीं होती किन्तु उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। अपने क्षेत्र में वह सम्पूर्ण स्वाधीन होती है। उसकी स्वतन्त्रता का क्षेत्र केन्द्रीय सरकार नियत नहीं करती है। किन्तु वह तो पूर्व-निर्मित नियमानुसार निर्दिष्ट हो जाता है। केन्द्रीय शासन के हाथ में कुछ भी नहीं होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि संयुक्त शासन-विधि एक विशेष प्रकार की शासन-विधि है, जिसमें स्थानीय और केन्द्रीय शासन एक सामान्य या साधारण प्रभुत्व-शक्ति के अधीन एकत्र हो—इसमें केन्द्रीय और स्थानीय शासन-संस्थायें दोनों अपनी अपनी सीमा के भीतर प्रधान होती हैं। यह विभिन्न सीमा शासन-व्यवस्था के द्वारा प्रथम से ही निर्दिष्ट हो जाती है। संयुक्त शासन एक प्रकार का द्वैध शासन है। केवल केन्द्रीय शासन का ही नहीं, किन्तु इसमें सम्पूर्ण स्वतन्त्र स्थानीय शासन का स्थान है। इसमें स्थानीय शासन का प्रादेशिक क्षेत्र केवल-मात्र शासन की सुगमता के लिए निर्मित रहता है। यह क्षेत्र जिले के बराबर ही नहीं होता है, किन्तु यह तो एक स्वतन्त्र राजनैतिक मण्डल होता है जो स्वयं प्रधान और एक अर्थ में स्वयं स्थापित होता है। उसकी राज्य-व्यवस्था अलग होती है— केन्द्रीय और स्थानीय सरकारों में केवल संयोगसूत्र रहता है।

इस प्रकार की शासन-विधि होने से राष्ट्र एक सङ्घ का रूप ग्रहण करता है। सङ्घ समुदाय को कहते हैं। इसमें यदि राष्ट्र अर्द्ध स्वतन्त्र देशों का या प्रान्तों के सम्मेलन से बना हो तो उसे राष्ट्र-सङ्घ कहना चाहिए। परन्तु मुख्य बात तो यह है कि राष्ट्र-सङ्घ होने से ही उसकी शासन-विधि भी संयुक्त प्रणाली की होनी चाहिए—अब देखना चाहिए कि राष्ट्र-सङ्घ बनता कैसे है। राजनीति-शास्त्र के आचार्य्य कहते हैं कि यदि कई एक स्वाधीन राष्ट्र एक साधारण प्रभुत्वशक्ति के अधीन एकत्र सम्मिलित होकर एक सामान्य या साधारण केन्द्रीय शासनयन्त्र सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों में प्रबन्ध करने के लिए स्थापित करते हों तो वह एक राष्ट्र-संघ बन जाता है अथवा कई एक परतन्त्र प्रान्त एक ही प्रधान की इच्छा व कार्य से स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त करते हैं तो भी वह एक राष्ट्र-सङ्घ बन जाता है। ऐसे राष्ट्र-सङ्घ के प्रत्येक प्रदेश का अपना अपना स्वाधीन अधिकार रहता है। ये अधिकार उनमें

व्यापक रूप से रहते हैं, ये अलग नहीं किये जा सकते। राष्ट्र-सङ्घ के भिन्न भिन्न अंश शासन-कार्य की सुगमता के लिए ही निर्मित स्थानीय शासन-विभाग-मात्र ही नहीं होते, किन्तु इन अंशों को अपनी अपनी सीमा के भीतर सम्पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त रहती है। इनमें के अधिकार प्रथम से ही निर्दिष्ट रहते हैं और ये किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहते हैं।

ऊपर लिखे हुए दोनों प्रकार के राष्ट्रसङ्घों के उदाहरण पाये जाते हैं। अमरीका के संयुक्त-राष्ट्र प्रथम प्रकार के राष्ट्र-सङ्घ का उदाहरण हैं। १७८९ ईसवी में १३ राष्ट्रों ने जो पहले पूर्णतया स्वाधीन थे, एकत्र मिलकर अपना एक केन्द्रीय शासन-विधान बनाया और इस तरह उनका एक राष्ट्रसङ्घ बन गया। ब्रेजिल, अँगरेज़ी उत्तरी अमरीका, मेक्सिको, आर्जेन्टाइन और वेनेज़ुला आदि द्वितीय प्रकार के राष्ट्र-सङ्घ के उदाहरण हैं। स्विट्ज़रलेंड और जर्मनी भी एक पृथक् प्रकार के राष्ट्र-संघ के उदाहरण हैं।

राजनीतिज्ञ प्रोफ़ेसर डाइसी के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ बनने के लिए दो शर्तों का मौजूद होना अत्यन्त आवश्यक है। इनके बिना तो राष्ट्र-सङ्घ बन ही नहीं सकता। प्रथम शर्त यह है कि कई एक प्रदेश विद्यमान होने चाहिए जैसे कि स्विट्ज़रलेंड के 'कैन्टन' या अमरीका के 'उपनिवेश' या कनैडा के 'प्रान्त' हैं, जिनमें बहुत ही घनिष्ठ ऐतिहासिक या भौगोलिक और जातीय सम्बन्ध हो—यह सम्बन्ध ऐसा घनिष्ठ होना चाहिए कि उनके अधिवासियों की दृष्टि में वे एक साधारण राष्ट्रीयता की छाप के प्रतीत होते हों। दूसरी बात यह है कि उनके अधिवासियों में एक बड़े विचित्र भाव का होना आवश्यक है। उनमें सङ्घीभूत होने की इच्छा तो होना ही चाहिए, परन्तु अपने अपने पृथक् अस्तित्व को मेट कर सम्पूर्ण एकता की इच्छा न होनी चाहिए—उनमें मिल जाना और अलग रहना, पार्थक्य और ऐक्य इन दोनों विरुद्ध बातों के एकत्र करने की शक्ति होनी चाहिए। राष्ट्रीय एकता और प्रान्तीय विभिन्नता में विरोध मिटाने का सामर्थ्य होना चाहिए। शक्ति के बँटवारे से हानि और राष्ट्रीय एकता से लाभ—इन दोनों बातों में अनुकूलता स्थापित करने की चेष्टा होनी चाहिए।

राष्ट्र-सङ्घ की मुख्य विशेषतायें डाइसी साहब के मतानुसार तीन हैं—प्रथम तो एक राज्य-व्यवस्था का होना जो सम्पूर्ण सङ्घ और उसके अंशों के पारस्परिक सम्बन्ध को नियत करती हो और उनका अपना अपना क्षेत्र निर्दिष्ट करती हो, अत्यन्त आवश्यक है। केन्द्रीय राज्य-व्यवस्था प्रान्तीय राज्य-व्यवस्था से श्रेष्ठ होती है। नहीं तो सङ्घ की रक्षा असम्भव हो जायगी। डाइसी के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ का आधार एक बहुत ही पेचीदा राज़ीनामा, संधिपत्र या शर्तनामा है और इसका शासन-प्रबन्ध केवल राजनैतिक समझौते के ही ऊपर नहीं छोड़ा जा सकता है। इसके लिए एक लिखित राज्य-सम्बन्धी नियमपत्र होना चाहिए। और केवल यही यथेष्ट नहीं है। यह नियमपत्र ऐसा सुदृढ़ और अपरिवर्तनीय होना चाहिए कि न तो केन्द्रीय सरकार और न स्थानीय सरकार ही इसको शीघ्र बदल सके।

यह भी आवश्यक है कि एक ऐसी न्याय-सभा हो जो सङ्घ के राज्य-नियमावलियों का तात्त्विक अर्थ निर्णय कर सके—जो केन्द्रीय और स्थानीय सरकार की अपनी अपनी सीमा का निर्देश कर सके—और इनमें से किसी एक को दूसरे का अधिकार दबा बैठने की प्रचेष्टा को दमन कर सके। इस न्याय-सभा के हाथ में भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शासन के आपस के झगड़ों का निपटारा एवं उनमें और केन्द्रीय शासन में राज्य-नियम-सम्बन्धी वाद-विवाद का अन्तिम निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। उदाहरण-स्वरूप अमरीका के संयुक्त राज्यों के सुप्रीम कोर्ट को लीजिए। अमरीका की यह सर्वोच्च न्याय-सभा केन्द्रीय व्यवस्थापकसभा अथवा प्रान्तीय प्रतिनिधि-सभा के बनाये हुए नियमों को रद कर सकती है। बात यह है कि राष्ट्र-सङ्घ में कोई भी ऐसी संस्था नहीं है

जिसकी प्रभुत्व-शक्ति अखण्डित हो। सबकी शक्ति सीमा-बद्ध है। यह सीमा राष्ट्रीय नियमपत्र के द्वारा ही निर्दिष्ट होती है। परन्तु यदि शासन का कोई भी अंग अपनी मर्यादा का उल्लंघन करे तो उसको रोकनेवाला कौन है? यदि क़ानून बनानेवाली सभा ऐसा क़ानून बनावे जो स्पष्टतः नियम-विरुद्ध हो तो उसे कौन रद कर सकता है? इसका उत्तर यही है कि न्याय-सभाओं को यह अधिकार होना चाहिए। उनको ऐसा अधिकार दे देना चाहिए कि उन्हें नियम-विरुद्ध क़ानून को कदापि मुक़द्दमे में न प्रयोग करना पड़े। इँग्लेंड आदि देशों में जहाँ स्थानीय और केन्द्रीय शासन के अधिकारों में कोई भी बँटवारा नहीं है, ऐसी न्यायसभा का प्रयोजन नहीं है। वहाँ तो कोई भी क़ानून जो व्यवस्थापक सभा में बनाया जाता है, तुरन्त ही न्यायालयों में मान लिया जाता है। इस नीति को 'व्यवस्थापकसभा की प्रधानता' कहते हैं और दूसरी नीति को 'न्यायसभा की प्रधानता' कहते हैं।

तीसरी विशेषता राष्ट्र-सङ्घ का शक्ति-विभाग है। राष्ट्र-सङ्घ के बनाने के उद्देश में राष्ट्रीय सरकार और प्रादेशिक सरकारों में शासनाधिकारों का विभाग अन्तर्निहित रहता है। केन्द्र को जितने अधिकार समर्पित रहते हैं वे प्रान्तीय शासन के अधिकारों को सीमाबद्ध कर देते हैं। अमरीका के संयुक्त-राज्यों के शासन-विषयक नियमपत्र को देखिए—कुछ विशेष सुस्पष्ट और सुनिर्दिष्ट अधिकार सङ्घ के कार्यकर्त्ता या प्रधान, व्यवस्थापक-सभा और न्याय-सभा को सौंप दिये गये हैं और अवशिष्ट अधिकार जो राज्यव्यवस्था के द्वारा सङ्घ को नहीं सौंपे गये हैं या जो प्रान्तों के लिए उस व्यवस्था के अनुसार निषिद्ध न हों, भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लिए सुरक्षित रहते हैं।

इस सम्बन्ध में यहाँ दो-एक विषयों का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रथम तो यह है कि राष्ट्र-सङ्घ के भिन्न प्रान्तों को राष्ट्र के नाम से वर्णन करना राज-नीति-शास्त्र की दृष्टि से समुचित न होगा। क्योंकि ये भिन्न भिन्न प्रान्त सम्पूर्ण स्वाधीन तो नहीं होते हैं। इन प्रान्तों में प्रभुत्व-शक्ति नहीं होती है और न यह शक्ति केन्द्रीय संस्था में ही होती है। यह प्रभुत्व-शक्ति केन्द्र और प्रान्त से भिन्न समस्त जनता में ही होती है। परन्तु जनता तो प्रभुत्व-शक्ति को सदैव प्रयोग नहीं कर सकती। इसलिए यह प्रभुत्व-शक्ति एक ऐसी संस्था में प्रतिष्ठित रहती है जो सङ्घ की राज्य-व्यवस्था को परिवर्तित कर सके। सब राष्ट्र-संघों में कोई न कोई ऐसी संस्था होती है जो शासन-व्यवस्था में परिवर्तन कर सकती है।

राष्ट्र-सङ्घ में एक ही प्रभुत्व-शक्ति होती है। अतएव वह वास्तव में एक ही जातीय राष्ट्र होता है। राष्ट्र-सङ्घ में एकात्मक शासन की नीति का भी अवलम्बन होता है, क्योंकि केन्द्रीय शासन की शक्ति सम्पूर्ण जनता के ऊपर बिना किसी मध्यवर्त्ती के सीधा प्रयुक्त होती है। संयुक्त शासन की नीति तो सिर्फ़ यहीं तक है कि केन्द्र और प्रान्त में शक्ति का बँटवारा हो जाता है। वास्तव में सङ्घ के किसी भी अंश के केन्द्र से अलग होने का अधिकार नहीं होता है। इसलिए राष्ट्र-सङ्घ तो एक भ्रामक शब्द है। परन्तु और कोई भी उपयुक्त शब्द न रहने के कारण इसी शब्द का व्यवहार किया जाता है।

शासन के अधिकार जिस मूलनीति के अनुसार स्थानीय और केन्द्रीय शासनों में विभक्त किये जाते हैं यह है कि वे बातें जो सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखती हैं और जिनमें क़ानून के ऐक्य की आवश्यकता होती हो वे केन्द्रीय सरकार को सौंप दी जाती हैं। और शेष विषयों पर स्थानीय सरकार का पूरा अधिकार रहता है। अनेक राष्ट्रों में परराष्ट्र के साथ सम्बन्ध, सन्धि-विग्रह, अन्तर्प्रान्तीय वाणिज्य, सिक्का या मुद्रा-सम्बन्धी बातें, नवीन आविष्कार और नवीन ग्रन्थों के सर्वसत्वसंरक्षण करने का अधिकार, केन्द्रीय शासन के अधीन रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर राष्ट्र-सङ्घ के अंशों का कोई भी अधिकार नहीं रहता है।

शक्ति का विभाग करने में दो मार्गों का अनुसरण किया जाता है। अधिकतर राष्ट्र-सङ्घ में केन्द्रीय शासन को जितने अधिकार समर्पित रहते हैं उनका शासन-विषयक नियम-पत्र में विशेष रूप से वर्णन रहता है। अवशिष्ट अधिकार स्थानीय सरकार को प्राप्त रहते हैं। अर्थात् केन्द्रीय सरकार के पास अधिकार सौंपे हुए (delegated) होते हैं और प्रान्तीय सरकार के पास अवशिष्ट या रेज़ीडुअरी अधिकार होते हैं। केन्द्रीय शासन की अधिकार-सीमा विधान-पूर्वक (positively) निर्दिष्ट रहती है और प्रान्तीय शासन की मर्यादा निषेध-पूर्वक (negatively) निर्दिष्ट होती है। एक दूसरे प्रकार से भी अधिकारों का विभाग किया जा सकता है। कुछ राष्ट्र-सङ्घ ऐसे हैं जिनमें प्रान्तीय सरकारों को कुछ निर्दिष्ट अधिकार सौंप दिये जाते हैं और केन्द्रीय सरकार के पास निर्दिष्ट और अनिर्दिष्ट दोनों (delegated and reserved) तरह के अधिकार रह जाते हैं। इसका उदाहरण कनाडा है।

भारतवर्ष की दशा को सामने रखते हुए राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श कहाँ तक उपयोगी है, इस पर यहाँ थोड़ा विचार करना व्यर्थ नहीं होगा।

प्रथम तो यह बात स्पष्ट है कि डाइसी के मतानुसार दोनों शर्तें यहाँ मौजूद हैं। भारतवर्ष में कई एक प्रान्त हैं। इनमें ऐतिहासिक, जातीय या भौगोलिक संयोग भी है। भारत के अधिवासी इस संयोग के कारण राष्ट्रीयता के भाव से अनुप्राणित हैं। द्वितीयतः मेरी सम्मति में तो भिन्न भिन्न प्रान्त अपना अपना पृथक् अस्तित्व एक महान् राष्ट में सम्पूर्ण लय करने के लिए तैयार नहीं है। बंगाल या मदरास को ही लीजिए। इनमें प्रान्तीयता का भाव इतना प्रबल है कि एकात्मक नियमानुवर्त्ती राष्ट्र का बनना यहाँ सम्भव न होगा। भारत का प्राचीन इतिहास भी इस बात का साक्षी है। महापराक्रमी वीर राजाओं के अधीन समग्र ससागरा भारतभूमि कई बार रह ही चुकी है। अशोक, समुद्रगुप्त, राजा हर्ष, मिहिरभोज-राज चक्रवर्ती थे। परन्तु ये चक्रवर्ती ही थे। अर्थात् एक राजाओं का चक्र या मंडल होता था। इस मंडल के केन्द्राधिपति को राजचक्रवर्त्ती कहते थे। सामन्त राजाओं का एक बड़ा मंडल होता था। मंडलस्वामी सम्राट् होता था। सामन्त राजाओं को अपने अपने क्षेत्र में प्रायः पूर्ण अधिकार प्राप्त रहते थे। इस प्रकार के शासन में राष्ट्र-सङ्घ की मूलनीति सर्वथा विद्यमान थी। मौर्यों के समय, शुङ्गों के समय, तदनन्तर गुप्तों के समय, तत्पश्चात् मध्यकालीन भारत में यह राजनीति अनुसृत होती रही है। ऐसी दशा में यदि भारत में आधुनिक समय में इस आदर्श का पुनरुत्थान हो तो यह बात भारतीय इतिहास की धारा के प्रतिकूल न होगी।

अब यह विचारणीय है कि गोलमेजसभा की बैठक में बड़े बड़े तीक्ष्णबुद्धि विचक्षण राजनीति-विशारदों ने जो प्रस्ताव किया है वह राष्ट्र-सङ्घ के आदर्श को कहाँ तक सिद्ध करता है।

इसमें दो बातों को सम्पूर्ण अलग अलग रखकर विचार करने की आवश्यकता है। एक मन्त्रियों का प्रादेशिक व केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं को उत्तरदायित्व और दूसरी बात संयुक्तराष्ट्र का आदर्श है। मन्त्रियों का उत्तरदायित्व और राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श दोनों बातों का एकत्र रहना सब समय में आवश्यक नहीं है। २६ जनवरी सन् १९३१ को ब्रिटिश पार्लियामेंट में गोलमेजसभा की बैठक के कार्य्य के सम्बन्ध में एक वादविवाद हुआ था। श्रीयुत मैकडानल्ड महोदय ने उस समय जो वक्तृता की थी वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है। प्रधान मन्त्री महोदय के अनुसार सबसे कठिन प्रश्न—सबसे उलझन में डालनेवाला प्रश्न यही था कि केन्द्रीय शासन-यन्त्र में मन्त्रियों का

उत्तरदायित्व किस प्रकार स्थापित किया जाय। इस कठिन प्रश्न के हल होने के लिए देशी रियासतों का अँगरेज़ी प्रान्तों के साथ एकत्र मिल जाना आवश्यक है। बात यह है कि अँगरेज़-सरकार केवल अँगरेज़ी प्रान्तों को ही सङ्घ बनाने और साथ साथ केन्द्र में स्वायत्त शासन देने के लिए तैयार न थी। और देशी रियासतें अँगरेज़ी प्रान्तों के साथ एक सङ्घ में मिल जाने के लिए तैयार न थीं जब तक कि केन्द्रीय स्वायत्त शासन न दे दिया जाय। दोनों पक्षों का इसमें गूढ़ उद्देश था।

भारत-मन्त्री सर सेमुयेल होर ने भी हाल में हाऊस आफ़ कामन्स में व्याख्यान करते हुए कहा है कि यदि सङ्घ ही बनाना आवश्यक प्रतीत हो तो वह सर्वभारतीय राष्ट्रसङ्घ होगा, अँगरेज़ी भारत का सङ्घ न होगा।

परन्तु सर्वभारतीय सङ्घ के बनने से भारतीय स्वाधीनता की आशा और भी क्षीण हो जायगी। यह भूल न जाना चाहिए कि प्रधान मन्त्री ने २६ जनवरी १९३१ को उपर्युक्त व्याख्यान में युद्ध के पहले की जर्मनी की राज्यव्यवस्था की ओर संकेत किया था। युद्ध का प्राक्कालीन जर्मन-राष्ट्र-सङ्घ बहुत ही अपूर्ण, अधूरा और दूषित था। राष्ट्र-सङ्घ में जनता के अधिकार, स्वाधीनता इत्यादि सुरक्षित नहीं थे। इसका कारण यही था कि जर्मन-राष्ट्र-संघ के विभिन्न अंशों को पूर्ण स्वायत्त शासन नहीं प्राप्त था। उनके शासकों में स्वच्छन्दता, अन्याय और अत्याचार का अभाव नहीं था। इन्हीं शासकों को केन्द्र में भी बहुत कुछ अधिकार दे दिये गये थे। इसका विषमय फल यह हुआ कि केन्द्रीय शासन में प्रान्तीय अत्याचार और अन्याय की झलक दीखने लगी। क्या यह कहने की आवश्यकता है कि देशीय रियासतों को भारतीय सङ्घ में मिलाने से स्वाधीन राष्ट्र सङ्घ का आदर्श तो सिद्ध होगा नहीं, उलटा जो कुछ अधिकार अँगरेज़ी भारत के केन्द्रीय शासन में अभी भारतीयों को प्राप्त है उसमें भी न्यूनता और खर्वता आ जायगी। या तो देशी रियासतों को स्वायत्त शासन देना चाहिए और नहीं तो राष्ट्र-सङ्घ का आदर्श ही छोड़ देना चाहिए।

प्रान्तों और रियासतों को सम्पूर्ण स्वायत्त शासन न देकर सर्वभारतीय राष्ट्रसङ्घ के आदर्श को सिद्ध करने की चेष्टा करना भारतीय स्वाधीनता के मूल पर कुठाराघात करना है।

—श्री गौरीशङ्कर चटर्जी

रक्षा

सेठ शादीलाल अपने दफ़्तर में बैठे हुए किसी गम्भीर चिन्ता में मग्न थे। उन्हें अपनी सुधि न थी। सहसा उठ कर उन्होंने टेलीफ़ोन उठा लिया। एक क्षण पश्चात् उन्होंने कहा—कौन? बिहारीमल··· क्या तुम मेरे दफ़्तर तक आ सकते हो?······अच्छा अच्छा छः बजे ही सही।

वे रिसीवर को मेज पर रख कर अपनी कुर्सी पर आ बैठे। फिर वही विचार-धारा, वही उथल-पुथल, वही भविष्य की उन्मत्त कल्पनायें! चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार! आशा-मरीचिका की झलक ही न थी!

उन्हें यह भी ज्ञात न हुआ कि बिहारीमल आये हैं और उनके पास खड़े हैं। वे आनेवाली घटनाओं की चिन्ता में थे। उनके सम्मुख मकान और सारी सम्पत्ति के बिकने और नीलाम होने का दृश्य नाच रहा था। बैंक कब तक उन्हें समय देगा। केवल कल प्रातःकाल तक और तत्पश्चात् कुर्की। चार लाख कहाँ से आवें जो बैंक को दिये जायँ? और फिर इसके अतिरिक्त और भी बोझ तो था। दलालों का और अन्य कम्पनियों का ऋण भी चार लाख से कम न था। परन्तु यह कुछ समय के लिए टाला भी जा सकता था। यदि बैंक को कल चार लाख दे दिया जाय तो सम्भव है कि उनका सर्वनाश न हो।

बिहारीमल स्वयम् यह सब जानते थे। इसी कारण वे शादीलाल से मिलना न चाहते थे परन्तु अभाग्यवश टेलीफ़ोन पर वे आज पकड़ ही लिये गये। मरता क्या न करता। अपनी मूर्खता पर खीजते हुए वे छः बजे शादीलाल के दफ़्तर में आ उपस्थित हुए, परन्तु अपने मित्र को विचित्र दशा में पाकर वे कुछ क्षण तक उसी की ओर देखते रहे। उनके मुख की मलीनता और उदासीनता को देखकर बिहारीमल के हृदय में एक चोट-सी लगी। उन्हें वे दिन स्मरण हो आये जब पाँच वर्ष पूर्व उनकी भी वही दशा थी जो आज शादीलाल की थी। वे उन्हीं के पास सहायता के लिए गये थे और उस दयालु मित्र ने बिना सङ्कोच के उनके हाथ में तीन लाख का चेक रख दिया था। उनके धन्यवाद के बदले में शादीलाल ने कहा था—बिहारी, मित्र वही है जो आड़े समय काम आये। यदि मेरी समस्त सम्पत्ति तुम्हारे काम आ जाय तो मुझे विशेष हर्ष होगा।

यह बात इस समय बिहारी के कानों में गूँज रही थी। उनका वह सौहार्द उन्हें उद्विग्न कर रहा था। उनकी वह मृदु मुस्कान, उनके हृदय को जर्जर कर रही थी। उस अपार ऋण के परिशोध का समय आ गया था, परन्तु वे मित्रता के उच्च आदर्श से बहुत नीचे थे। वे डूबते हुए को सहारा देना मूर्खता समझते थे, अपने लाभ और हित की चिन्ता छोड़ कर दूसरों की सहायता करना

उन्होंने न सीखा था। उनके लिए परस्वार्थ अयोग्य मनुष्यों को आलसी बनाने का मार्ग था।

कुछ क्षण ऐसे ही विचारों में मग्न रहने के पश्चात् बिहारीमल ने कहा—शादीलाल।

शादीलाल चौंक कर उठ खड़े हुए, अपने मित्र को देख उनके मुख पर आशा की क्षीण रेखा दौड़ आई। उनका मलीन मुख प्रफुल्लता से दमक उठा। परन्तु इसका प्रभाव बिहारी पर विपरीत ही पड़ा। वे जानते थे कि शादीलाल को उनसे बड़ी आशायें हैं, और वे सारी आशायें शीघ्र ही निराशा-कन्दरा में पतित हो जायँगी। उनकी एक नहीं से शादीलाल के विशाल काल्पनिक राजप्रासाद वायु में विलीन हो जायँगे।

शादीलाल ने उनसे अपनी समस्त कठिनाइयाँ कह सुनाईं और अन्त में कहा—बिहारी, यदि इस समय तुम मुझे चार लाख दे सको तो मैं सर्वनाश से बच जाऊँ।

बिहारी ने उत्तर दिया—प्रिय शादीलाल, मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं इस कठिन समय में तुम्हारे काम आऊँ। परन्तु क्या करूँ? विवश हूँ। मेरे पास इतना रुपया कहाँ? तुम तो स्वयम् ही जानते हो।

शादीलाल चुप थे। वे टकटकी लगाये खिड़की की ओर देख रहे थे। उनकी इस भयङ्कर निस्तब्धता ने बिहारी को विह्वल कर दिया। वे पुनः बोले—इस समय तो मेरे पास पचास हजार भी नहीं, लाख दो लाख की कौन कहे। मुझे बड़ा शोक है कि मैं तुम्हारे काम न आया। क्या करूँ मैं स्वयम् ऋण के बोझ से दबा हुआ हूँ।

बिहारीलाल को आशा थी कि उनका मित्र उनसे विनती करेगा, उनसे सहायता के लिए गिड़गिड़ायेगा। परन्तु यह कुछ भी न हुआ। शादीलाल चुपचाप खड़े दीवार में अपना भविष्य देखने का प्रयत्न कर रहे थे।

बिहारी को बड़ी आत्मग्लानि हुई। वे जितना शादीलाल की इस निस्तब्धता से लज्जित हो रहे थे, उतना कदाचित् उनके कटुवचनों से न होते। एक क्षण के लिए उनका हृदय पसीज उठा। परन्तु शीघ्र ही किसी ने अज्ञात भाषा में कहा—देख ऐसी भूल मत करना। तू शकर का ठेका ले रहा है। यदि कहीं किंचित् मात्र भी असावधानी से कार्य किया तो तेरी भी यही दशा होगी। इसके और भी मित्र तो हैं। लाला बुद्धीमल, सेठ घनश्यामदास, बाबू बाँकेलाल, सभी लाखों के असामी हैं। चार लाख देना उनके लिए कितनी बात है? फिर उन्हीं से क्यों नहीं माँगते।

शादीलाल पहली बार हँसे। भयानक हँसी थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे पागल हो गये हैं। बिहारीमल भयभीत हो उठे। उन्होंने अपनी घड़ी निकाल कर देखा और तब कहा—मुझे बड़ी देर हो रही है, मैं अब जाता हूँ। तुम घबराओ नहीं। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

द्वार के निकट पहुँच कर उन्होंने देखा कि शादीलाल अपने स्थान ही पर खड़े हैं। उन्होंने उनकी ओर दृष्टि उठा कर देखा भी न था। उन्हें कदाचित् इसका ज्ञान भी न था कि बिहारीमल अब कमरे में नहीं हैं।

× × × ×

कुछ समय पश्चात् शादीलाल चौंक कर इधर-उधर देखने लगे। उन्हें पहली बार ज्ञात हुआ कि वे अकेले हैं। एक बार हँसकर उन्होंने कहा—कैसी दुनिया है? जब इसी ने कोरा जवाब दे दिया तब औरों से क्या आशा की जाय?

इसी समय शादीलाल के सेक्रेटरी ने कमरे में प्रवेश किया। इस युवक पर शादीलाल का अगाध स्नेह था। वे उसकी तत्परता और सत्यता पर मुग्ध थे। उसको अपना साझीदार बनाने की उनकी हार्दिक इच्छा थी। परन्तु उनकी यह अभिलाषा हृदय ही में रह गई। फिर भी उन्होंने उसके हृदय में स्वावलम्ब का अङ्कुर उगा दिया था। करुणाशंकर बहुधा स्वतंत्र रूप से व्यापार करता और लाभ उठाता,

परन्तु अधिकतर वह शादीलाल के ही परामर्शानुसार कार्य करता था।

इधर कई दिनों से शादीलाल करुणाशंकर से सेठ घनश्यामदास के पास जाने के लिए आग्रह कर रहे थे। घनश्यामदास को एक सेक्रेटरी की आवश्यकता थी और उनकी दृष्टि करुणाशंकर ही पर लगी थी। वे भी उसके गुणों पर मुग्ध थे। वे जानते थे कि शीघ्र ही शादीलाल का दिवाला होनेवाला है और तत्पश्चात् करुणाशंकर अवश्य ही उनके यहाँ आना स्वीकार करेगा। और शादीलाल भी अपना सर्वनाश होने के पूर्व उसे किसी अच्छी जगह पर लगा देना चाहते थे।

करुणाशंकर आकर चुपचाप शादीलाल के सामने खड़ा हो गया। उन्होंने उसकी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए पूछा—क्या है?

करुणा ने उनके सम्मुख बहुत से काग़ज़ हस्ताक्षर करने को रख दिये। शादीलाल ने हस्ताक्षर करने के पश्चात् सिर उठाया। करुणाशंकर टकटकी लगाये उन्हीं की ओर देख रहा था।

शादीलाल ने कहा—करुणा! तुम तो आज सेठ घनश्यामदास के यहाँ निमन्त्रित हो। क्या जाओगे नहीं?

करुणा ने कुछ सोच कर उत्तर दिया—जाऊँगा क्यों नहीं? किन्तु………

शादीलाल—नहीं जाओ, सङ्कोच की बात नहीं है।

करुणा—क्या आप न चलेंगे?

शादीलाल—नहीं। मुझे अन्य आवश्यकीय कार्य हैं।

करुणा—बिहारीमलजी………

शादीलाल—कुछ नहीं। ऐसे ही आये थे। जाओ। मैं भी शीघ्र ही जाता हूँ।

करुणा ने सन्देह-मिश्रित दृष्टि से उनकी ओर देखा और फिर धीरे धीरे बाहर चला गया।

उसके जाने के पश्चात् शादीलाल अपनी कुर्सी पर बैठकर फिर कुछ सोचने लगे। उनके हृदय में आये हुए भाव अब मुख के बाहर आने लगे। वे धीरे धीरे कहने लगे—करुणाशंकर, कैसा उच्च कोटि का मनुष्य है? परन्तु क्या इसमें भी स्वार्थपरता का चिह्न नहीं है? क्या घनश्यामदास के यहाँ जाने का स्मरण कराते ही उसके मुख पर मन्द मुस्कान की रेखा नहीं दौड़ गई थी? उसने यह भी न विचार किया कि इससे मेरे हृदय पर आघात पहुँचेगा। तो भी यह उन मित्रों से अच्छा है जो बनावटी सहानुभूति की ओट में मेरी अवनति और सर्वनाश पर हँसते हैं। वे कल मेरी मृत्यु का समाचार पाकर गहरी साँस लेकर कहेंगे, शादीलाल को देखो कैसी मूर्खता का काम किया और फिर मुझे विस्मृति के अथाह गह्वर में खो देंगे, कुछ मेरे शव के साथ घाट तक जायँगे और तत्पश्चात् अपने कार्य में लग कर मेरा नाम भी न लेंगे। वाह रे संसार! धन्य है तेरी माया!

कमरे में अन्धकार फैलने लगा। शादीलाल ने उठकर अपना दुपट्टा गले में डाला और छड़ी ले दफ़्तर के बाहर निकले। चौखट के बाहर पैर रखते ही हृदय ने कहा—आज अन्तिम बार इसे देख लो।

बाहर उनका शोफ़र मोटर लिये खड़ा था। नियमित समय बीतते देखकर बेचारा मोटर में ही बैठकर ऊँघने लगा था। शादीलाल मोटर के निकट जाकर खड़े हो गये। उन्होंने निराशा-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—कल यह मोटर किसी और की होगी।

उन्होंने शोफ़र को पुकारा। वह घबराकर उठ बैठा। शादीलाल ने मुस्कराते हुए कहा—जीवन! आज मैं मोटर पर न जाऊँगा।

जीवन ने आश्चर्य-पूर्वक उनकी ओर देखा। उसके नेत्र स्पष्ट कह रहे थे आज क्या बात है।

शादीलाल ने कहा—आज मैं पैदल ही जाऊँगा।

जीवन—हुज़ूर, जहाँ कहें मैं मोटर हाज़िर करूँ।

शादीलाल—नहीं, आज मुझे मोटर न चाहिए। अच्छा जीवन तुम बहुत दिनों से छुट्टी छुट्टी कह रहे थे। जाओ आज और कल तुम्हें छुट्टी है और लो यह रुपया लेकर छुट्टी में आनन्द मनाओ।

इतना कहकर दस रुपये का एक नोट उन्होंने जीवन के हाथ में दे दिया। जीवन की बाछें खिल गईं। उसने झुक कर सलाम किया और मोटर लेकर चल दिया।

शादीलाल ने उसके जाने के पश्चात् कहा—दस रुपये में कितना सुख? उसे क्या पता है कि उसका स्वामी कल इस संसार में न होगा।

इतना कहकर वे एक ओर को चल दिये। वे भीड़ को काटते हुए चले जा रहे थे। उन्हें अपने तन की सुधि न थी। वे सड़क की दूसरी ओर जाने की इच्छा से मुड़े। पुलिसवाले ने हाथ उठाया। परन्तु उनके नेत्र कुछ देख न रहे थे। एक मोटर सन से उनके पास से निकल गई। बाल-बाल बच गये। पुलिसवाले ने डाँट कर कहा—"देखते नहीं हो?

परन्तु वहाँ सुनता कौन था?

शादीलाल सोच रहे थे कल की। उनके स्त्री और पुत्र को क्या दशा होगी? टुकड़े-टुकड़े को तरसेंगे। परन्तु इससे क्या? वह मुझसे सीधे मुँह बोलती तक नहीं है। उसे मेरी चिन्ता ही क्या? उसे तो अपने काम से काम। और सत्य तो यह है कि वहीं कब उससे प्रेम-पूर्वक बोलते हैं। झिड़की के सिवा बात ही नहीं।

और लड़का? उँह! जो भी हो, शादीलाल तो कलङ्क के टीके से बच जायगा। उसे तो पुलिस के आगे न खड़ा होना पड़ेगा। वह तो अपनी सारी सम्पत्ति नीलाम होते न देखेगा। वह अनन्त की नींद में मस्त होगा।

धीरे-धीरे वे तङ्ग गलियों और गन्दी सड़कों से होकर आगे बढ़ने लगे। अब वे ऐसे स्थान में थे, जहाँ दरिद्र मनुष्य ही रहते थे। चाँदनी-चौक की विशाल अट्टालिकायें अदृश्य हो गई थीं। उनके स्थान में छोटे-छोटे मकान दीख पड़ते थे। बढ़ते बढ़ते वे एक छोटी सी दूकान के दरवाज़े पर जाकर खड़े हो गये। यह दूकान थी डाक्टर की।

शादीलाल निःसङ्कोच-भाव से भीतर चले गये। कुर्सी पर एक मनुष्य जीर्ण वस्त्र पहने बैठा था। उसकी घनी दाढ़ी, लम्बा मुख और धँसी हुई आँखें सब उसकी दरिद्र अवस्था का परिचय दे रहे थे। चारों ओर टूटा-फूटा सामान पड़ा था। तीन टाँग की कुर्सियाँ कोनों में रक्खी थीं। वहाँ रक्खी हुई वस्तुओं पर पड़ी हुई धूल से प्रकट होता था उनका बहुत ही कम प्रयोग होता है।

शादीलाल को आया देख कर वह मनुष्य घबराकर उठ खड़ा हुआ। उसने लड़खड़ाते हुए स्वर में पूछा—आपने कैसे कष्ट किया?

शादीलाल ने कहा—जुगुलकिशोर! मैं तुम्हारे पास मर्फ़िया लेने आया हूँ। उनके स्वर में किञ्चित्-मात्र भी कम्पन न था।

डाक्टर ने चकित होकर पूछा—मर्फ़िया!

शादीलाल ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—हाँ हाँ मर्फ़िया। क्या शराब के कारण कुछ कम सुनने लगे हो?

डाक्टर ने नम्र स्वर में कहा—नहीं सो बात नहीं है।

शादीलाल—फिर क्या बात है? दोगे या नहीं?

डाक्टर—दूँगा क्यों नहीं? सब आपही का दिया तो है। फिर आप से कैसे इनकार कर सकता हूँ?

इतना कहकर वह कुछ सोचने लगा।

शादीलाल ने कहा—अच्छा तो लाओ।

डाक्टर—आप क्या करेंगे? उसका स्वर करुण था। उसके नेत्रों में अश्रु के चिह्न थे।

शादीलाल ने कठोर स्वर से कहा—कुछ भी करूँगा। मुझे बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया चाहिए।

युगुलकिशोर उनकी ओर देखने लगा। उसके नेत्रों में भय था।

शादीलाल ने फिर कहा—सुनते हो या नहीं। मुझे बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया चाहिए। जल्दी करो।

बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया—डाक्टर ने कहा।

शादीलाल ने उत्तेजित होकर कहा—हाँ हाँ। उठो, मेरे पास अधिक समय नहीं।

डाक्टर उठकर भीतर चला गया। उसने मर्फ़िया निकालकर लपेटते हुए कहा—बीस चूहों को मारने के लिए!

उसका हाथ काँप रहा था और उसके ओंठ बार बार यही कह रहे थे, बीस चूहों को मारने भर को मर्फ़िया!

वह पुनः बाहर आया और काँपते हुए हाथों से उसने मर्फ़िया की पुड़िया सेठजी को दे दी।

शादीलाल मर्फ़िया लेकर दूकान के बाहर आये। गलियों में घूमते हुए उन्होंने मन ही मन कहना आरम्भ किया—बेचारा किस कातर दृष्टि से मेरी ओर देख रहा था। उसे भय था कि कहीं मैं आत्महत्या तो करने नहीं जा रहा हूँ। क्या करे। उसको मेरे सिवा और कोई आश्रय देनेवाला नहीं। मदिरा ने उसे कहीं का न रक्खा। शैशव-काल का एक यही साथी है जिसके हृदय में मेरा प्रेम है। मेरे पश्चात् यह क्या करेगा? इसकी जीविका कैसे चलेगी? यह कहते कहते उन्होंने एक गहरी साँस ली।

× × × ×

शादीलाल के आने के पश्चात् युगुलकिशोर ने दूकान बन्द कर दी और बाज़ार की ओर चला। न जाने क्यों वह आज उद्विग्न-सा दीख पड़ता था। रह रह कर वह अपने मन में कह उठता था मर्फ़िया और बीस चूहों को मारने भर को!

धीरे धीरे वह एक छोटे-से होटल में जा पहुँचा। यहाँ वह बहुधा आकर बैठा करता था। जिस स्थान पर वह बैठा था उसी के निकट ही चार मनुष्य और भी बैठे हुए खा-पी रहे थे। उनमें से एक ने कहा—क्यों जी हरी, फिर तुमने अपने विषय में क्या निश्चय किया है?

हरी—क्या बतलाऊँ। कहीं न कहीं तो नौकरी करनी ही पड़ेगी।

तीसरा—क्यों, तुम तो लाला शादीलाल के यहाँ हो।

हरी—हाँ, मगर एक ही आध दिन को और।

तीसरा—सो क्यों?

चौथा—अरे क्या तुमने सुना नहीं है? उनका दीवाला निकल गया। कल उनकी सारी जायदाद क़ुर्क़ होगी।

तीसरा—क्या बात हुई?

हरी—बात क्या थी? रुई का भाव अकस्मात् गिर गया, इसी से लाखों का घाटा आया। उधर शक्कर के व्यापार में घाटा हुआ।

तीसरा—कितना क़र्ज़ होगा?

हरी—लगभग आठ लाख।

तीसरा—बचत का कोई उपाय नहीं?

हरी—कोई नहीं।

युगुलकिशोर ने भी सुना। वह घबराकर उनके निकट जा खड़ा हुआ और पूछ बैठा—क्या आप भूलते तो नहीं हैं?

सभों ने उसकी ओर देखा। उसका पीतवर्ण मुख देखकर वे समझ गये कि यह अवश्य ही शादीलाल का कोई घनिष्ठ सम्बन्धी है। हरी ने कहा—महाशयजी, मुझे शोक है कि मैंने आपको हार्दिक कष्ट दिया। परन्तु यह संवाद आपसे छिप ही कब तक सकता था?

युगुलकिशोर ने उसकी ओर घूमकर देखा और तत्पश्चात् तेज़ी के साथ किवाड़ खोलकर नीचे उतर गया। अब उसकी समझ में आया कि

आसा दये पुन न करिय निराश — विद्यापति

मर्फ़िया किसलिए ली गई है ? वह शीघ्रता से सड़कों से होता हुआ चाँदनी चौक की ओर चला। वह बार बार कहता—इतनी मर्फ़िया और किसलिए ली जा सकती है !

थोड़ी ही देर में वह शादीलाल की कोठी पर जा पहुँचा। वह सीधा उनकी बैठक में घुस गया। परन्तु उसका मित्र अभी लौट कर न आया था। वह बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा करने लगा। कुछ समय के पश्चात् शादीलाल का सेक्रेटरी करुणा-शङ्कर आया। दोनों में न जाने क्या बातें हुईं और करुणाशङ्कर उठकर चला गया। किन्तु कुछ ही मिनटों के पश्चात् वह फिर लौट आया। उसके आने के बाद ही शादीलाल भी आ गये।

युगुलकिशोर को बैठा देख कर वे कुछ झिझके। उनका पीला मुख और पीला हो गया। परन्तु उन्होंने शीघ्र ही अपने को सँभाला। करुणाशङ्कर की ओर देखकर उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—कहो करुणा। क्या बात है ?

करुणा—आपसे कुछ पूछने आया हूँ।

शादीलाल—क्या तुम सेठ घनश्यामदास के यहाँ गये थे ?

करुणा—हाँ गया तो था।

शादीलाल—तुम मुझसे क्या पूछना चाहते हो ?

करुणा—अपने भविष्य के विषय में।

शादीलाल—घनश्याम ने तुम्हें अपना सेक्रेटरी बनाना स्वीकार किया है।

करुणा—हाँ, किन्तु ....।

शादीलाल—और तुम उसी के विषय में मेरी राय लेना चाहते हो।

करुणा—हाँ, किन्तु ....।

शादीलाल—अच्छा कहकर कुछ विचार करने लगे। उनके हृदय में एक चोट-सी लगी। वे सोच रहे थे कि करुणा कितना स्वार्थी हो गया है। उसे मेरी इस शोचनीय अवस्था पर किञ्चिन्मात्र दुख नहीं। वह अपने उज्ज्वल भविष्य की ही बात सोच रहा है। उसी के हर्ष से फूला नहीं समाता। और फिर मुझी से उस विषय पर परामर्श भी करना चाहता है। कैसी स्वार्थपरता है ?

शादीलाल की विचारधारा किवाड़ खुलने से भङ्ग हो गई। उन्होंने देखा कि उनकी स्त्री आकर एक किनारे खड़ी होगई। वह करुणा और युगुल से परदा नहीं करती थी।

करुणा की ओर देखकर उनकी स्त्री ने पूछा—कैसे आये करुणा ?

शादीलाल—इसकी नौकरी घनश्याम के यहाँ लग रही है। इसी के विषय में मुझसे राय लेने आया है।

करुणा—मैं आपकी सहायता चाहता हूँ, राय नहीं।

मेरी सहायता और अब—शादीलाल ने व्यंग्य-स्वर में कहा।

करुणा—हाँ, अभी तो आप मुझे सहायता दे सकते हैं और सत्य तो यह है कि आप ही पर मेरे भविष्य-सुख का भार है।

शादीलाल—मैं अब किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ ?

करुणा—मुझे अपना साझीदार बना कर।

शादीलाल (आश्चर्यपूर्वक)—मेरे पास तो अब कौड़ी भी नहीं है।

करुणा—कौड़ी की क्या आवश्यकता है ? रुपया मेरा होगा और राय आपकी। काम मैं करूँगा, आप केवल मार्ग दिखलाइएगा। मुझे आशा है कि मेरे उत्साह और आपके शुभ परामर्श से 'शादीलाल करुणाशङ्कर' का व्यापार दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ेगा। मेरा एक लाख शीघ्र ही दो लाख हो जायगा।

शादीलाल के नेत्र कृतज्ञता से भर आये। उन्होंने करुणा का हाथ पकड़कर कहा—भला एक दीवालिये का साझीदार बनकर क्यों अपना भी सर्वनाश करोगे।

करुणा—मेरे उत्साह को न मारिए। आपने ही मेरे हृदय में स्वतन्त्रता का भाव उत्पन्न किया है। आपने ही मुझे व्यापार में लगाया, आपने ही मेरी अल्प पूँजी को एक लाख कर दिया और आज जब मैं स्वतन्त्रता की सीढ़ी पर पग रखने जा रहा हूँ तब आप मुझे नीचे घसीटने का प्रयत्न कर रहे हैं।

शादीलाल की स्त्री—और लीजिए। मैं भी आपके इस व्यापारिक उद्योग में साझीदार बनती हूँ। इतना कहकर उसने शादीलाल के हाथ में पचास हज़ार के नोट और सारे आभूषण रख दिये।

शादीलाल के नेत्र भर आये। उन्होंने अपनी स्त्री का हाथ पकड़ कर कहा—शान्ति, आभूषण रख लो, ये रुपये ही बहुत हैं। उनके नेत्रों में प्रेम और कृतज्ञता की झलक थी।

कुछ क्षण पश्चात् शादीलाल ने युगुलकिशोर की ओर घूम कर पूछा—कहो युगुल। तुम कैसे आये?

युगुलकिशोर ने हाथ फैलाये हुए विनीत स्वर में कहा—वह मर्फ़िया मुझे लौटा दो। इतना कहते-कहते उसका कण्ठ-स्वर करुण हो गया।

शादीलाल ने एक क्षण उसकी ओर देखा और तत्पश्चात् अपनी जेब से वह पैकेट निकाल कर उसके हाथ में रख दिया।

युगुलकिशोर का मुख खिल उठा। वह उसे शीघ्र ही अपनी जेब में रख कर कमरे के बाहर चला गया।

—रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

गोलमेज़ कान्फ़रेंस की दूसरी बैठक

(१)

पहली कान्फ़रेंस का अन्त जब गत वर्ष की फ़रवरी में हुआ था, उस समय यह घोषित किया गया था कि इस सभा की दूसरी बैठक फिर होगी। उस समय उसके भावी अधिवेशन की सूचना न दी जा सकी, परन्तु बाद को यह बताया गया कि दूसरा अधिवेशन सितम्बर में होगा।

इस दूसरे अधिवेशन के लिए वायसराय महोदय ने ७ अगस्त सन् १९३१ को शिमला से प्रतिनिधियों की एक सूची प्रकाशित की। उसमें भिन्न-भिन्न दलों के नेता इस प्रकार थे—

ब्रिटिश-सदस्य कुल १४ थे। उनमें विशेष उल्लेखनीय प्रधान मन्त्री रामज़े मैकडानल, लार्ड सैंकी, सर सैमुअल होर, कर्नल वेजवुड बेन, अर्ल पील आदि थे। देशी रियासतों के प्रतिनिधियों में बड़ोदा, भोपाल, बीकानेर, अलवर, धौलपुर, सारिला, रीवाँ आदि के नरेशों के अतिरिक्त उनकी ओर से सर प्रभाशङ्कर पट्टनी, सर मनू भाई मेहता, सरदार साहबज़ादा सुलतान अहमदख़ाँ, नवाब सर मुहम्मद अकबर हैदरी, सर मिर्ज़ा महम्मद इस्माइल, सर राधावैय्या पन्तलू गारु तथा कर्नल हस्कर आदि प्रतिनिधि थे।

ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों में ४० हिन्दू, २१ मुसलमान, २ सिख, २ अछूत, तथा ६ एंगलो-इन्डियन और देशी क्रिश्चियन थे। २१ मुसलमान प्रतिनिधियों में राष्ट्रीय मुसलिम दल का एक भी सदस्य न था। बहुत आन्दोलन करने पर केवल सर अली इमाम बुलाये गये थे। कांग्रेस की ओर से केवल महात्माजी गये थे। परन्तु श्रीमती सरोजनी नायडू और महामना मालवीयजी भी महात्माजी के ही साथ बुलाये गये थे। कान्फ़रेंस में श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती सुब्बारायन तथा बेगम शाहनिवाज़ आदि स्त्री प्रतिनिधि भी थीं। सदस्यों का चुनाव किस आधार पर किया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है। डाक्टर अंसारी के सम्बन्ध में अफ़वाह थी कि वे भी बुलाये जायँगे, परन्तु यह अफ़वाह आगे चलकर असत्य ही निकली।

महात्मा गांधी ने २८ अगस्त के अन्त में निश्चय किया कि वे गोलमेज़-सम्मेलन में अवश्य उपस्थित होंगे। अतएव २९ अगस्त के १।। बजे महात्मा गांधी राजपूताना जहाज़ से रवाना हुए और १२ सितम्बर को इँगलैंड पहुँच गये। भारत के इन 'अर्धनग्न फ़क़ीर' किन्तु बे-मुकुट के राजा ने जब इँग्लैंड में पैर रक्खा तब सारा संसार चकित होकर उनकी घोषणाओं को सुनने को उत्सुक हो उठा। अदन, मिस्र, फ्रान्स आदि में भारतीयों तथा अन्य देशवासियों ने उनका समुचित स्वागत किया। इस गोलमेज़ के अधिवेशन में महात्माजी का उपस्थित होना एक बड़ी भारी बात थी, क्योंकि कांग्रेस ने पिछले गोलमेज़-सम्मेलन से असहयोग किया था।

गोलमेज़-सम्मेलन के इस अधिवेशन में १—शासन-योजना, अल्पसंख्यक समुदाय का प्रश्न, सेना पर अधिकार और व्यापारिक समस्या आदि विषयों पर ख़ासा विचार हुआ।

सात सितम्बर सन् १९३१ को सेंट जेम्स पैलेस में इस सम्मेलन की शासन-योजना-समिति का अधिवेशन आरम्भ हुआ। महात्मा गांधी, मालवीयजी आदि तीन-चार सदस्यों को छोड़ कर इस उपसमिति के अन्य ३१ सदस्य उपस्थित थे। आरम्भ में लार्ड सैंकी ने कहा—

प्रधान मन्त्री ने कहा—

'मैं प्रतिनिधियों और अन्य लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि हमारे यहाँ चाहे कितना ही राजनैतिक उलट-फेर क्यों न हो जाय और हुआ हो, पर हमारे सार्वजनिक उद्देशों और व्यक्तिगत मित्रता में कोई भी हेर-फेर नहीं हुआ है।
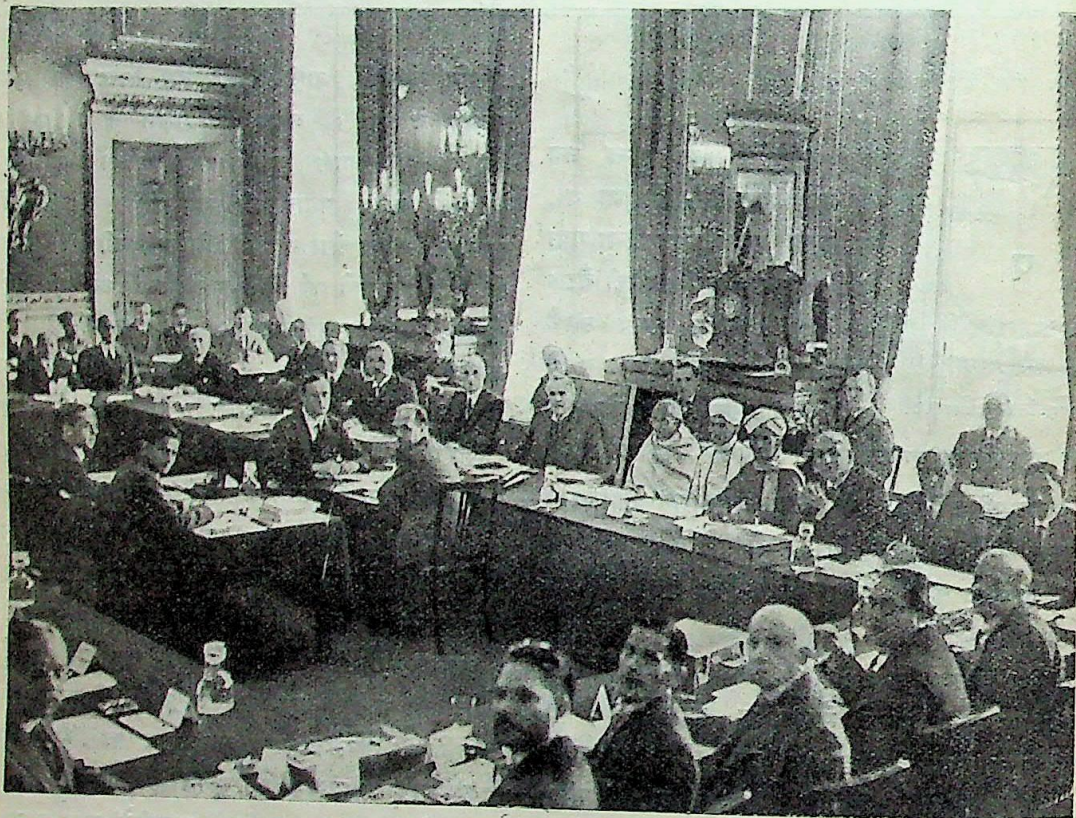
[द्वितीय राउंड-टेबिल कान्फ़रेंस की पहली बैठक]
(लार्ड सैंकी सभापति के आसन पर समासीन हैं। उनकी बाईं ओर महात्मा गान्धी तथा महामना मालवीयजी विराजमान हैं और दाहिनी ओर लार्ड पील और सर सैमुअल होर बैठे हैं।)

'भारत में शान्ति और सुख की स्थापना करना एक ऐसा कार्य है जिसके लिए जितना भी व्यक्तिगत त्याग करना पड़े, अधिक न होगा। भारत राष्ट्र-पद प्राप्त कर विश्व के सामाजिक और राजनैतिक विचारों के विकास में उचित रूप से योग देने के अपने युग-युगान्तर के स्वप्न को सफल करते हुए देखे। यही हमारी सबसे बड़ी आकांक्षा है।'

इस उपसमिति की १३वीं सितम्बर की बैठक में महात्माजी ने भाग तो लिया, पर मौन-दिवस होने के कारण कुछ बोल न सके। सभी लोग यह सुनने के लिए उत्सुक थे कि महात्माजी क्या कहते हैं। महात्माजी ने जब बम्बई से प्रस्थान किया तब से लेकर अन्त तक यही कहते रहे कि मैं तो कांग्रेस का प्रतिनिधि हूँ। मैं कुछ

अपनी बात कहने के लिए नहीं आया हूँ। मैं जो कुछ कहूँगा वह कांग्रेस की ओर से कहूँगा।

१४ सितम्बर के अधिवेशन में महात्माजी ने अपना पहला भाषण किया। आपने अपने भाषण में कांग्रेस के उद्देशों का वर्णन किया। आपने कहा—यहाँ मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह न तो अन्तिम सूचना है और न धमकी है। प्रधान मन्त्री की घोषणा कांग्रेस की माँग से बहुत कम है। सङ्घ योजना-समिति में जितनी बातें हो रही हैं वे एक भी मेरे काम की नहीं। सरकार को बता देना चाहिए कि वह कितना अधिकार देना चाहती है। पंडित मदनमोहन मालवीय ने भी शिक्षा, अछूतों तथा देशी राज्यों के सम्बन्ध में भाषण किया।

सङ्घ-योजना-समिति में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। हैदराबाद के सर अकबर हैदरी ने कहा—'ऐसी रियासतों को भी जो इस समय नरेन्द्र-मण्डल के सदस्य हैं, पृथक् प्रतिनिधित्व देना असम्भव होगा। क्षेत्रफल और जन-संख्या के ही आधार पर यह निश्चय किया जाय।'

सङ्घ-योजना-समिति में जब शासन-परिषद् के संगठन, उसके आकार और बनावट पर बहस हुई तब श्रीजोशी ने कहा कि मैं एक ही परिषद् रखने के पक्ष में हूँ। कई सदस्यों ने दोनों परिषदों (राज्य-परिषद्, व्यवस्था-परिषद्) के लिए राय दी। अध्यक्ष लार्ड सैंकी ने कहा कि इन विषयों पर पार्लियामेण्ट में विचार होगा।

"लार्ड सैंकी ने संघीय व्यवस्थापिका सभा और फ़िडरल फ़ाइनेंस पर एक मसौदा तैयार कर गोलमेज़-परिषद् के सदस्यों में वितरित किया। उसमें उन्होंने भारतीय व्यवस्थापिका सभा के लिए दो 'हाउसों' की आवश्यकता बतलाई। ठीक उसी तरह जैसे इँग्लेंड में हाउस ऑफ़ लार्ड्स और 'हाउस आफ़ कामन्स' होते हैं। यहाँ एक हाउस 'अपर हाउस' कहलायगा और दूसरा 'लोअर हाउस'। 'अपर हाउस' में तीन सौ जगहें होंगी और 'लोअर हाउस' में दो सौ। देशी राजाओं को 'अपर हाउस' में ४० प्रतिशत जगहें और 'लोअर हाउस' में पूर्ण संख्या की एक तिहाई जगहें दी जायँगी। अपर हाउस में स्टेट अपने प्रतिनिधि आप ही चुनेंगे। और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्त अपनी कौंसिलों से प्रतिनिधि भेजेंगे। 'लोअर हाउस' में ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि अपनी-अपनी कांस्टीट्युएंसी (जगहों) से जनता-द्वारा चुनकर भेजे जायँगे। रियासतें इस सम्बन्ध में अपना जो निर्णय करें, उस पर ब्रिटिश भारत को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

"'अपर हाउस' में 'जगहें' इस तरह भरी जायँगी—

[अ] बम्बई, बंगाल, यू० पी०, पंजाब, बिहार और उड़ीसा, और मध्यप्रान्त प्रत्येक १७, [इ] आसाम ७, [उ] पश्चिमीय सीमाप्रान्त २, [ऋ] दिल्ली, अजमेर, कुर्ग और ब्रिटिश बलूचिस्तान प्रत्येक को १।

"'लोअर हाउस' में जगहें इस तरह भरी जायँगी—

(१) बम्बई, पञ्जाब, बिहार और उड़ीसा २६, (२) मद्रास, बंगाल और यू० पी० ३२, (३) मध्यप्रान्त १२, (४) आसाम ७, (५) उत्तरी सीमाप्रान्त ३, (६) दिल्ली, अजमेर, कुर्ग और ब्रिटिश-बलूचिस्तान प्रत्येक को १।

"अधिकारों के सम्बन्ध में लार्ड सैंकी ने बजट और बिल के सम्बन्ध में दोनों 'हाउसों' को समान अधिकार देने की सिफ़ारिश की है। जब दोनों 'हाउसों' में किसी प्रश्न पर मतभेद होगा तब दोनों की बैठक साथ ही हुआ करेगी और बहुमत का निर्णय ही मान्य होगा।" ('सुबोधसिन्धु' से)

शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रांतीय उत्तरदायित्व बनाम केन्द्रीय उत्तरदायित्व का प्रश्न उठा था। कुछ सदस्यों का कथन था कि राष्ट्र की शक्ति एक जगह केन्द्रस्थ रहे और वह तमाम प्रान्तों पर अधिकार रक्खे। दूसरी ओर अन्य सदस्यों का कहना था कि प्रत्येक प्रान्त को स्वतन्त्र अधिकार दिया जाय। महात्मा गांधी भी प्रान्तीय स्वतन्त्रता के पक्ष में थे, परन्तु उनका कहना था कि प्रान्त अपने शासन में केवल स्थानीय मामलों में स्वतन्त्र रहें। महामना मालवीयजी ने प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का विरोध किया और यह चेतावनी दी कि इससे राष्ट्र की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जायगी। इधर इँग्लेंड

के टोरीदलवाले केवल प्रान्तीय व्यवस्था देने को तैयार दिखाई देते थे। वे केन्द्रीय शासन-सम्बन्धी एक भी बात मानने को तैयार न थे। ऐसी दशा में अन्य प्रश्नों की तरह इस प्रश्न पर भी विचार-विनिमय होकर ही रह गया।

"नागरिक अधिकार किस तरह का रक्खा जाय, मताधिकार किस किसको हो आदि विषयों पर बड़े बड़े
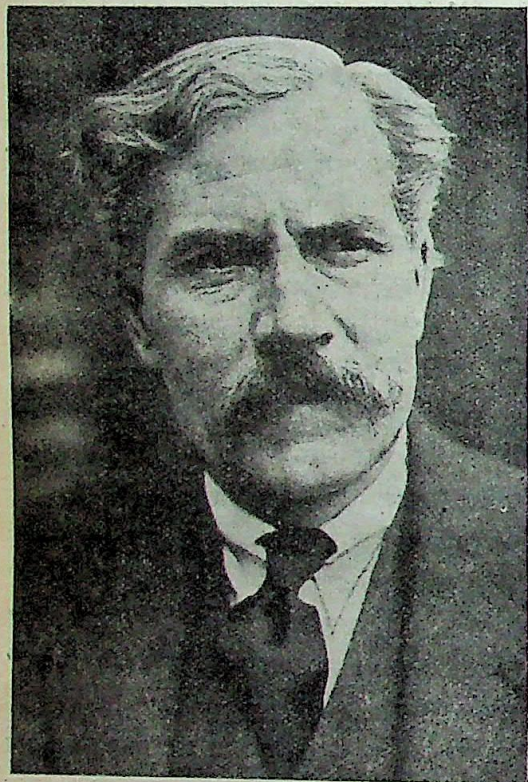
[प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानल]

गरम भाषण हुए। केन्द्रीय उत्तरदायित्व बनाम प्रान्तीय उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा कि मैं समझता हूँ कि प्रान्तीय स्वशासन की जो कल्पना मैं करता हूँ, यदि उसी के अनुसार प्रान्तीय स्वशासन रहे तो उसे ले लेने, जाँचने और यह देखने में कि उससे मेरा उद्देश वस्तुतः सिद्ध होता है या नहीं, मुझे कुछ आपत्ति न होगी। पर बहस करते ही मुझे पता चला कि मैं प्रांतीय स्वशासन का जो मतलब समझता हूँ, सरकार उसका वही मतलब नहीं समझती। कटघरे में बन्द केन्द्रीय उत्तरदायित्व से मुझे सन्तोष न होगा। मैं ऐसा उत्तरदायित्व चाहता हूँ जिससे सेना और अर्थ-प्रबन्ध का नियंत्रण हाथ में रहे। विदेशियों-द्वारा रचित केन्द्रीय सरकार और मज़बूत स्वायत्तशासन—दोनों परस्परविरोधी शब्द हैं। मैं समझता हूँ कि प्रांतीय स्वशासन और केन्द्रीय उत्तरदायित्व साथ साथ रहने चाहिए। पर यदि कोई मुझे यह समझा सके कि मेरे विचार का प्रान्तीय स्वशासन वास्तविक शासन है तो मैं उसे ले लूँगा। और क़ानून की किताब में से १८१८ का ३ रा रेग्युलेशन निकाल दूँगा। मुझे विश्वास है कि ऐसा प्रांतीय स्वशासन मिलने जा रहा है। मैं समझौते की शर्तों के अनुसार लन्दन आया। समझौते में यह स्पष्ट बताया गया है कि मुझे सङ्घ और उसके सारे उत्तरदायित्व पर बहस करना होगा और मुझे यही प्राप्त होगा। निःसन्देह इसके साथ भारत के हितार्थ संरक्षण रहेंगे।

"मुसलमानों की ओर से श्रीजिन्ना ने कहा कि सम्मेलन के आरम्भ में ही हमने स्पष्ट कह दिया है कि हम भारत की शासन-सम्बन्धी उन्नति के मार्ग में बाधा न डालेंगे। मैंने पिछले अधिवेशन में कहा था कि कोई भी शासन-योजना तैयार हो सकने के पहले हिन्दू-मुस्लिम-समझौता होना एक आवश्यक शर्त है। जब तक मुसलमानों के स्वार्थ की रक्षा नहीं की जाती और उनका सहयोग प्राप्त नहीं किया जाता तब तक कोई भी शासन-योजना २४ घंटे भी न चलेगी। आज यही स्थिति है। मुसलमान समझते हैं कि भारत के अच्छे लोग केवल प्रान्तीय स्वतन्त्रता का समर्थन न करेंगे। पर यह भी स्मरण रहे कि जब तक मुसलमानों की माँगें स्वीकार नहीं की जातीं तब तक उन्हें कोई योजना स्वीकार न होगी। अखिल भारतीय सङ्घ की कल्पना और मृग-जल के पीछे दौड़ते फिरने की अपेक्षा ब्रिटिश-भारत का मामला तय करके शीघ्र ही आगे बढ़ना चाहिए। यह सरकार का कर्तव्य है कि वह न केवल साम्प्रदायिक प्रश्न के भविष्य का ही फ़ैसला करे, वरंच ऐसे सब महत्त्व के विषयों का भी जिन पर समझौता होना आवश्यक हो।

"श्री गेविन जोन्स ने कहा कि योरपीय प्रतिनिधि केन्द्रीय उत्तरदायित्व के पहले प्रान्तीय शासन की स्थापना को पसन्द करेंगे, क्योंकि यह अवश्यंभावी है कि सङ्घ के पहले सङ्घ के अङ्गभूत राज्यों का निर्माण किया जाय। मेरा सरकार से अनुरोध है कि वह भारत के बारे में अपनी इच्छा प्रकट करे। सरकार कौन से संरक्षण रखना चाहती है, वह प्रान्तों में क़ानून और व्यवस्था के बारे में क्या करना चाहती है? साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध में मेरा कहना है कि पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्त का स्वीकार करना ही समझौते की ओर और एक क़दम आगे बढ़ना है। यदि हिन्दू भी इसे स्वीकार कर लें तो सारा विरोध ही मिट जाय। सम्राट् के अधीन संयुक्त भारतीय राज्य कोरी कल्पना नहीं। यह एक महान् आदर्श है जिसके लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए।

"सिख-प्रतिनिधि सरदार उज्ज्वलसिंह ने कहा कि मुझे आशा है अखिल भारतीय सङ्घ सत्य सिद्ध होगा। केवल प्रान्तीय अधिकार के टुकड़े से भारत का कोई दल सन्तुष्ट न होगा। पर प्रांतीय स्वशासन या केन्द्रीय उत्तरदायित्व की कोई योजना सिखों को मंज़ूर न होगी जब तक उनके स्वार्थों की पूरी रक्षा नहीं की जाती।" ('भारत' से)

इस प्रकार इस समिति के अधिवेशन में अनेक प्रतिनिधियों ने अपने विचार प्रकट किये।

परन्तु संघ-शासन-समिति की जो रिपोर्ट लार्ड सैंकी ने प्रकाशित की वह प्रक्षिप्त कही गई है। शासन-परिषद् के सदस्यों की संख्या २०० से ३०० तक के बीच में होना अर्थात् परिषद् की सदस्य-संख्या का निर्धारित होना कोई महत्त्व-पूर्ण प्रश्न नहीं है। महत्त्व-पूर्ण प्रश्न परिषद् का विधान है। परिषद् के ऊपर यदि अधिकार अँगरेज़ों का ही बना रहा तो सदस्यों की संख्या का कोई महत्त्व ही नहीं है। गोलमेज़ के पहले अधिवेशन में सदस्यों ने इस बात का समर्थन किया था कि परिषद् पर भारत का ही अधिकार होना चाहिए। परिषद् के कुछ नियमों के विषय में रिपोर्ट में कुछ उल्लेख भी नहीं किया गया है। रिपोर्ट में ध्यान देने योग्य दो ही बातें हैं। पहली यह कि दोनों सभायें समानाधिकार पर रची जायँगी। उन दोनों सभाओं का नाम 'अपर हाउस' और 'लोअर हाउस' होगा। अपर हाउस में जनता के प्रतिनिधि नहीं, बल्कि सङ्घ के मनोनीत सदस्यों के प्रतिनिधि होंगे। इसके सदस्य प्रान्तीय परिषद् के सदस्यों-द्वारा चुने जायँगे सीधे जनता-द्वारा नहीं। 'अपर हाउस' में राज्यों के प्रतिनिधि भी रहेंगे। वे प्रतिनिधि राज्य-प्रजा की ओर से चुने हुए न होकर राजा के प्रतिनिधि होंगे। ऐसी दशा में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन की व्यवस्था इसमें कहाँ की गई है? लोअर हाउस में राजाओं-द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों की समस्या है। 'लोअर हाउस' में ब्रिटिश भारतीय सदस्यों के 'राय' के भी सम्बन्ध में कुछ साफ़ साफ़ नहीं लिखा गया है। नागरिकता का अधिकार निश्चित करने का प्रश्न एक विशेष समिति के लिए रख छोड़ा गया है।

इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी प्रायः सभी महत्त्व-पूर्ण प्रश्नों का निश्चय होना बाक़ी है। महात्माजी का यह कहना था कि परिषद् में एक ही हाउस की आवश्यकता है। नागरिकता के अधिकार को कांग्रेस सार्वदेशिक बनाना चाहती है। ऐसी दशा में कांग्रेस की माँग और सङ्घ की रिपोर्ट में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। जिन संरक्षणों को कांग्रेस अस्वीकार कर चुकी है वही इस रिपोर्ट में स्वीकार किये गये हैं। अब आगे देखना है कि गोलमेज़ की प्रस्तावित कार्यकारिणी समिति किस विधान की सृष्टि करती है तथा उस विधान के किन किन संशोधनों को पार्लियामेंट स्वीकार करती है।

(२)

गोलमेज़ के अधिवेशन के आरम्भ से ही हिन्दू-मुसलमान प्रश्न पर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ था। इसके समाधान का प्रयत्न भी होता रहा। २४ सितम्बर को आगाख़ाँ और महात्मा गांधी का सम्मेलन हुआ और दोनों ने अपने अपने मत-भेदों पर बात-चीत की। पर मुसलमानों की नीति में परिवर्तन न हुआ। इस सम्बन्ध में मुसलमानों को छोड़कर प्रायः सभी नेताओं ने ख़ूब प्रयत्न किया,

परन्तु देश के सौभाग्य व दुर्भाग्य से समझौता न हो सका। महात्मा गांधी को हताश होना पड़ा। एक से एक योजनायें उपस्थित की गईं। गांधी-आगाख़ाँ, आगाख़ाँ-पटेल, आगाख़ाँ-सप्रू आदि कई एक कितने सम्मेलन भी हुए। परन्तु जिन्ना की चौदह शर्तों से मुसलमान पीछे हटने को राज़ी न हुए। अल्पसंख्यक समुदायों की समिति में मुसलमानों ने जो शर्तें
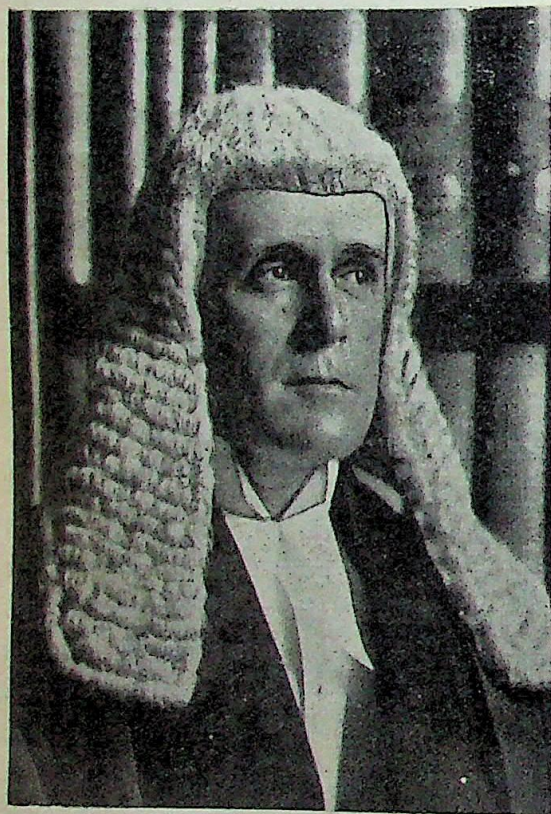
[लार्ड जस्टिस सैंकी]

स्वीकार कीं वे भी उदार न थीं। अन्त में सब लोगों को हताश होकर इस प्रश्न को छोड़ ही देना पड़ा।

अल्पसंख्यक समुदायों की समिति में निम्नलिखित सदस्य थे—

(१) प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानल चेयरमैन, (२) सर डब्ल्यू एऽ जोवेट, (३) अर्ल पील, (४) मेजर हार्न, (५) मिस्टर आलिवर स्टैनली, (६) मारक्वीस आफ़ रीडिंग, (७) सर आगाख़ाँ, (८) सर सैयद अली इमाम, (९) डाक्टर अम्बेदकर, (१०) मिस्टर बेन्थाल, (११) मिस्टर ह्यूबर्टकार, (१२) नवाब अब्दुल मजीदख़ाँ छतारी, (१३) श्री सी० वाई चिन्तामणि (न जा सके), (१४) मिस्टर के० दत्त, (१५) मिस्टर फ़ुज़ुलुल हक़, (१६) महात्मा गांधी, (१७) पण्डित मदनमोहन मालवीय, (१८) सर मित्र, (१९) डाक्टर मुंजे, (२०) श्रीमती नायडू, (२१) श्रीराजेन्द्र राव, (२२) डाक्टर शफ़ात अहमदख़ाँ, (२३) मिस्टर सफ़ी दाउदी, (२४) बेगम शाह नवाज़, (२५) मौलाना शोकत अली, (२६) सरदार सम्पूर्णसिंह, (२७) श्री रा० श्रीनिवासम्, (२८) श्री चमनलाल शीतलवाड, (२९) श्री श्रीनिवास शास्त्री, (३०) श्रीमती सुब्बारायन, (३१) सर सुल्तान महम्मद, (३२) सरदार उज्ज्वलसिंह, (३३) नवाब जफ़रुल्लाख़ाँ।

अल्पसंख्यक समिति की पहली सरकारी बैठक २८ सितम्बर को हुई। २८ सितम्बर सन् १९३१ से ५ आक्टोबर १९३१ तक इसकी कुल दो ही सरकारी बैठकें हुईं। नेताओं ने सरकारी समिति में काम को हलका करने तथा प्रश्न को अधिक स्वतन्त्रता के साथ हल करने के लिए यह तय किया कि इसकी ग़ैर सरकारी सभायें भी की जायँ। पहली ग़ैर सरकारी सभा २ आक्टोबर को गांधीजी की अध्यक्षता में बैठी।

इस समिति में सम्मिलित हुए मुसलमानों, एंग्लो इंडियनों, देशी क्रिश्चियनों, अछूतों के प्रतिनिधियों ने पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग पेश की। भारतीय ईसाइयों के प्रतिनिधि केवल मिस्टर दत्त ने अलग निर्वाचन का विरोध किया। अछूतों के प्रतिनिधि डाक्टर अम्बेदकर ने प्रान्तीय परिषद् में अछूतों के लिए १५ प्रति जगहें सुरक्षित रखने का प्रस्ताव उपस्थित किया। मुसलमानों ने पंजाब में ५१ प्रतिशत तथा बंगाल में ५५ प्रतिशत स्थान माँगे तथा यह कहा कि १९३१ की जन-संख्या के अनुसार हमें केन्द्रीय परिषद् में ३३ प्रतिशत स्थान दिये जायँ। सप्रू महोदय ने उनकी

माँग को अधिक बताकर विरोध किया। सिक्खों ने पंजाब में ३० प्रतिशत तथा सीमा-प्रान्त में ६ प्रतिशत स्थान माँगे। महात्मा गाँधी ने इन सब माँगों में अधिकांश को कांग्रेस के उद्देशों के विपरीत बताकर विरोध किया। वे मुसलमानों और सिक्खों को छोड़कर अन्य समुदायवादियों को विशेष-स्थान देने को राज़ी नहीं हुए। महात्माजी मुसलमानों की विशेष माँग इस शर्त पर स्वीकार करने को राज़ी हुए कि मुसलमान भी कांग्रेस की माँग का समर्थन करें। मुसलमानों को यह शर्त स्वीकार नहीं हुई।

इस पर ८ आक्टोबर की सरकारी बैठक में महात्माजी ने साम्प्रदायिक समिति की बैठक को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अतएव महात्माजी के प्रस्ताव पर समिति का अधिवेशन अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् यह प्रस्ताव किया गया कि प्रधान मन्त्री स्वयं निष्पक्ष न्यायाधीश बन कर इस मामले को सुलझावें। इस पर अधिकांश नेता राज़ी हो गये, परन्तु मुसलमान नहीं राज़ी हुए। उन्होंने अलग ही सभा की। सभा करके उन्होंने यह तय किया कि तमाम अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय और उसमें अपने अपने अधिकार उपस्थित किये जायँ। इस सभा में सिखों को छोड़कर और सभी अन्य अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। जो समझौता हुआ उस पर आगाखाँ, डाक्टर अम्बेदकर, सर हेनरी गिडनी, मिस्टर पन्नीर सेल्वम, और ह्यूवर्टकार ने हस्ताक्षर किये थे।

समिति ने इसकी अपनी रिपोर्ट प्रधान मन्त्री को समर्पित की। उस रिपोर्ट का कुछ अंश यहाँ 'अर्जुन' से दिया जाता है।

"[१] कोई भी व्यक्ति धर्म जाति और विश्वास के कारण सरकारी नौकरियों के पाने, नागरिक अधिकारों के उपभोग करने और किसी पेशे को करने से वंचित नहीं किया जायगा। [२] राजकीय संरक्षण और प्रतिबन्ध शासन-विधान में सम्मिलित किये जायँ जिससे कोई भी विभेदक क़ानून किसी धारा-सभा में, किसी जाति के सम्बन्ध में न बन सके। [३] पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता की गारण्टी दी जाय और धर्म-परिवर्तन के कारण कोई भी दण्डित न किया जाय और न नागरिक अधिकारों और विशेष अधिकारों से महरूम रक्खा जाय। [४] हर एक जाति और समाज को अपने ख़र्च से परोपकारिक, धार्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं को चलाने, नियन्त्रण करने और उसमें अपने धर्म की शिक्षा देने का हक़ होगा। [५] अल्प-संख्यक समुदायों के धर्म, संस्कृति, व्यक्तिगत क़ानून की रक्षा और उनकी भाषा, उनके शिक्षणालयों और उनकी सार्वजनिक संस्थाओं की उन्नति के लिए, स्टेट और स्वायत्त संस्थाओं से दी जानेवाली सहायता और ग्रान्ट में से उचित भाग इन्हें दिया जाय, इस सम्बन्ध में शासन-विधान में संरक्षण होना चाहिए। [६] नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए गारन्टी माँगी गई। [७] मन्त्रिमण्डल में मुसलमानों और अन्य समुदायों को अधिक से अधिक स्थान कवेन्शन-द्वारा देने के लिए कहा गया है। [८] अल्प-संख्यक समुदायों की रक्षा और उनकी भलाई के लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों में राजकीय विभाग बनाने के लिए कहा गया है। [९] चुनाव का तरीक़ा बताया गया और कहा गया कि जो सब जातियाँ वर्तमान समय में किसी धारा-सभा में प्रतिनिधित्व रखती हैं वे सब धारा-सभाओं में पृथक् निर्वाचन-पद्धति-द्वारा प्रतिनिधित्व के अधिकार को पायेंगी और उनको संलग्न तालिका के अनुसार धारा-सभाओं में जगह दी जायगी। पर कोई भी बहु-संख्यक समुदाय अल्प मत में रक्खा जायगा, समान स्थिति में न रक्खा जायगा। दस साल के बाद बंगाल और पंजाब के मुसलमान और अन्य प्रान्तों में कोई अल्प-संख्यक समुदाय जगहें सुरक्षित रखते हुए व बिना रक्खे हुए संयुक्त निर्वाचन मानने को स्वतन्त्र होगा। इसी प्रकार केन्द्रीय धारा सभा के लिए कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय जगहें सुरक्षित रख कर और इसके बिना संयुक्त निर्वाचन मानने को स्वतन्त्र होगा। पर अछूतों के लिए जगहें सुरक्षित रखते हुए व इसके बिना ही संयुक्त निर्वाचन नहीं हो सकेगा, जब तक कि उन्हें पृथक् निर्वाचन-पद्धति

का २० साल का अनुभव न हो जाय और उन्हें बालिग़ मताधिकार न हासिल हो जाय। [१०] प्रांतीय और केन्द्रीय पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना के उचित भाग दिया जाय। गवर्नर जनरल और गवर्नरों को ख़ास तौर पर निर्देश किया जाय कि इस सिद्धांत के अनुसार ठीक-ठीक नियुक्ति हो और समय
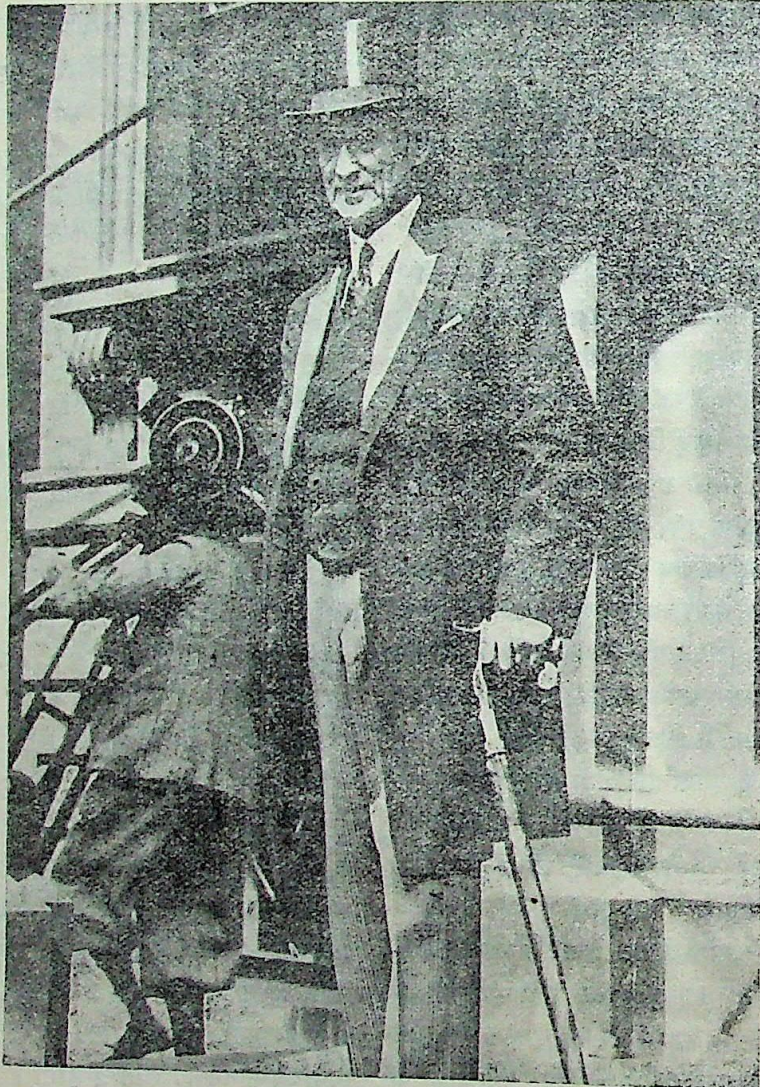
[मार्क्विस आफ़ रीडिंग]

लिए कहा गया है, जिसके द्वारा सरकारी नौकरों की नियुक्ति की जाय और जिसमें योग्यता और कार्यक्षमता का ध्यान रखते हुए हर एक समुदाय को उसका समय पर नौकरियों की नियुक्ति की समीक्षा और जाँच-पड़ताल किया करें। [१०] किसी बिल के पास होने देने से रोकने की विधि का वर्णन किया गया है, जिसके मुताबिक़

किसी भी धारा-सभा के किसी समुदाय के यदि दो तिहाई मेम्बर, जिनके धर्म पर या धर्म पर आश्रित सामाजिक रवाज पर [अथवा एक तिहाई मेम्बरों के मौलिक आधारभूत अधिकारों पर] बिल का असर पड़ता हो, तो वह बिल क़ानून नहीं बन सकता। साथ ही यह भी कहा गया है कि यदि साल के बाद भी धारा-सभा उठाई गई विप्रतिपत्ति के अनुसार बिल में सुधार और परिवर्तन करने से इनकार कर दे तो गवर्नर की इच्छा पर है कि उस पर अपनी स्वीकृति दे या न दे ऐसे क़ानून की वैधता की जाँच उस समुदाय के किन्हीं दो व्यक्तियों द्वारा—जिनका उस बिल से सम्बन्ध है सुप्रीम कोर्ट में की जा सकेगी।

"समझौते के साथ एक तालिका जोड़ी गई है इसके अनुसार व्यवस्थापिका सभा की बड़ी सभा में २०० मेम्बरों में से कुलीन हिन्दू १०१, अछूत २०, मुसलमान ६७, ईसाई १, सिख ६, ऐंग्लो इण्डियन १, और योरपीय ४ मेम्बर होंगे। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की छोटी सभा में ३ सौ मेम्बर होंगे, जिनमें से कुलीन हिन्दू १२३, अछूत ४५, मुसलमान १००; ईसाई ७, सिक्ख १०, ऐंग्लो इण्डियन ३ और योरपीय १२ होंगे।

''सिन्ध में हिन्दुओं को और सीमाप्रांत में हिन्दुओं और सिक्खों को वही अधिकार दिया जायगा जो उन प्रांतों में मुसलमानों को दिया गया है, जहाँ हिन्दुओं की आबादी ज़्यादा है। बम्बई से सिन्ध के अलग हो जाने पर यही सिद्धान्त मुसलमानों के साथ भी लागू होगा।''

इस समझौते पर भाषण करते हुए महात्माजी ने कहा—

मैं बहुत ही असमंजस और लज्जा के साथ अल्पसंख्यकों के इस विवाद में पड़ा हुआ हूँ। मुख्य प्रश्न साम्प्रदायिक समस्या नहीं, बरन शासन-विधान है! कांग्रेस उस समझौते को मानने को तैयार है जो हिन्दू-मुसलमान और सिक्ख आपस में तय कर लें, पर वह अन्य किसी अल्प-संख्यक समुदाय को विशेषाधिकार दिलाने की बात को स्वीकार न करेगी। मुझे दुख है कि कमेटी में एकमत नहीं हुआ। मैं फिर इस बात पर ज़ोर देना चाहता हूँ कि भारतीय शासन-विधान स्थापित करने की ओर बढ़ने का आधार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक अधिकार तथा साम्प्रदायिक संरक्षण आदि ही हैं। अतः हमें और भी दुःख है कि इसी प्रश्न को हम न सुलझा सके। अन्यान्य सम्प्रदायों के लिए जो दावे पेश किये जाते हैं उन्हें तो मैं समझता भी हूँ, पर अछूतों के लिए जो दावे पेश किये जाते हैं वे दावे अत्यन्त क्रूर हैं। उन्हें स्वतन्त्र निर्वाचन देने का मतलब यही है कि उन्हें सार्वजनिक हेल-मेल से रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरूँगा। और इस बात की घोषणा करूँगा कि पृथक् निर्वाचन में उनका हित नहीं है। इससे अछूतों का प्रश्न कभी भी हल नहीं हो सकता। कांग्रेस ही अछूतों का सच्चा प्रतिनिधि है। कांग्रेस ने जितना अछूतोद्धार के लिए किया है उतना और किसी ने नहीं किया है।

अल्पसंख्यक समुदाय-समिति के सभापति प्रधान मन्त्री के उपर्युक्त समझौते का विवरण सुना चुकने के बाद सिक्खप्रतिनिधि सरदार उज्ज्वलसिंह ने कहा कि यह समझौता लोकतन्त्र के सिद्धान्त पर कुठाराघात करता है। श्री जोशी और श्रीगिरि ने भी उसका विरोध किया।

ईसाइयों के प्रतिनिधि श्रीदत्त ने कहा कि अल्पसंख्यकों के समझौते में उनके प्रतिनिधित्व के लिए जो तरीक़ा पसन्द किया गया है उससे मेरा पूरा मत-भेद है। यदि मैं अपना धर्म बदल दूँ या यह कह दूँ कि मेरा कोई मज़हब नहीं है तो क्या मैं मताधिकार से वंचित हो जाऊँगा? अथवा एक ईसाई सदस्य यदि कुछ दिन बाद मुसलमान हो जाय तो क्या उसे अपना पद ख़ाली कर देना होगा?

अन्त में अल्पसंख्यक समुदाय-समिति स्थगित हो गई। यदि इस समस्या का समाधान भारतीय लोकनेता भविष्य में जल्दी ही न कर सकेंगे तो उसके समाधान का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार को लेना पड़ेगा। भारत में संघ-सरकार की स्थापना के लिए अल्पसंख्यकों के मसलों का निपट जाना अत्यन्त आवश्यक है।

(३)

इसके बाद सङ्घ-योजना-समिति में सेना-सम्बन्धी रिपोर्ट पर विचार हुआ। सेना के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में यह कहा गया है—

"पिछले अधिवेशन में सेना-सम्बन्धी कमेटी ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि भारतीयों के हाथ में सेना का भार अधिकाधिक आता जाय। सेना-संबन्धी विचार

[कैप्टन वेजउड बेन]

इसी आधार पर स्थित हैं। कुछ सदस्यों का अनुरोध है कि भारत को तब तक सच्चा उत्तरदायित्व न दिया जाय जब तक भारत में सेना का नियन्त्रण (इसमें गोरी सेना भी शामिल रहेगी) तुरन्त भारतीय मन्त्री के हाथ में नहीं सौंप दिया जाता। आवश्यक हो तो इसके साथ कुछ संरक्षण भी रहें। पर बहुमत इस विचार से सहमत नहीं था। इसी लिए हम पिछले अधिवेशन की योजना-समिति के विचार का समर्थन करते हैं कि अब तक पार्लामेंट के हाथ में जो अधिकार थे वे सब भारत को एक मुश्त नहीं दिये जा सकते तथा परिवर्तन-काल में गवर्नर जनरल सेना के लिए उत्तरदायी रहेंगे और उनका सहायक मन्त्री उन्हीं के प्रति ज़िम्मेदार रहेगा, व्यवस्थापिका सभा के प्रति नहीं।

"सेना-मंत्री का अन्य मन्त्रियों और व्यवस्थापिका सभा से क्या संबंध रहेगा—यह धीरे धीरे शासन-प्रथा के अनुसार तय होने को छोड़ दिया जाय।

"सेना के ख़र्च के लिए रुपये देने के संबंध में हर साल वोट न लिये जायँ। पर निश्चित समय के लिए समझौता

[हिज़ हाईनेस महाराजा गायकवाड़, बड़ौदा]

करके एक आंकड़ा तय कर लिया जाय। उस समय के अन्त में व्यवस्थापक सभा और सम्राट् के प्रतिनिधि उस पर विचार करें तथा तात्कालिक आवश्यकता उपस्थित

होने पर गवर्नर जनरल का ख़र्च करने का विशेष अधिकार रहे। ('भारत' से)"

इस पर महात्मा गाँधी ने कांग्रेस की राय प्रकट की। आपने कहा कि मैं यहाँ इसलिए भेजा गया हूँ कि मैं हर एक सुलभ उपायों-द्वारा भारत के भावी प्रश्नों को ठीक करने और कराने का प्रयत्न करूँ। कांग्रेस कहती है कि सेना का पूर्ण अधिकार भारत के हाथ में दे देना चाहिए। बाहरी रक्षा और भीतरी शान्ति दोनों बातें भारतीयों के हाथ में रहनी चाहिए। आज जो भारत में सेना है वह चाहे अँगरेज़ी सेना है या भारतीय पर मेरे ख़याल से वह भारत पर कब्ज़ा बनाये रखने के लिए ही है। जब तक कोई सेना में है चाहे वह मदरासी हो, गोरखा हो, राजपूत हो या कोई भी हो, हमारे लिए विदेशी है। न हम उनसे बोल सकते हैं और न वे हमसे बोल सकते हैं। हम सेना पर अपना नियन्त्रण रखना चाहते हैं, परन्तु उसके साथ साथ ब्रिटेन की सदिच्छा भी चाहते हैं। मैं यह चाहता हूँ कि जो ब्रिटिश-सेना भारत में रहे वह ब्रिटिश बनकर न रहे, वरन भारतीय बनकर रहे। अन्य देशों ही के मुक़ाबिले में नहीं, बरन मौक़ा पड़ने पर इँग्लैंड के भी मुक़ाबिले में वह भारत का रक्षक बने। यह मेरे जीवन का स्वप्न है जिसे मैं सत्यरूप में देखना चाहता हूँ।

लार्ड सैंकी ने कहा कि महात्माजी, मैंने बड़े ध्यान से आपकी बात सुनी है। आप जिसे अपना स्वप्न कहते हैं—वह और उसके आदर्श दोनों ने मुझे प्रभावित किया है। आपके स्वप्न को तो मैं अपना नहीं सकता, पर आदर्शों को अपना सकता हूँ। परन्तु मैं आपकी इस राय से सहमत नहीं हूँ कि ब्रिटिश-सेना एक-दम हटा ली जाय।

श्री शास्त्रीजी ने कहा कि सेना का अधिकार शीघ्र से शीघ्र गवर्नर जनरल के हाथ से व्यवस्थापक मंडल के हाथ में आ जाना चाहिए। परिवर्तन-काल में सेना और परराष्ट्र-सम्बन्ध संरक्षित विषय ही रहें तो अच्छा है। सेना-सदस्य भारतीय हो।

(४)

इस प्रकार जब सेना-सम्बन्धी मसले पर प्रतिनिधियों के मत प्रकाश में आ गये तब व्यापारिक मसले पर बहस शुरू हुई। इस मसले पर भारत-निवासी योरपीय व्यापारियों के प्रतिनिधि मिस्टर बेंथल ने कहा कि ब्रिटिश व्यापारियों की यह कदापि इच्छा नहीं है कि भारत की शासन-विधान-सम्बन्धी योजना रोकी जाय। हाँ, विधान-योजना में अँगरेज़ व्यापारियों की रक्षा का वचन स्पष्ट शब्दों में निर्विवाद रूप से होना चाहिए। जब तक ऐसा नहीं होता, वे अधिकार-परिवर्तन में अपनी सम्मति न देंगे। भारत की वर्तमान उन्नति मुख्यत: अँगरेज़ व्यापारियों की पूँजी के ही कारण हुई है। हमारा पहला दावा यह है कि हमारे अधिकार स्वीकार किये जायँ, क्योंकि इसमें राष्ट्र का भला है। यह न्याय का ही प्रश्न नहीं, आवश्यकता का भी प्रश्न है। बाहरी पूँजी राष्ट्रीय उन्नति में बाधक होती है, अब यह बात मानी नहीं जाती। सरकार अपने देश की स्वामिनी रहे। योरपीय जो कुछ माँगते हैं उससे देश के मुख्य व्यवसायों की सहायता करने और उन्हें राष्ट्र के नियन्त्रण में लाने में बाधा न पड़ेगी। यदि उसे वर्तमान कम्पनियों के अधिकार प्राप्त करना आवश्यक हो तो कम्पनियों को हरजाना दे देना चाहिए। राष्ट्र सहायता देने में पक्षपात न करे। यदि इन सामान्य सिद्धान्तों पर आपस में समझौता हो जाय तो दो देशों में एक सम्बन्ध स्थापित हो जा गा जिसका आधार समाज-हित होगा। ऐसे समझौते में न केवल राष्ट्र की बरन साम्राज्य की वस्तुओं को पहले पसन्द करने का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय।

सर तेजबहादुर सप्रू ने कहा कि नेहरू-योजना एक ऐसी 'चीज़' है जो इन सब बातों का आधार बनने का दावा कर सकती है। इस योजना के जिस नागरिक शब्द पर लार्ड रीडिङ्ग ने संशय किया है उससे यह मतलब नहीं निकलता कि अँगरेज़ों को इँगलेंड के नागरिक अधिकारों से हाथ धोना ही पड़ेगा। व्यापारिक भेद-भाव के सम्बन्ध में श्री बेंथल ने जो कुछ कहा है मैं समझता हूँ कि उसका यह मतलब न होगा कि भारतीय व्यवस्थापक मंडल को देशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन और सहायता देने का अधिकार न होना चाहिए।

संक्षेप में यह समझ लेना चाहिए कि योरपीय व्यापारी भारत में अपने व्यापार का सिक्का जमाये रखना चाहते हैं और वे हर प्रकार के संरक्षणों को चाहते हैं, जिससे भारत में उनका व्यापार निर्विघ्नता-पूर्वक चलता रहे। किसी तरह की बाधा न उपस्थित हो।

(४)

तदनन्तर आर्थिक प्रबन्ध का मसला उपस्थित किया गया। इस मसले पर भी प्रतिनिधियों ने समुचित रूप से अपने विचार प्रकट किये। यहाँ इस विषय की बहस पर

[मिस्टर मिरज़ा एम० इस्माइल सी० आई० ई०, दीवान मैसूर राज्य]

प्रकाश डालने के लिए लार्ड रीडिंग और महात्माजी के कथन का कुछ अंश 'भारत से' उद्धृत करते हैं—

"आर्थिक प्रबन्ध का विषय विचारार्थ उपस्थित करने के पहले अध्यक्ष लार्ड सैंकी ने कहा कि इस सम्बन्ध में असावधानी और संरक्षणता की ढिलाई का परिणाम इस समय इँगलेंड और भारत दोनों जगहों में बुरा ही होगा। समिति को यह भी याद रखना चाहिए कि संरक्षण भारत के ही हित में होना चाहिए। इस समय बिना सोचे कोई बात कह डालने से उसका बुरा परिणाम
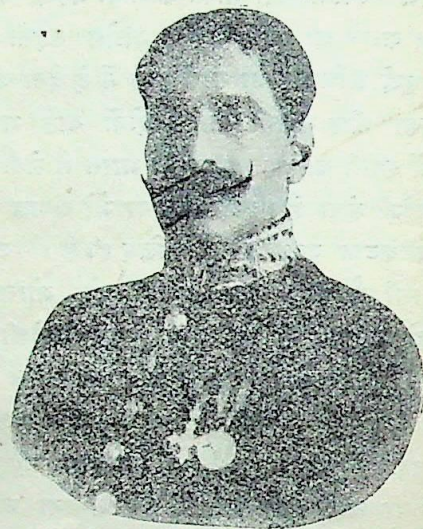
[नवाब छतारी]

इँगलेंड, भारत तथा अन्यत्र भी दिखाई देगा। यद्यपि मैं विचार की सीमा संकुचित करना नहीं चाहता, पर भारत के ही हित के लिए यह आवश्यक है कि आप लोग बहुत सोच-समझ कर कोई बात कहें।

लार्ड रीडिंग ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि भारत और ब्रिटेन का आर्थिक सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। पिछले अधिवेशन के बाद से ऐसी कोई भी बात नहीं हुई है जिससे आर्थिक संरक्षणों की आवश्यकता के विषय में मेरा विचार बदल गया हो। इस समय जब दुनिया भर की आर्थिक स्थिति में जैसी गड़बड़ी मची हुई है उसके विचार से इस समय कोई बहुत ही निश्चित व्यवस्था करना अभीष्ट नहीं है। हमें समझौता कर लेने के लिए हर तरह यत्न करना चाहिए; पर मैं अपनी ज़िम्मेदारी को पूरी तरह समझते हुए कहने को बाध्य हूँ कि अगर सरकार यह कहती है कि भारत के अर्थ-प्रबन्ध की पूरी ज़िम्मेदारी अब भारत को सौंप दी जानी चाहिए

तो वहाँ उत्तरदायी शासन की स्थापना होना आवश्यक होगी। भारत की आर्थिक स्थिति पर इसका क्या असर होगा इस विषय में कोई भविष्यवाणी करने में तो मुझे बहुत ज्यादा हिचकिचाहट होगी, पर यह बात मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि यह भारत के लिए संकटजनक होगा। इसका कारण यह नहीं कि भारत में किसी बात की कमी है, बल्कि यह है कि उसकी स्थिति साख के साथ बँधी हुई है। भारत को ब्रिटेन में भारी रक़म का ऋण लेने की आवश्यकता होगी। यदि यहाँ के लोगों को डरा देनेवाली कोई भी बात हो गई तो इसका परिणाम भारत की आर्थिक स्थिति के लिए बहुत ही बुरा होगा। कमेटी को याद रखना चाहिए कि ये बातें मैंने मन्त्रिमण्डल के प्रतिनिधि की हैसियत से नहीं कही हैं, बल्कि ये मेरे निजी विचार हैं, जिन्हें भारत की सच्ची भलाई की दृष्टि से प्रेरित होकर कह रहा हूँ कि कोई ऐसा तस्फ़िया हो जाय जिसे दोनों देश मान सकें और साथ ही जिससे महाजनों का विश्वास तथा भारत की साख पूर्ववत् बनी रहे।

अर्थ सम्बन्धी-संरक्षणों का विरोध करते हुए महात्मा गांधी ने कहा कि विदेशियों के हित की रक्षा करने के लिए भारतीय हित की उपेक्षा किये जाने के मैं बहुत से उदाहरण दे सकता हूँ, जैसे भारतीय अर्थविशेषज्ञों के घोर विरोध करते हुए भी रुपये की दर १ पेंस का निश्चित कर देना। मैं संभवतः ऐसे किसी भी संरक्षण का समर्थन नहीं करूँगा जिससे भारतीय अर्थमन्त्री के अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने में कोई बाधा पड़ती हो। यदि भारत को केन्द्रीय ज़िम्मेदारी मिलनेवाली हो तो मैं अर्थ-प्रबन्ध पर पूरा अधिकार चाहता हूँ। मैं तब तक किसी संरक्षण के लिए सलाह देने को तैयार नहीं हूँ जब तक भारत की सेना और सिविल सर्विस पर पूरा अधिकार न हो। मैं इस विचार का घोर विरोध करता हूँ कि भारतीयों को अधिकार देते ही भारत में गड़बड़ मच जायगा।"

(६)

इस प्रकार राउंडटेबल कान्फ़रेंस की कार्यवाही भले प्रकार वाद-विवाद के साथ समाप्त हुई और भारत के मुख्य मुख्य प्रश्नों के सुलझाने का मार्ग अधिक प्रशस्त हो गया।

[महात्मा गान्धी]

अधिवेशन को समाप्त करते हुए प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानल ने अपना महत्त्वपूर्ण वक्तव्य किया। उसमें उन्होंने कहा है कि—

"सम्राट् की सरकार का विचार है कि उत्तरदायित्व

शासन का भार व्यवस्थापिका सभा, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय पर एक निश्चित समय तक ऐसे संरक्षणों के साथ दे दिया जाय जो उस निश्चित समय के लिए आवश्यक समझे जायँ, उन संरक्षणों के साथ साथ अन्य आपत्तिकालिक बातों के सम्बन्ध में उचित कार्रवाई करने का अधिकार सरकार के हाथ में रक्खा जाय तथा अल्प-संख्यक समुदायों के हितों की रक्षा का प्रश्न भी संरक्षण के

[पण्डित मदनमोहन मालवीय]

रूप में रक्खे जायँ। ऐसे संरक्षणों के स्वीकार करते समय सम्राट् की सरकार भारत के भावों का पूरा ख़याल करेगी जिससे उसको स्वराज्य की ओर अग्रसर होने में कोई बाधा न खड़ी हो।

"सरकार 'फ़ैडरल-भारत' में पूर्ण विश्वास करती है। प्रान्तों को अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी जायगी।

"सीमा-प्रान्त शीघ्र एक गवर्नर के अधिकार में कर दिया जायगा।

[डाक्टर बी० एस० मुंजे, नागपुर]

"सिन्ध प्रान्त भी अलग कर दिया जायगा यदि सिन्ध की आर्थिक दशा उस योग्य हुई। इसके लिए एक कान्फ़्रेंस की जायगी।

"मैं आप लोगों से फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप साम्प्रदायिक समस्या को सुलझावें नहीं तो सरकार को लाचार होकर कोई आपत्तिकालिक विधान बनाना पड़ेगा।

"एक कार्य-कारिणी समिति बनाई जायगी जो कान्फ़रेंस-सम्बन्धी कामों को भारत में करेगी उसका यह कर्त्तव्य होगा कि वह हम लोगों से सम्बन्ध बनाये रहे। अन्त में सरकार उसकी तमाम कार्रवाइयों को देखकर विचार करेगी। जो विधान बनेगा सभी जातियों और

उपजातियों के अनुकूल बनेगा। उसमें वर्ण-विभेद का विचार न किया जायगा।"

प्रधान मन्त्री की घोषणा के पश्चात् महात्मा ने धन्यवाद का प्रस्ताव उपस्थित किया और प्रधान मन्त्री को उनके परिश्रम और उत्साह के लिए धन्यवाद दिया।

इस प्रकार गोलमेज़ सभा का यह शाही अधिवेशन बड़ी धूमधाम से समाप्त हुआ। इसके दोनों अधिवेशनों में भारतीय शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जो महत्त्वपूर्ण विचार-विनिमय हुआ है उसका शुभ परिणाम अभी भविष्य की गोद में है। भगवान् करे इस महत् कार्य के द्वारा भारत को आत्मशासन के अधिकार प्राप्त हो जायँ।

—नरसिंहराम शुक्ल

F. 9

साम्प्रदायिक शान्ति

[साम्प्रदायिक समस्या भारत का एक कठिन प्रश्न है। इस सम्बन्ध में अनेक राजनीतिज्ञ अपने विचार बराबर प्रकट करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में इस लेख में बताया गया है कि इस समस्या का मूल कारण मुसलमानों की राजनैतिक दृष्टि से अपनी संख्या बढ़ाने की नीति है। अतएव उनका कहना है कि ऐसी प्रवृत्ति को क़ानून बना कर रोकना चाहिए तथा बहुत शिक्षा प्रचार-द्वारा लोगों को इस योग्य बना देना चाहिए कि अपने से विरुद्ध धर्मवाले की संस्कृति का आदर करें। ऐसा करने से भारत का साम्प्रदायिक समस्या का उन्मूलन हो जायगा।]

आधुनिक युग में बात बात के लिए सरकार को दोष देना एक परिपाटी-सी हो गई है। कोई धनहीन है तो सरकार दोषी है, कोई अपढ़ है तो सरकार दोषी है, कोई बाल अथवा बेमेल विवाह करता है तो सरकार दोषी है, और यदि कोई अच्छा नागरिक नहीं है तो सरकार दोषी है। यह हमारे समय की एक विश्वव्यापी बहिर्मुखता है और हम भारतीय भी उसके काफ़ी प्रभाव में हैं, कदाचित् और देशों से अधिक हैं। इसी से हर बात के लिए हम अँगरेज़ी सरकार को भला-बुरा कह देते हैं।

कहा जाता है कि हिन्दू-मुसलमानों का कलह आधुनिक अँगरेज़ी नीति की उपज है, और पहले यहाँ इसका किसी भी रूप में नाम तक न था।

देशी राज्यों में ये झगड़े उतने नहीं होते। वहाँ हिन्दू-मुसलमान प्रजा बड़े मेल से रहती है। किन्तु इसका कारण यह नहीं है कि वहाँ अँगरेज़ी भेद-नीति नहीं चल पाती है। यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि वहाँ उनके बीच पारस्परिक द्वेष तथा कलह भावनाओं की कमी नहीं है। किन्तु लड़ वे जल्दी इसलिए नहीं जाते कि उन्हें अपने शासकों की तरफ़ दारी का ध्यान रहता है। बिना किसी अवज्ञा-भाव के यह कहा जा सकता है कि हिन्दू शासक मुसलमान प्रजा की अति तथा मुसलमान शासक को हिन्दू प्रजा की अति नहीं सही जायगी। सभी प्रजा जनों को इसका ध्यान रहता है। जहाँ जहाँ यह बात है, वहाँ वहाँ कलह नहीं होते। जहाँ शासकों की नीति इस विषय में ढीली है, वहाँ कलह हो ही जाती है।

प्राचीन काल के मुसलमानी साम्राज्यों की कथा निराली है। दो-एक काल को छोड़कर बाक़ी काल की बड़ी बुरा कहानी है। कोई हिन्दू अपने होश हवास में रह कर उस काल के चले जाने पर आँसू नहीं बहाता है। आँसू हमारे पूर्वज पहले काफ़ी बहा चुके हैं।

हाँ, हिन्दू-काल में एक-दम साम्प्रदायिक कलह का अभाव था, यह निर्विवाद है। परन्तु स्मरण रखने की बात उसके सम्बन्ध में यह है कि मुसल- मानी सम्प्रदाय जैसा विषम सम्प्रदाय उस सुदीर्घ

व्यापी काल में था ही नहीं। अवैदिक सम्प्रदाय केवल बौद्धों तथा जैनियों के थे। किन्तु जैनी अथवा बौद्ध तथा वैदिक-धर्म के अनुयायियों में उतनी बड़ी विषमता नहीं है जो हिन्दू तथा मुसलमान के बीच में है। इन दो अवैदिक सम्प्रदायों का वैदिक धर्म से विरोध केवल एक विषय में है। इन्हें द्रव्य तथा पशुमय यज्ञ से घृणा है। परन्तु यह भेद कोई बड़ा भेद नहीं है। महावीर तथा बुद्ध से बहुत पहले ही भगवान् कृष्ण ने भी उनका विरोध किया था—"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप"। मूलतः भगवान् बुद्ध की शिक्षा में तथ्य देखनेवाले तथा उस पर आचरण करनेवाले इस प्रकार के कुछ वैदिक विचारक पूर्व से ही यहाँ मौजूद थे। और बाहरी व्यवहारों में जैनी अथवा बौद्ध वैदिक ही कहे जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृति उन सबकी एक है। इसलिए उनमें कलह के लिए स्थान ही नहीं है। इसी कारण 'हिन्दू भारत' में साम्प्रदायिक अशान्ति नहीं थी।

हिन्दू तथा मुसलमान धर्म ऐसे नहीं हैं। मुसलमानों के कुछ विश्वास हिन्दू-जाति के लिए घातक हैं। सभी मुसलमानों को हिन्दू को जैसे भी हो मुसलमान बनाने की बड़ी चिन्ता रहती है और इसको वे इस्लाम का अभिन्न अङ्ग समझते हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक दृष्टि से भी वे अपनी संख्या को बढ़ाने की धुन में लगे रहते हैं। उन्हें भावी विधान में अल्प-संख्यक रहना असह्य है। हिन्दू-जाति मुसलमानों की इस नीति से बहुत घबराती है। वह स्वयं अपनी संख्या बढ़ाने की चिन्ता में नहीं रहती, बरन इस भावना का विरोध भी करती है। अतः दूसरों की ऐसी हरकत उसे अनीति-मूलक मालूम होती है। यह भावना अतीत की अप्रिय स्मृति के सङ्ग हिन्दू-मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास तथा मनोमालिन्य उत्पन्न करती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू और मुसलमान के कभी कभी झगड़ पड़ने का कारण अँगरेज़ी राज्य की कोई नीति नहीं है, बरन मूलतः मुसलमान जाति की अनीति है जो कभी ऐतिहासिक घटना के रूप में और कभी प्रत्यक्ष रूप से हिन्दुओं को तङ्ग करती है। अनीति से हमारा मतलब है बलात्कार-प्रवृत्ति। केवल मुसलमानों के हिन्दुओं को मुसलमान बनाने से हम उनसे असन्तुष्ट नहीं हैं। यदि उनका यह विश्वास है कि इस्लाम ही सभी धर्मों से उत्तम है और बिना उसे स्वीकार किये आत्मा को सद्गति नहीं मिल सकती है तो अवश्य ही उन्हें अपने धर्म का प्रचार करना चाहिए। परन्तु धर्मप्रचार तथा अपनी संख्या बढ़ाने के प्रचार में बड़ा अन्तर है। बौद्धों ने प्राचीन काल में धर्म-प्रचार किया, जिसका फल आज भी हमारे सामने है। लङ्का, ब्रह्मदेश, चीन तथा जापान आदि देशों ने भगवान् बुद्ध के आदेश को ग्रहण कर लिया और वे आज भी भारत का नैतिक उपकार मानते हैं। हिन्दुओं तथा उन देशों के निवासियों में कभी मनोमालिन्य नहीं हुआ। जिस समय प्रचार हुआ उस समय से अब तक मैत्री का भाव बराबर जारी है। आधुनिक काल में भी ईसाई पादरी धर्म-प्रचार का सुन्दर उदाहरण सामने रखते हैं। उस प्रचार की सभी प्रशंसा करते हैं। यद्यपि उनके प्रचार-कार्य से भी हिन्दुओं की संख्या प्रतिवर्ष कुछ घटती जाती है, तथापि उनसे हमारी कोई शिकायत नहीं है। हमारे और उनके बीच मनोमालिन्य अथवा अविश्वास नहीं है। हिन्दूईसाई झगड़ा नहीं होता है। स्वयं हिन्दुओं का एक सम्प्रदाय आर्य-समाज दक्षिण-अफ्रीका आदि देशों में धर्म-प्रचार करता है। उपनिवेशों में हमारी कोई सत्ता नहीं है, तो भी वहाँ उसका प्रचारकार्य चलता है। आर्य-समाज से वहाँवालों का कोई झगड़ा नहीं है। इसका कारण स्पष्टरूप से यही है कि बौद्ध, ईसाई तथा आर्य-समाज की प्रचार-नीति प्रत्यक्ष तथा छलछद्म-रहित है। ये लोग किसी सत्य का जिसमें उनका पूरा विश्वास है, दूसरों

में प्रचार करते हैं। किन्तु इसकी चिन्ता नहीं करते कि वे दूसरे शीघ्रातिशीघ्र उनमें आकर मिल हो जायँ। मुसलमान ऐसा नहीं करते। उनकी यह नीति प्रतीत होती है कि पहले होनेवाले 'मुसलमान' हो जायँ, फिर इसलाम सीखेंगे। यदि हुए लोग नहीं भी सीख पाये तो उनके वंशज सीख सकते हैं। इसी भावना को लेकर अपने समय में मुसलमान-शासकों ने अनेक प्रकार के बलात्कार किये। आज जब वह सत्ता नहीं रही तब छल-छद्म का प्रयोग किया जाता है। धर्म की यह उनकी कल्पना तथा प्रचार की भावना बड़ी अटपट है। सभी अशान्तियों के मूल में कदाचित् यही वासना है। कदाचित् इसी लिए प्रायः सात-आठ वर्ष पहले डाक्टर एनी बेसेन्ट को अपने पत्र 'न्यूइंडिया' के एक अग्रलेख में लिखना पड़ा था कि इस्लाम जिस रूप में इस समय हिन्दुस्तान में है उस रूप में वह विश्वशान्ति का सदा विघातक रहेगा। बात कुछ ऐसी ही दीखती है।

मुसलमान धर्म की सत्य-भावना से उतना प्रेरित नहीं होते जितना कि सामाजिक अथवा राजनैतिक भावना से प्रेरित होते हैं। यह एक और बात से भी प्रमाणित होता है। भारत की स्वतन्त्रता की अवधि ज्यों-ज्यों निकट आती जाती है, त्यों-त्यों वे अधिकाधिक उग्र होते जाते हैं। मौलाना शौकतअली तथा जिन्ना आदि जो कुछ दिनों पहले कांग्रेस तथा महात्मा गांधी के दाहने हाथ थे, आज प्रत्यक्षरूप से कांग्रेस तथा महात्मा के ध्येय स्वराज्य में बे-सिर-पैर की अनेक बाधायें डाल रहे हैं। यहाँ तक कि एक विदेशी लार्ड सैंकी को भी श्रीयुत जिन्ना को डाँटना ही पड़ा कि आप भारत का हित नहीं चाहते। उनकी माँगें उन्हें छोड़ कर किसी अन्य को उचित नहीं जँचतीं। यदि उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता में अटल विश्वास होता तो 'विधान-संरक्षण' पर वे इतना बल न देते। पाश्चात्य देशों के माध्यमिक युग के ये विश्वास कि धर्म की रक्षा तथा भावी प्रचार के लिए राजनैतिक सत्ता का होना आवश्यक है, इस युग में शोभा नहीं देता। अब तो हम यह समझते हैं कि राजनीति तथा धर्म प्रथक् विषय हैं। दोनों का क्षेत्र अलग अलग है। राजनीति का सम्बन्ध है समाज के शासन-विषयक सङ्गठन से और धर्म का सम्बन्ध है व्यक्तियों की आत्मा से। एक सार्वजनिक जीवन का विषय है तो दूसरा व्यक्तिगत जीवन का। अर्थात् मूलतः धर्म पर राजनीति का कोई प्रभाव नहीं होना चाहिए।

परन्तु हम यह भूलते नहीं हैं कि धर्म की ऐसी सूक्ष्म कल्पना अभी सबको यहाँ स्वीकार नहीं है। धर्म के नाम पर अनेक ऐसे कार्य किये जाते हैं जिससे वह एक सामाजिक रूप धारण कर लेता है। दृष्टान्त के लिए गौ की क़ुर्बानी, ताज़िया निकालना, राम-लीला का बाजे-गाजे के सङ्ग जुलूस निकालना आदि व्यवहारों का नाम लिया जा सकता है। ये धर्म के अङ्ग समझे जाते हैं और इन्हें लेकर बहुत झगड़े हुआ करते हैं। इस विषय में हिन्दू-मुसलमान दोनों समान रूप से दोषी हैं। क़साईख़ाने में हज़ारों गौवों का वध हुआ करता है। उससे हिन्दू-धर्म यदि लोप होने से बच सकता है तो मुसलमानों की क़ुर्बानी से उसका नाश कदापि नहीं हो सकेगा। वैसे ही मोटर आदि की ध्वनि से यदि इबादत नहीं बिगड़ती है जो नित्य की घटनायें हैं, तो साल में दो-एक बार हिन्दुओं के बाजे से इबादत नहीं बिगड़ जायगी। इन बातों को लेकर लड़ने से धर्म का अपमान होता है, धर्म को हीनता प्राप्त होती है। इन विश्वासों का शीघ्रातिशीघ्र नाश होना चाहिए। धर्म की स्थूल यह कल्पना भी साम्प्रदायिक अशान्ति का एक प्रधान कारण है। इसी को ध्यान में रखकर कबीर और नानक आदि ने धर्म का सुधार करना चाहा, जिससे हिन्दू-मुसलमानों में व्यर्थ का झगड़ा न हो। किन्तु मुसलमानों के वे और उनसे भी अधिक उनके अनुयायी वैरी हो गये। हिन्दू अलबत्ते उन्हें आज अपना अङ्ग ही समझते हैं। आज तक के अनुभव से यह तो कभी नहीं कहा जा सकता है कि आगे चल कर ये दोनों जातियाँ परस्पर मिल कर एक हो

जायँगी, परन्तु यह भावना अवश्य की जा सकती है कि दोनों धर्मों में ऐसे सुधार हो जायँ कि उनके माननेवाले धर्म की प्रधानता हृदय का विषय समझें, उसका सम्बन्ध अपने आन्तरिक जीवन से जोड़ें। इस विषय में हम दोनों को ईसाइयों से बहुत कुछ सीखना है। जैसे वे कहीं भी रह कर अपने धर्म की रक्षा कर सकते हैं, वैसे ही हमें भी वैसा करना सीखना चाहिए। यह बड़ी प्रशंसा की बात है कि ईसाई यहाँ 'विशेष प्रतिनिधित्व' के विरोधी हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत हो कम है। वे जानते हैं कि व्यवस्थापिका सभाओं-द्वारा महात्मा ईसा का धर्म नष्ट होने के भय में नहीं है। यह धार्मिक जीवन की स्तुत्य दृढ़ता है, और इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही होगी।

अब तक हमने साम्प्रदायिक कलहों के कारणों का विवेचन किया है। अब हमें कुछ उन उपायों का विचार करना है जिनसे भविष्य में ये न हो सकें। आज विलायत में जैसे हिन्दू-मुसलमान मैं-मैं और तू-तू में लगे हैं, अन्त में समझेंगे कि इससे काम नहीं सध सकता है। जैसे भी हो समझौता करना ही पड़ेगा। भारत में सबको सङ्ग सङ्ग रहना ही है, अँगरेज़ी सरकार का सहारा आज नहीं तो कुछ समय पश्चात् गया ही हुआ समझना चाहिए। जब हमें एक जगह रहना ही है तो मिल कर रहने के मार्ग का अनुसन्धान करना चाहिए।

ऊपर हमने कहा है कि साम्प्रदायिक अशान्ति का सबसे बड़ा कारण है मुसलमानों का दूसरों को मुसलमान बनाने का प्रयास। अतः हमें ऐसा प्रतीत होता है कि यदि यह प्रयास बन्द हो जाय तो थोड़े ही समय में पारस्परिक सन्देह और शङ्का दूर हो जायगी और सभी मिल-जुल कर रहेंगे। दूसरों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना बन्द करने के लिए खानगी तौर से कोई सफल उपाय नहीं किया जा सकता है। इस कार्य को सरकार को ही अपने हाथ में लेना चाहिए और इसके विरुद्ध कड़े-से-कड़े नियम बनाने चाहिए। हिन्दू का मुसलमानों को हिन्दू बनाना, मुसलमानों का हिन्दुओं को मुसलमान बनाना, ईसाइयों का मुसलमानों और हिन्दुओं को ईसाई बनाना, अर्थात् किसी भी धर्मावलम्बी का अन्य को अपने धर्म में लाने की कोशिश करना नियम-विरुद्ध माना जाय और कोशिश करनेवाले को कड़ा दण्ड दिया जाय। जहाँ तक प्रस्तुत लेखक को ज्ञात है, इँगलेंड में ऐसा ही नियम है। वहाँ 'कनवर्शन' नियम के विरुद्ध है। हाँ, यदि कोई व्यक्ति स्वतः अपने धार्मिक विचारों को परिवर्तित करना चाहे तो उसके लिए उसे पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी, उसमें कोई बाधा नहीं रहेगी। ऐसे परिवर्तन हो सकेंगे। किन्तु परिवर्तन कराने का प्रयत्न तो और बात है। इसमें और उसमें बड़ा भेद है।

इस आशय का नियम बनाना हमें किसी भी दृष्टि से सरकार का अनुचित हस्तक्षेप नहीं प्रतीत होता है। इसे हम राज की 'धार्मिक निरपेक्षता' समझते हैं। यदि सरकार ऐसे राष्ट्र की प्रतिनिधि हो जिसमें अनेक मतमतान्तर के लोग हों तो उस दशा में सरकार का सबसे उचित तथा उत्तम यही मार्ग है। क्योंकि सिद्धान्ततः उसे सभी धर्मों और मतों के सत्य को स्वीकार करना चाहिए। और हमने जो प्रस्ताव किया है वह इसी सर्व-धर्म-सत्य-स्वीकृति का प्रत्यक्ष रूप होगा। किसी विचारवान् को इससे कोई आपत्ति नहीं होगी। यह नियम सभी प्रजा को सभी के विश्वासों का आदर करना सिखलायेगा, जिससे आगे चलकर शान्ति और सुख का लाभ होगा।

इस उपाय के सङ्ग सङ्ग एक दूसरे उपाय का भी प्रयोग होना चाहिए। वह है साधारण जनता में शिक्षा का बहुल प्रचार। ऊपर कहा गया है कि धर्म के नाम पर लोग बहुत से ऐसे कर्म करते हैं जो धर्म का कोई अङ्ग नहीं हैं और व्यर्थ के झगड़े उत्पन्न करते हैं। ऐसे झगड़ों में सम्मिलित होनेवाले प्रायः वही लोग हैं जो अशिक्षित हैं। शिक्षा-प्राप्त लोग बहुत कम लड़ते हैं। यदि योग्य शिक्षा का अच्छा प्रचार

हो तो साम्प्रदायिक झगड़े बहुत कम हो जायँगे। झगड़ते वही हैं जो न आधुनिक दुनिया को जानते हैं, न अपना दीन जानते हैं। दीन-दुनिया जाननेवाले विग्रह करते भी हैं तो उसमें सभ्यता होती है, उसमें वह उग्रता नहीं होती। हम उससे उतना नहीं डरते। हम लोग अपने को सभ्य ही कहते और हमारे अब तक के शासक अपने को और भी सभ्य घोषित करते हैं, तथापि अब तक इसमें कठिनाई से सात प्रतिशतक अपना नाम लिख सकते हैं! इससे लज्जा की बात और क्या हो सकती है? जहाँ शिक्षा की इतनी दयनीय न्यूनता हो वहाँ तो कुछ और भी भयङ्कर उपद्रव होते रहने चाहिए। यदा-कदा यत्र-तत्र सामाजिक शान्ति का भङ्ग होना कुछ भी नहीं है। यह ईश्वर की बड़ी महिमा है जो इस स्वल्प शिक्षा से भी हम इस तरह से रह रहे हैं।

इस शिक्षा के सङ्ग लोगों में अवश्य ही अपनी भाषा और साहित्य के साथ दूसरों की भाषा और साहित्य के अध्ययन की अधिकाधिक लालसा बढ़ेगी, जिससे फलतः एक दूसरे के लिए आदर-बुद्धि बढ़ेगी। उच्च शिक्षा-प्राप्त हिन्दू-मुसलमान सभी अँगरेज़ी आचार-विचार का बड़ा आदर करते हैं। उसका प्रधान कारण यही है कि हम अँगरेज़ी का विशेष रुचि से अध्ययन करते हैं। वैसे बहुत से हिन्दू मुसलमान-संस्कृति के भी प्रशंसक मिलेंगे। उसका कारण यह है कि हिन्दू उर्दू-फ़ारसी का काफ़ी अध्ययन करते हैं। यह बात मुसलमानों के लिए नहीं कही जा सकती। इस युग में मुसलमान हिन्दू-संस्कृति का एक-दम अध्ययन नहीं करते। भारत भर में ऐसे मुसलमानों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है जो हिन्दुओं की संस्कृति को समझते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उस पर यदि ध्यान दिया जाय तो हमें आशा है भावी राष्ट्र का बड़ा उपकार होगा। निकट भविष्य में हमें अपने देश का शासन-सूत्र अपने हाथों में लेना है। उसे भली भाँति चला सकने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हममें मेल हो। उस मेल की स्थापना में प्रत्येक राष्ट्र के पुत्र का सहयोग देना परम सौभाग्य की बात है।

—रामप्रसाद पाण्डेय

अमरता

(१)

है अमर वह मनुज जो न मरता कभी,
या अमर है वही जो कि मरकर हुआ ?
है न मरता वही जन्म पाता न जो,
है अजन्मा अमर कौन भू पर हुआ ?

(२)

है अमरता उसे ही मिली या मिले,
है मरा अन्य के हेतु या जो मरे।
है अमरता वहीं वीरता है जहाँ,
यश उसे क्यों मिले जो कि मन में डरे ?

(३)

नाम है राम का ज्यों अमर विश्व में,
नाम लंकेश का त्यों अमिट क्या नहीं ?
धर्म-रत एक था, पाप-रत दूसरा,
भेद है तो यही, खेद है तो यही ॥

(४)

चन्द की कीर्ति जग में रहेगी बनी,
चन्द्र की चन्द्रिका भी न चाहे रहे।
है अमर कवि वही जो कि प्रभु-साथ में,
प्राण देकर रहे उफ़ न मुँह से करे ॥

(५)

वीर राणा रहे ही प्रतापी रहे,
है अमरता मिली यदि उन्हें इसलिए।
"हम दबेंगे नहीं स्वप्न में शत्रु से"
प्रण निबाहा उन्होंने तो यह किसलिए ?

(६)

ध्रुव कृती था नहीं युद्ध-प्रणयी न था,
प्राण से भी अधिक पर उसे प्रण रहा।
क्या हुआ जो अमर नाम उसका हुआ।
न्याय के हेतु क्या दुख न उसने सहा ?

(७)

चक्रवर्ती महीपति शिवाजी न थे,
फिर अमर नाम कैसे उन्हें मिल गया।
बात विज्ञात यह क्या तुम्हें है नहीं ?
मुग़ल के वंश का तख़्त क्यों हिल गया ?

(८)

भोज का नाम क्यों रोज़ लेती मही ?
किस समर में कमर थी उन्होंने कसी ?
ठीक है पर गुणग्राहिता देख कर,
मुग्ध होके अमरता उन्हीं से फँसी ॥

(९)

नाम हो, सत्यवादी युधिष्ठिर रहे,
किन्तु क्यों कौरवों का बना नाम है?
इन्दु पीयूषवर्षी बसा है जहाँ,
क्या वहीं पर नहीं राहु का धाम है?

(१०)

क्या मिला श्रीगोसाईं को या सूर को?
नाम की जो अमरता उन्हें मिल गई।
वीर-रस प्राप्त करके अमरता-कली,
क्या न भूषण में आकर स्वयं खिल गई॥

(११)

देव-दूषक रहा धर्म-ध्वंसक रहा,
किन्तु लंकेश क्या देश-रक्षक न था?
नाम उसका मही पर रहे या नहीं,
पर विभीषण-सदृश देश-तक्षक न था॥

(१२)

धर्म के हेतु बाँधा गया था बली,
विश्व में नाम उसका बना है अभी।
देश के हेतु जो बलि हुआ या बँधा,
नाम उसका मिटा कौन सकता कभी?

(१३)

हैं भले काम से नाम मिलते भले,
हैं बुरे नाम मिलते बुरे काम से।
है उजाला कहीं, है अँधेरा कहीं,
ये न दोनों हटेंगे जगद्धाम से॥

—रामचरित उपाध्याय

आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति

हिन्दी-साहित्य में सम्प्रति जिस प्रकार की कविता ने अपना एक स्थान अलग बना लिया है वह 'छायावाद' के नाम से पुकारी जाती है। छायावाद एक ऐसा शब्द है जिससे वर्तमान कविता का एवं तत्सम्बन्धी भावों का वास्तविक रूप में हृदयङ्गम कर लेना एक कठिन समस्या है। यही कारण है, हिन्दी में, विद्वानों ने इस कविता का बोध कराने के लिए कई नामों को सामने रखने की चेष्टा की है। किसी वस्तु का प्रारम्भ में स्वरूप अथवा नाम निर्धारित करने में ऐसी ही कठिनाइयाँ आया करती हैं और विद्वानों में बड़ा मतभेद भी हुआ करता है।

'छायावाद' शब्द से सम्प्रति तत्सम्बन्धी कविता के स्वरूप का हृदयङ्गम चाहे न हो सके, तो भी 'छायावाद' शब्द हिन्दी के कोष में आ गया है। 'छायावाद' शब्द निरर्थक तथा पङ्गु होते हुए भी रूढ़ि के रूप में प्रचलित हो गया है। इसी प्रकार अनेक शब्दों को व्युत्पत्ति हुई है और वे भी इसी भाव को अभिव्यञ्जना में रूढ़ि का रूप धारण करते हैं।

छायावादी कविता ने हिन्दी में कविता के असीम रूप को सीमा-रूप में बाँधने की चेष्टा की है। उसने भावों की अभिव्यञ्जना को एक नवीन शैली में एवं नये नये प्रकार के छन्दों में व्यक्त किया है। मेरा अनुमान है, हिन्दी में इस प्रकार की कविता का आरम्भ विगत दस वर्षों के भीतर हुआ है। इन वर्षों में इस कविता का जो अमिट विकास हुआ है वह आधुनिक विद्वानों की आलोचना की सामग्री रहा है। पुराने विचार के विद्वान् एवं नये विचार के विद्वान सबों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं। पुराने विचार के विद्वानों ने इस प्रकार की कविता होना श्रेष्ठ साहित्य की दिशा से भ्रष्ट हो जाना बताया है। और नये विचार के विद्वानों ने इसे कविता को चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति एवं अनुभूति होने का एक-मात्र साधन बताया है। व्यक्तिगत रूप से इन पंक्तियों के लेखक का दोनों प्रकार के विचारों से थोड़ा थोड़ा मत-भेद है। पुराने विचारों के विद्वानों की दृष्टि से वह इस प्रकार की कविता को श्रेष्ठ साहित्य की दिशा से भ्रष्ट होना सम्पूर्णत: स्वीकार नहीं करता और न इस शैली के समर्थक विद्वानों के विचारों के अनुसार इसे सम्प्रति, चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति का साधन ही समझता है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अब इस कविता का स्वरूप एक प्रकार से निश्चित हो चुका है। इस कविता की धारा में जो गति थी वह अब एक ही वेग से चल रही है। अब इसमें न प्रारम्भ की-सी शिथिलता है और न अब इसमें एक ऐसा उद्दाम वेग है जो अत्यधिक उच्छृङ्खल होकर अपने मार्ग के कण्टकों को उखाड़ कर फेंक सकता है। इस कविता में अब

जिस प्रकार की कमी का अनुभव होने लगा है वही एक बात द्रष्टव्य है।

कवि भी साधक है और वह अपने अभिनव मार्ग से साधक की भाँति चिरन्तन सत्य को उपलब्धि करना चाहता है। चिरन्तन सत्य की एक-मात्र उपलब्धि ही उसकी सिद्धि है। चिरन्तन सत्य की उपलब्धि में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् तीनों बातों की प्रधानता रहा करती है। तीनों बातों को एक ही रूप में उपलब्ध करना ही सिद्धि है। त्रिवेणी का माहात्म्य गङ्गा, यमुना और सरस्वती की तीन भिन्न भिन्न धाराओं के कारण नहीं है। त्रिवेणी का माहात्म्य उनके सङ्गम से उनके एक रूप से ही है। त्रिवेणी में तीन धाराओं के सङ्गम ने ही इस अभिनव अपरूप वस्तु को रूप प्रदान किया है। यही कारण है, भारतीय संस्कृति में त्रिवेणी का एक महा पुनीत माहात्म्य है। त्रिवेणी की इस एकरूपता में हम सत्य भी पाते हैं, आनन्द भी पाते हैं और सौन्दर्य भी पाते हैं। तीनों धाराओं की एक रूपता ही सत्यम् शिवम् सुन्दरम् मन्त्र की प्रधान द्योतिका है। यदि हम सत्य को प्रकट करके देखना चाहते हैं तो हमें शिवम् तथा सुन्दरम् की महत्ता नहीं दिखाई पड़ती। यदि हम शिवम् को पृथक् करना चाहते हैं तो सत्यम् और सुन्दरम् को अनुभूति सम्पूर्णतया नहीं होती और इसी प्रकार यदि सुन्दरम् को देखते हैं तो सत्यम् और शिवम् की महिमा से हम अभिभूत नहीं होते। इसी प्रकार जब हम खिले हुए गुलाब की एक पँखुरी को लेते हैं तो हमें सुरभि और सुन्दरता तो मिलती है, परन्तु उसका सम्पूर्ण स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता। और तब, उसी सम्पूर्ण स्वरूप को देखना—उसी एकरूपता के आनन्द को, सौन्दर्य को और सत्य को प्राप्त करना हमारा एक-मात्र उद्देश हो जाता है। इस सम्पूर्णता को प्राप्त करने में अपूर्णता की जिस करुण वेदना की अभिव्यक्ति होती है—सीमारूप की असीमरूप में परिणति की एक जो पवित्र कामना है—उसी से और उसी की चेष्टा से हमें कविता की प्रगति के दर्शन होते हैं।

कहा गया है, 'भूमैव सुखं नाल्पे सुखमस्ति'। भूमा—सम्पूर्णता ही हमारा सुख है, अल्प में—अपूर्णता में हमें सुख नहीं मिलता। यही कारण है, जब हम सत्य को, शिव को और सुन्दर को पृथक् पृथक् देखते हैं तब हमारी साधना अपूर्ण रह जाती है और हम उसके शाश्वत आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाते। हिन्दी के साधक कवियों ने इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए अनेक रूपकों को प्रतिष्ठित किया है। महात्मा कबीरदास ने 'भूमा' के शाश्वत आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए एक रूपक को हमारे सामने रख दिया है। वे कहते हैं, भाई, मैं तुम्हें इस भाव को और उसकी महत्ता को शब्दों में कैसे समझाऊँ? यह सभी जानते हैं, भारतीय स्त्रियाँ अपने स्वामी का नाम नहीं लेतीं। कारण यह है कि वे उसकी वास्तविक गरिमा को पहचानती हैं। वे जानती हैं कि यदि वे स्वामी का नाम लेंगी तो स्वामी और पत्नी दो भिन्न भिन्न वस्तु हो जायँगे। इस भिन्नता से सती के सतीत्व की महिमा नहीं पहचानी जा सकती। यदि स्त्री अपने स्वामी का नाम लेती है तो वह उससे पृथक् हो जाती है और फलतः उसे स्वामी के मिलन का और उसके महत्त्व का कोई आनन्द नहीं प्राप्त होगा। दोनों द्वैत होकर अद्वैत हैं और यह अद्वैत ही सम्पूर्णता है—भूमा है।

स्त्री—और विशेष कर भारतीय सती स्त्री, अपने स्वामी में इसी भूमा का दर्शन करती है। इसी पवित्र दर्शन से सती के सच्चे सतीत्व की महिमा का परिचय मिलता है। अपने स्वामी में भूमा के दर्शन पाने से सती को अपने जीवन की कोई चिन्ता नहीं रहती—कोई मोह नहीं रहता। कारण कि 'नाल्पे सुखमस्ति'। अपूर्णता में उसे सुख नहीं है। पूर्णता ही उसका सुख है।

सती का स्वामी में सम्पूर्णता का प्राप्त करना भी एक बड़ी कठिन साधना है। कबीरदास कहते

हैं, यह साधना कठिन है। यह तो जैसे चौपड़ का खेल है। इस खेल में सती और स्वामी खेल खेलने के लिए बैठे हैं। जो एक को खेल में गिरा देगा उसकी विजय होगी और दूसरे की हार। परन्तु यह खेल बड़ा विचित्र है। इसमें हार होती ही नहीं है। यदि हार होती है तो भी विजय होती है और यदि विजय होती है तो फिर कहना ही क्या है?

तन मन धन बाजी लागी हो, चौसरिया के खेल में।
हारी तो पिय की भई रे जीती तो पिय मोर हो।
चौसरिया के खेल रे, जुग्ग मिलन की आस।
तन मन धन बाजी लागी हो, चौसरिया के खेल में॥

इस चौसर के खेल में मैंने अपना तन, मन, धन सब कुछ बाज़ी पर लगा दिया है और इस खेल को खेल रही हूँ। यदि इस खेल में हार गई तो मैं प्रियतम की हो जाऊँगी और जीत गई तो प्रियतम मेरे हो जायँगे। कहीं से भी हार होने की सम्भावना नहीं है। दोनों दिशाओं से जीत है। इस खेल में हर तरह से स्वामी मिलते हैं और स्वामी के मिलन की पूरी आशा है।

महात्मा कबीरदास ने स्वामी के इस मिलन में सत्य, आनन्द और सौन्दर्य सब कुछ उपलब्ध किया है। यह साधना—यह प्रेम-साधना सभी दिशाओं से उनके साधना-जन्य जीवन में सत्यमयी, आनन्दमयी और सौन्दर्यमयी हो उठी है। यही साधना कवि के जीवन में भी सत्यमयी, आनन्दमयी और सौन्दर्यमयी हो उठनी चाहिए। और तभी हमें कवि की कविता में सत्यं, शिवम् और सुन्दरम् के दर्शन हो सकते हैं। कविता में केवल सत्य, शिव और सुन्दर शब्द लिख देने से हमें सत्य, शिव और सुन्दर की एकरूपा त्रिवेणी के दर्शन नहीं हो सकते। आधुनिक हिन्दी-कविता की अधिकांश रचनाओं में हमें यही एक बड़ी कमी दिखाई पड़ती है।

पुराने ढङ्ग की कविताओं में अलङ्कार की प्रधानता पाई जाती है। यदि कोई लड़कीवाला अपनी लड़की का विवाह करने के लिए वरपक्ष के सम्मुख अलङ्कार-आभूषणों का ढेर लगा कर यह कहे कि देखिए, मैं लड़की के विवाह में ये पचीसों प्रकार के अलङ्कार दे रहा हूँ तो उससे हमें कन्या के स्वरूप और सौन्दर्य का बिलकुल बोध नहीं होगा। जिस प्रकार लड़कीवाले अलङ्कार दिखाकर लड़की के स्वरूप और सौन्दर्य को हमें दिखाने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार अनेक कवि कोमल-कान्त-पदावली से परिपूर्ण अलङ्कार दिखाकर हमें कविता-कामिनी के स्वरूप और सौन्दर्य का दर्शन कराना चाहते हैं। यह माया-मरीचिका है। माया-मरीचिका से प्यास नहीं बुझती। हिन्दी की अधिकांश आधुनिक कविता में भी यही बात पाई जाती है। पुरानी कविता के समान अनेक कवि अपनी शब्दावली और अलङ्कार से कविता-कामिनी का रूप दिखाना चाहते हैं। वस्तुतः शब्दावली से अपरूप रूप की सृष्टि होनी चाहिए और तभी हमें सत्य, शिव और सुन्दर की पवित्र त्रिवेणी की अनुभूति हो सकती है। कविगण कहते हैं, अमुक कविता में चिरन्तन सत्य का अधिवास है। परन्तु कविता में आनन्द और सौन्दर्य की कमी के कारण हमें सत्य के परिदर्शन नहीं होते।

कविता ललित-कला का एक अङ्ग है। उसकी अभिव्यक्ति भावों और छन्दों से होती है। छन्दों की भित्ति सङ्गीत की बाह्य पीठिका है। और सङ्गीत की भित्ति स्वर है। स्वर की बुनियाद पर छन्द खड़े किये जाते हैं। अतएव कविता में स्वर का सङ्गीत भी होना चाहिए। यदि हमें करुण-रस का जागृति करनी है तो हमें विहाग आदि के स्वर पर जाना पड़ेगा। तात्पर्य यह है, कविता की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में सङ्गीत का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि हमें कविता से सत्य की प्राप्ति होती है तो हमें छन्द और स्वर से सौन्दर्य और आनन्द की भी उपलब्धि होती है। जब सौन्दर्य और आनन्द की प्राप्ति होगी तभी हम सत्य के समग्र रूप की अनुभूति कर सकते हैं। इसी कसौटी पर आधुनिक हिन्दी-कविता की परीक्षा की जा सकती है। सम्प्रति अधिकांश कवि अपनी

कविता में सङ्गीत का आधार लेने की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं। कुछ कवि ऐसे हैं जो कविता में 'विहाग', 'सोहनी', 'पूर्वी', 'भैरवी' प्रभृति शब्द लिखकर सङ्गीत का आनन्द देना चाहते हैं। परन्तु शब्द-मात्र से आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है? कविता की धारा का आनन्द स्वर और छन्दों के अनुकूल होने से ही मिल सकता है।

पण्डित सुमित्रानन्दन पन्त, श्रीयुत जयशङ्कर-'प्रसाद' तथा पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रभृति कवियों ने अपनी कविता की धारा को सङ्गीत की ओर अग्रसर किया है। अपने अपने क्षेत्र में इन कवियों ने जिस कुशलता के साथ सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् की त्रिवेणी की धारा बहाई है उससे उनकी अविरत साधना का एक सुस्पष्ट परिचय मिलता है।

अपूर्णता की वेदना और उसकी करुण अभिव्यक्ति से ही हमें आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रगति के दर्शन होते हैं। स्थिरता हमारे पतन का और प्रगति हमारे उत्थान का लक्षण है। सम्प्रति उत्थान की पवित्र चेष्टा में हमें हिन्दी-साहित्य में अपूर्णता की वेदना का जो सकरुण अनुभव होता है वह हमारे कविता-जगत् की भावी सफलता का एक काल्पनिक रूप है। इन पंक्तियों का लेखक असीम धैर्य के साथ उसी काल्पनिक रूप के सजीव रूप को देखने का एकान्त अभिलाषी है।

—मङ्गलप्रसाद विश्वकर्मा
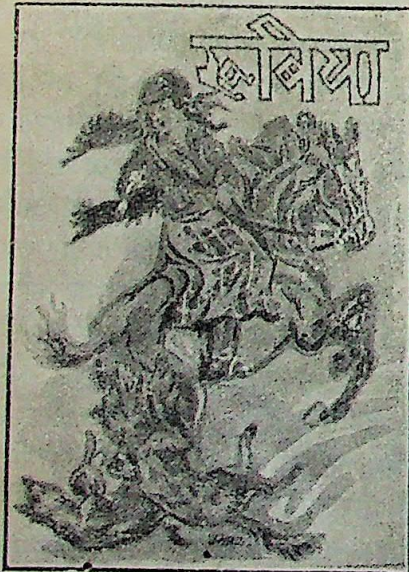
स्नेहमयी

[१]
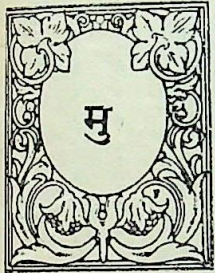
मुझे ईश्वर की भूल पर हँसी आती है। जहाँ तक मेरी सृष्टि का सम्बन्ध है, मैं उसे मूर्ख ही कहूँगा। अमरीका के न्यूयार्क नामक नगर में जन्म देने के लिए मैं उसका कृतज्ञ हो सकता हूँ। परन्तु उसकी इस भूल को मैं माफ़ नहीं कर सकता कि उसने मुझे हिन्दुस्तानी के घर में जन्म क्यों दिया? हिन्दुस्तानी संसार में, कम-से-कम अमरीका के न्यूयार्क नामक नगर में, घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। मैं सोचता हूँ कि मैंने कोई क़सूर नहीं किया जो घृणा और तिरस्कार का पात्र बनूँ। पर कानों में जैसे कोई कहता है—यहाँ हिन्दुस्तानी को मान कहाँ? मान की इच्छा थी तो अमरीकन के घर में जन्म लेता। पर इस प्रकार कहनेवाले यह नहीं सोचते कि यह क़सूर ईश्वर का है, मेरा नहीं।

ज्यों ज्यों मैं बड़ा हुआ, त्यों त्यों अपमान का यह बबूल भी मेरे हृदय में काँटे बिखेरता गया। अप-टु-डेट अमरीकन पोशाक में रहने पर भी लोग न मालूम कैसे हिन्दुस्तानी समझ लेते थे? मैं शरीर से काला नहीं था, गोरा था—काफ़ी गोरा। तब भी इस अपमान का शिकार बना हुआ था।

पर ख़ैर एक घटना से ढाढ़स हो चला था। इधर अमरीकन स्त्रियाँ हिन्दुस्तानियों से ब्याह करने लगी थीं, और खूब खुलकर ब्याह करने लगी थीं। शुरू में स्त्रियों को इस कार्य्य से कुछ अमरीकनों ने विमुख करने का प्रयत्न किया था। परन्तु अन्त में वे सफल न हो सके और हिन्दुस्तानी घरों में बहुसंख्यक अमरीकन महिलायें दिखलाई देने लगीं। न्यूयार्क में दो हज़ार से कम हिन्दुस्तानी न होंगे और वे सब अब अमरीकनों के साथ किसी न किसी प्रकार सामाजिक सूत्र में बँध रहे हैं। उन्हीं में एक मैं भी हूँ और मैं यह कह सकता हूँ कि अमरीकनों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने की जितनी चेष्टा मैंने की है उतनी कदाचित् ही किसी हिन्दुस्तानी ने की हो। जब अमरीका में जन्म मिला है तब अमरीकन बन कर क्यों न रहें? यही मेरा उद्देश सदा रहा है। न्यूयार्क में हिन्दुस्तानी बनने से क्या लाभ? और फिर मुझको हिन्दुस्तान कभी जाना भी नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि वह देश दुनिया के पर्दे से ही मिट जाय! वह उन हिन्दुस्तानियों के लिए कलङ्क है जो उस देश से बाहर रहते हैं।

वयस्क होने पर एक अमरीकन लड़की से मैंने प्रेम की भिक्षा माँगी। उससे मैंने कहा—मेरी स्त्री, मेरी रानी, मेरी हृदयेश्वरी बन जाओ। तुम्हारे पीछे पागल कुत्ते की भाँति दौड़ता रहूँगा।

उसने पूँछा—तुम इण्डियन प्रिंस हो, राजा हो?

मैंने कहा—नहीं, मैं हिन्दुस्तानी की अपेक्षा अमरीकन अधिक हूँ।

"तब मैं तुम्हारे साथ ब्याह नहीं कर सकती। मुझे वह हिन्दुस्तानी चाहिए जिसे अँगरेज़ लोग राजा

या प्रिंस कहते हैं। अमरीकनों से मुझे घृणा है। इनके व्यापारिक कार्य्य मुझे पसन्द नहीं हैं। राजा से व्याह करके मैं परदेश में जाना चाहती हूँ।"

मैं अपना मन मसोस कर रह गया। जी में आया आत्म-हत्या कर लूँ, पर न जाने क्या सोच कर रह गया। अमरीका की स्त्रियाँ बड़ी ही कठोर-हृदया होती हैं। प्रेमी युवकों की पीड़ा समझने की बुद्धि ईश्वर ने उन्हें नहीं दी। इसी कारण प्रति-वर्ष हज़ारों अमरीकन पुरुष स्त्रियों से तिरस्कृत होकर आत्महत्या करते हैं। पर जब मैं पूर्णरूप से अमरीकन नहीं था तब आत्महत्या करने में ही क्यों अमरीकन बन जाता।

मेरे भाग्य का सितारा उस दिन चमका जब पृथ्वी के गर्भ में मेरी एक गोरी महिला से भेंट हुई। जो लोग न्यूयार्क के बाशिन्दे नहीं हैं उन्हें पृथ्वी के गर्भ का ज़िक्र सुनकर ज़रा आश्चर्य होगा। बहुत कम यात्री अपनी यात्रा की जल्दी में न्यूयार्क के नीचे बसे हुए इस दूसरे न्यूयार्क को देख पाते हैं। यहाँ पृथ्वी के अन्दर ही अन्दर एक ख़ासा शहर बसा हुआ है। होटल, सिनेमा, क्लब किसी बात की कमी
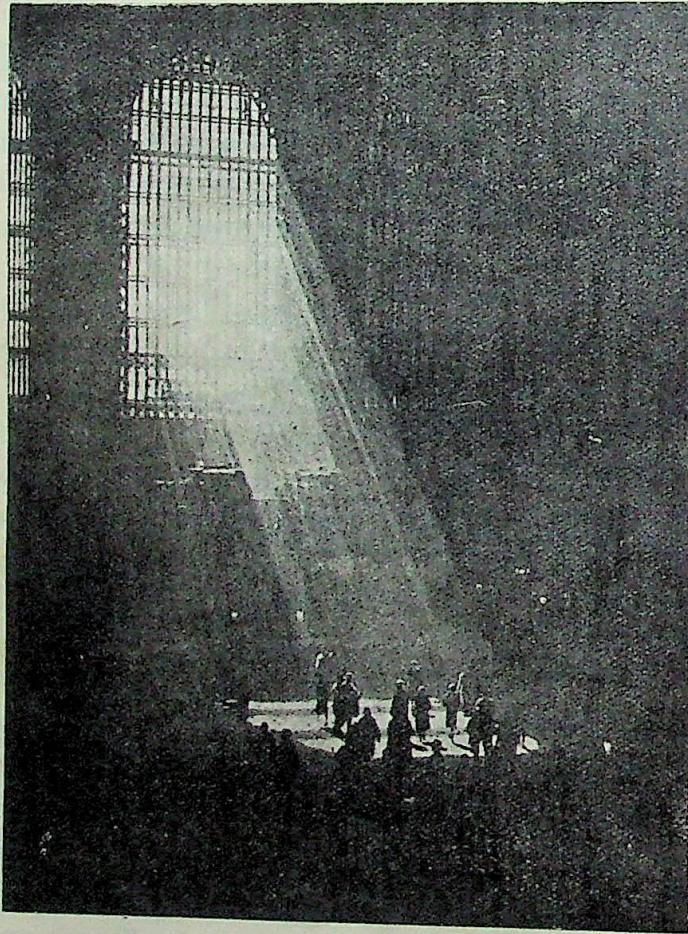
[न्यूयार्क नगर में पृथ्वी के नीचे रेल का एक स्टेशन]

नहीं है। नीचे ही नीचे बड़ी बड़ी रेलगाड़ियाँ चलती हैं। स्टेशन तो ऐसे ऐसे बड़े बने हैं कि उनमें तीस हज़ार आदमियों की भीड़ कोई भीड़ ही नहीं समझी जाती।

उस दिन ऐसे ही एक स्टेशन पर मैं बैठा हुआ पृथ्वी के ऊपर लगी खिड़की से आनेवाली धूप का मज़ा ले रहा था। मैंने अनुभव किया कि सूर्य्य के प्रकाश में चमकता हुआ मेरा मुखमंडल नीली आँखों के

वह स्त्री मेरे कुछ क़रीब आई। कुछ मुस्कुराई और बोली—मैं आपका परिचय प्राप्त करना चाहती हूँ। न जाने क्यों आपसे बातें करने को जी चाहता है?

जीवन में यह प्रथम अवसर था जब एक गोरी रमणी ने मुझे इस प्रकार सम्बोधित किया था। मैंने उत्तर दिया—धन्यवाद। आप से बातें करके मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊँगा। मेरा बड़ा सौभाग्य है जो आपके दर्शन हुए।
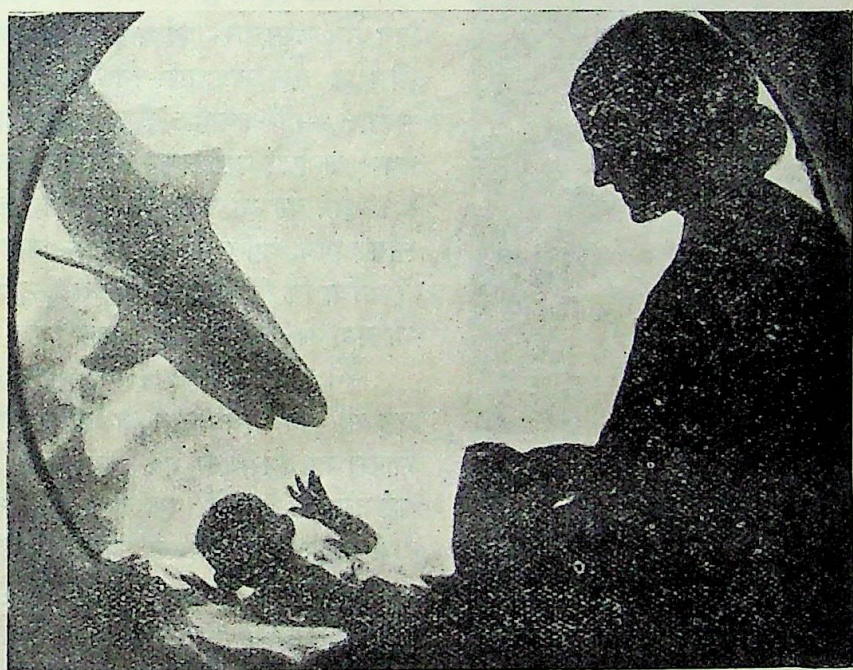
[समुद्र के गर्भ में मछलियाँ काँच से टकरा कर लौट जाती हैं।]

एक जोड़े को अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहा था। वे आँखें मुझ पर लगी थीं, मेरी ओर आकर्षित थीं। मैंने भी उस दिशा की ओर एक प्रकार के आकर्षण का अनुभव किया। मैंने देखा कि पृथ्वी के उस अन्धकारमय प्रदेश में प्रेम-देवता रवि-रश्मियों में रँग कर अपना सोने का तीर चमका रहा है। मैं स्वेच्छापूर्वक उस तीर का निशाना बन गया।

उसने पूछा—आप हिन्दुस्तानी जान पड़ते हैं?

"कहने को तुम चाहे जो कह सकती हो। पर अमरीका में जन्म लेने के कारण मैं अपने को अमरीकन ही समझता हूँ।"

"क्या ही अच्छा होता यदि आप पूरे हिन्दुस्तानी होते?"

"क्या आप मेरा अपमान करने के लिए इस प्रकार कह रही हैं?"

"नहीं, नहीं, हृदय से कहती हूँ। मुझे हिन्दुस्तानी बहुत पसन्द हैं। मेरा ख़याल है कि दुनिया में उनके जैसे सरल और स्नेही मनुष्य अन्यत्र नहीं मिलेंगे। ईश्वर मुझे दूसरे जन्म में हिन्दुस्तानी की कन्या और हिन्दुस्तानी की ही स्त्री बनावे।"

[स्काटलेंड में विवाह की एक पुरानी प्रथा जिसमें पति स्त्री को उसकी माँ की गोद से लेकर भागता है।]

मैंने अवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया। तुरन्त मेरे मुँह से निकल गया—दूसरे जन्म में ईश्वर तुम्हारी पहली इच्छा पूर्ण करे। पर तुम्हारी दूसरी इच्छा मैं इसी जन्म में, आज, अभी, इसी समय पूरी कर सकता हूँ।

उसके सफ़ेद गालों पर लज्जा की लाली दौड़ गई और उसके आनन्दोल्लसित अधरों से ये शब्द फूट पड़े—सच? क्या सच?

मैंने उसके क़रीब जाकर कहा—हाँ सच, हज़ार बार सच।

उसने अपने दाहने हाथ की तीनों चंचल उँगलियों को मेरे होंठों पर रख कर कहा—मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। आज से तुम मेरे हो।

[२]

ब्याह करने के बाद सबको द्रव्योपार्जन की सूझती है। प्रकृति ने मेरे लिए दूसरा नियम नहीं बना रक्खा था। ब्याह के एक वर्ष के बाद एक दिन मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि अफ़्रीका के मध्य-भाग में एक खण्डहर निकला है। उसमें अनन्त सम्पत्ति—हीरे-जवाहर बिखरे पड़े हैं। साहसी लोग हवाई जहाज़ों पर जाकर वह सम्पत्ति उड़ाये ला रहे हैं। मैंने यह भी पढ़ा कि उस खण्डहर को ब्रिटिश लोग अपने अधिकार में करना चाहते हैं। मेरे जी में आया कि अँगरेज़ों का पहरा बैठने से पहले ही मैं भी वहाँ से क्यों न जाकर कुछ माल ले आऊँ।

मैंने इस बात का ज़िक्र अपनी पत्नी से किया। वह भी मेरे साथ जाने को तैयार हो गई। उसमें साहस था, निर्भयता थी, देश देखने की इच्छा थी, पर उसकी गोद में एक बच्चा भी था। मैंने बहुत समझाया, पर वह न मानी। हम दोनों अपने प्यारे बच्चे के साथ एक हवाई जहाज़ पर रवाना हुए। साथ में हम लोग एक काँच का घर भी लाये, जो समुद्र में पानी के अन्दर खड़ा किया जा सकता था और जिसमें बाहर से आक्सीजन जाने का प्रबन्ध था।

अफ़्रीका के किनारे पर मैंने गहरे समुद्र में जल में वह घर खड़ा किया। स्त्री और बच्चे को उसी में छोड़ कर मैं उसी हवाई जहाज़ पर फिर मध्य-अफ़्रीका के लिए उड़ा।

इस उड़ान के लिए विदा देते समय मेरी स्त्री की आँखों में जो आँसू उमड़ आये थे वे मुझे आज तक नहीं भूले। पर यह तो सृष्टि का पहला नियम है। पुरुष साहस के कार्य्यों के लिए जीवन क्षेत्र

के ख़तरों में प्रविष्ट होता है और स्त्रियाँ आँसू बहाती हैं।

इन्हीं आदर्शों पर तर्क-वितर्क करता हुआ मैं उड़ा चला जा रहा था। मुझे जान पड़ता था, मानो मैं संसार का बादशाह बन जाऊँगा। बीच बीच में मुझे समुद्र के गर्भ में बैठी हुई अपनी पत्नी की याद आजाती थी। रेडियो के द्वारा मैं पल पल में उससे बातें करता जा रहा था। जो देश देख रहा था उसका ज़िक्र उससे करता जाता था। वह अपना और बच्चे का हाल मुझे बतलाती जाती थी। मछलियाँ उस पर किस प्रकार हमला करने के लिए आती थीं और काँच से टकराकर लौट जाती थीं, ख़ूब धोखा खाती थीं। पहले हम लोगों का ख़याल था कि बच्चा समुद्र के जीवों को देखकर डरेगा। पर वह उन्हें पकड़ने दौड़ता था। अपनी पत्नी के मुख से यह सब समाचार सुनकर मैं ख़ुशी से मस्त होता चला जा रहा था। मैं उससे कहता था ओह! इस समय यदि मैं भी तुम्हारे साथ उस घर में होता।

जब मछलियों और समुद्री जीवों की बातचीत समाप्त हो गई तब हम लोगों ने अपने विवाह के जीवन की चर्चा छेड़ी। ऊपर मैं यह बताना भूल गया हूँ कि मेरा ब्याह स्काटलेंड में आकर हुआ था। मेरी पत्नी स्काटलेंड में ही पैदा हुई थी। अपनी माता के साथ अमरीका में वह पशुपालन की कला सीखने आई थी। उस घटना का ज़िक्र आने पर जिसमें मैं अपनी पत्नी को उसकी मा की गोद से उठा कर ले भागा था, मुझे रोमांच हो आया। स्काटलेंड में यह अच्छी प्रथा है। ब्याह के पश्चात् पति पत्नी को उसकी मा की गोद से छीन कर भागने का नाटक करता है। दुनिया के लोग बहुत सुखी हो जायँ यदि यह प्रथा सारे संसार में फैल जाय।

जब तक अफ़्रीका के मध्यभाग में उस खण्डहर के पास मैं नहीं पहुँच गया तब तक मेरी और मेरी पत्नी की बातें होती रहीं। जब जहाज़ खड़ा करके मैं उतरा तब मैंने कहा—प्रिये! वह खण्डहर आ गया।

पर यहाँ हीरे और जवाहर कुछ नज़र नहीं आते। तो भी मैं यहाँ कुछ समय लगाऊँगा। स्थान भयानक है। मुमकिन है देर लगे। जब तक तुम मेरी आवाज़ न सुनना किसी प्रकार धैर्य धारण करना। अब बिदा दो।

मेरे कानों में उसके सिसकने की आवाज़ आई। पर मैंने वह बहुत न सुनी। हवाई जहाज़ से उतर कर उस निर्जन वन में जा खड़ा हुआ, जहाँ उस समय मेरे सिवा और कोई मनुष्य नहीं था।
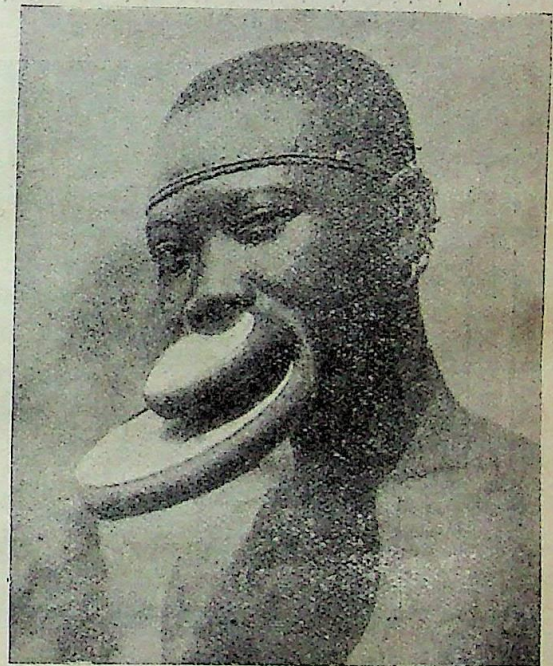
[कहाँ वह स्काट-सुन्दरी और कहाँ यह हब्शी महिला]

(३)

उस खण्डहर में घूमते घूमते मैं एक झाड़ी के पास पहुँचा। पर वहाँ जो कुछ देखा, देखकर दङ्ग रह गया। झाड़ी में बैठी एक स्त्री शृङ्गार कर रही थी। उसके दोनों होंठ जीवित खाल की दो तश्तरियां के समान सामने झूल रहे थे, जैसे पहिये लगाकर उसने उन होठों को बढ़ाया हो। बिलकुल बतख़ की चोंच के समान उसका मुँह दिख रहा था। मैं उसे देखकर आश्चर्य और भय से काँप उठा।

पर वह तो मानो मुझ पर मुग्ध हो गई थी। दौड़-कर मेरे पास आई और अपनी विचित्र भाषा में अपना प्रेम-भाव प्रकट करने लगी। पहले तो मैं समझ ही न सका कि वह क्या चाहती है। उसके होठों का हिलना देखकर मुझे भय लगता था कि कहीं मुझे खा डालना तो नहीं चाहती। पर क्षण भर बाद उसके उन विचित्र अधरों पर खिंची हास्य की रेखा से मैं उसका तात्पर्य समझ गया। वह मेरे साथ ब्याह करना चाहती थी। मेरे हाथ को लेकर बार बार चूमने लगी।

उसने मेरा हाथ पकड़ कर एक ओर को चलने का सङ्केत किया। मैंने हाथ झटक दिया। उसने फिर मेरा हाथ पकड़ा। मैंने फिर उसका तिरस्कार किया। तब उसने अपनी भाषा में न जाने क्या क्लिलुलू क्लिलुलू किया।

क्षण भर बाद मैंने देखा कि मेरे सामने हबशियों की एक जमात खड़ी है। वे अपनी भाषा में मुझसे तरह तरह के प्रश्न करने लगे। पर मैं किसी प्रश्न का उत्तर न दे सका।
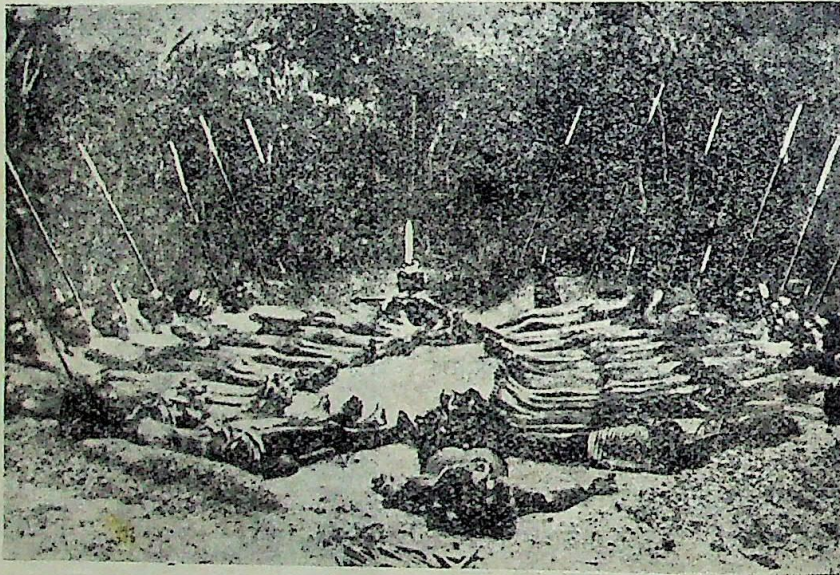
[दोपहर की गर्म बालू में झुलस कर अपनी शक्ति की परीक्षा देने वाले युवक।]

अपरिचित देश में ऐसा अनुभव कदाचित् ही किसी को हुआ हो। पर मुझे उसकी सूरत से घृणा थी। मुझे मालूम हुआ कि हिन्दुस्तानी से भी अधिक घृणित जाति यहाँ पर निवास कर रही है। मैं मन ही मन कहने लगा—ओफ़! यहाँ व्यर्थ आया।

मैं आगे बढ़ा पर वह मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। जी में आया कि तमंचा निकाल कर इसका काम तमाम कर दूँ। पर सोचा—अपरिचित देश है। न मालूम कैसे लोग यहाँ रहते हैं।

वे सब मुझे घसीटते हुए एक बालू के मैदान में ले गये। सूर्य सिर पर आ गया था। बालू गरम हो रही थी। वहाँ पहुँचते ही वे सब तप्त बालू में लेट गये। इस प्रकार वे अपनी शक्ति की परीक्षा दे रहे थे। वह हब्शी-कन्या चाहती थी कि मैं भी उन्हीं की भाँति अपनी शक्ति की परीक्षा दूँ। जो उस बालू में दस दिन तक लगातार जलने के बाद न मरता उसी का उस कन्या के साथ ब्याह होता। मैं इस प्रकार जलने के लिए तैयार न था और सो भी उस मनहूस

हब्शी-कन्या के लिए! पर मेरा वश न चला। मैं झुलसाया गया।

इस प्रकार मैं कई दिन तक जलता रहा। अन्त में एक दिन शाम को मौक़ा पाकर मैं किसी प्रकार अपने हवाई जहाज़ के पास जा पहुँचा और वहाँ से भाग निकला।

चित्त ठिकाने होने पर मैंने रेडियो-द्वारा अपनी पत्नी को पुकारा और उससे सारा हाल कहा। मेरी पत्नी ने उत्तर दिया—परीक्षा पास करो और उस कन्या को अपने साथ विवाह करके लेते आओ।
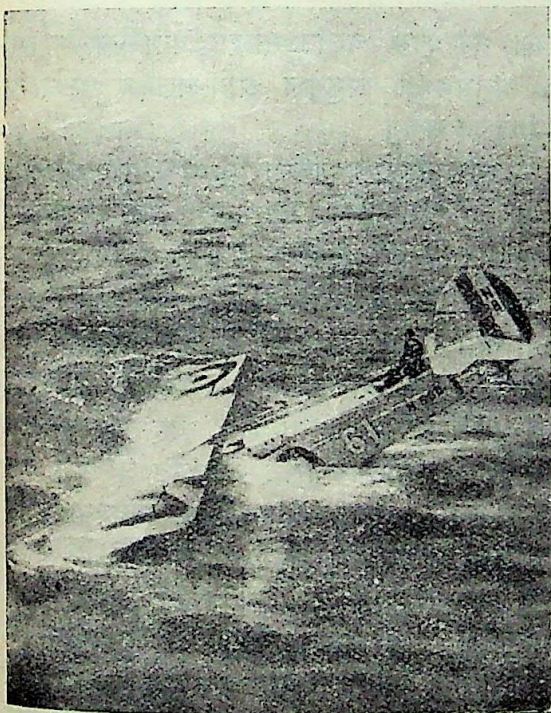
['मुझसे मरा न गया।']

मैं अचम्भे में आ गया। मैंने कहा—प्रिये ऐसा हठ न करो। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। पर वह हब्शी कन्या! ओफ़ वह घृणित चीज़ है।

मेरी पत्नी ने उत्तर दिया—हर एक मर्द को स्त्री की इच्छा पूरी करनी चाहिए, स्त्री चाहे जैसी हो। जो मर्द केवल सुन्दर स्त्री की इच्छा पूरी कर सकता है वह क्या कुरूपा की नहीं। वह मर्द मर्द ही नहीं है।

इसके बाद उसने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता की घोर निन्दा की। उसने कहा—इस सभ्यता का क्या अर्थ है, यदि संसार में अब भी आधे से अधिक मनुष्य जङ्गली और घृणित अवस्था में बने हैं। मैं इस संसार में अब अधिक नहीं रह सकती। इससे तो मौत अच्छी है। मुझे जान पड़ा, मानो उसने अपना और बच्चे का दोनों का अन्त कर लिया।

तेज़ी से हवाई जहाज़ दौड़ाता हुआ मैं उसके पास पहुँचा। देखा वह सचमुच मुर्दा थी। इस बात का उस पर इतना प्रभाव पड़ेगा कि वह प्राण दे देगी, यह मैंने सोचा ही न था। मैं पागल सा होगया। उसके हृदय में संसार के सब जीवों के प्रति इतना अगाध प्यार था, वह इतनी स्नेहमयी देवी थी कि जीवों का ज़रा भी तिरस्कार नहीं सह सकती थी और ख़ास कर मेरे—अपने पति के द्वारा।

उसके बिना मैंने अपना जीवन व्यर्थ समझा और हवाई जहाज़ को तेज़ी से उड़ा कर गहरे जल में गिरा दिया। पर मौत के मुँह में पहुँचने पर मुझे जीवन के मोह ने इतना जकड़ा कि मुझसे मरा न गया। मैं केबिन से निकल कर हवाई जहाज़ की दुम पर जा बैठा। अब मेरे हृदय में यह कामना थी कि कोई जहाज़ इधर से आ निकले और मेरी रक्षा करे।

उस अगाध समुद्र में तीन दिन भूखे-प्यासे बैठे रहने के बाद हिन्दुस्तान को आनेवाले एक जहाज़ ने मेरी रक्षा की। और उस पर बैठ कर मैं हिन्दुस्तान पहुँचा।

अब मुझमें न कोई उत्साह रह गया है, न कोई इच्छा। आँखों की ज्योति सिर्फ़ यह देखने के लिए रुकी हुई है कि मेरा असफल जीवन मुझे कहाँ ले जाता है। आह यदि मैं सच्चा प्रेमी बनता! आह! यदि घृणा मेरे लिए अपरिचित वस्तु होती! मेरी स्नेहमयी देवी! क्या मैं पहली इच्छा पूरी होते समय तक जीवित रहूँगा और क्या तेरे जन्म लेने पर तुझे पहचान सकूँगा। —'युगनेत्र'

भारत और फ़िडरल-शासन

[शास्त्रीय दृष्टि से फ़िडरल-शासन के रूप का निरूपण करके डाक्टर त्रिपाठी ने अपने इस ज्ञातव्य लेख में फ़िडरल-शासन के गुण-दोषों का विस्तार के साथ विचार किया है और यह बताया है कि भारत के लिए कैसे फ़िडरल-शासन-विधान की रचना इस समय सम्भव है।]

यों तो भारत में इस समय अनेक समस्यायें उपस्थित हैं, किन्तु उनमें राज-नैतिक समस्या अनेक कारणों से प्रमुख और जटिल है। और वह इस समय देश के एक ओर से दूसरे ओर तक सभी के सम्मुख उपस्थित है। उसके सामने अन्य प्रश्न फीके-से पड़ गये हैं। लोगों की प्रायः यही धारणा है कि राजनैतिक समस्या को हल कर लेने से अन्य बातें भी सुलझ जायँगी।

अतएव हमारी यह समस्या राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न है। इस विषय पर तो अधिक विवाद की गुञ्जाइश नहीं है कि भारत को स्वराज मिलना चाहिए। भारतीय स्वराज की माँग को ब्रिटेन की सरकार ने भी वाजिब और सर्वथा उचित स्वीकार कर लिया है। किन्तु इस विषय पर बड़ा मतभेद है कि इस स्वराज का क्या स्वरूप होना चाहिए, उसका संगठन किस आकार-प्रकार का होना चाहिए, और उसकी शक्ति और अधिकार का वितरण किन सिद्धान्तों के अनुकूल होना चाहिए। इन्हीं बातों के सिलसिले में यह भी प्रश्न उठता है कि क्या यह सम्भव है कि इसी समय या दो-तीन वर्ष के भीतर जो शासन सङ्गठित हो वह पूर्ण 'परिपक्व स्वराज' हो अथवा इस समय केवल एक काम चलाऊ नक़शा बना लेना चाहिए जो अनुभव के अनुकूल आगे चलकर घटाया या बढ़ाया जा सके।

उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक लेख का कलेवर काफ़ी नहीं है और लेखक का यह आशय भी नहीं है कि उन प्रश्नों में से हर एक की विवेचना यहाँ करे। इस लेख में केवल इसी विषय पर विचार किया गया है कि शासन के सङ्गठन का जो स्वरूप मताधिक्य से तजवीज़ किया जा रहा है वह कैसा है और उसके दोष-गुण क्या हैं। यह तो स्पष्ट है कि मताधिक्य भारतीय शासन को 'फ़ेडरल' रूप देना चाहता है। अतएव यह जान लेना आवश्यक है कि 'फ़ेडरेशन' अथवा सङ्घातिक शासन क्या है, उसके कितने मुख्य भेद हैं, और इतिहास एवं राजनीति की दृष्टि से उनसे क्या हानि अथवा लाभ होने की सम्भावना है। इन बातों को समझ कर यदि हम भारत के 'फ़ेडरेशन' पर विचार करें तो अनेक उलझनों में फँसने से और मुख्य और गौण ध्येयों में भूल करने से बहुत-कुछ बच जायँगे।

राजनीति-विशारदों ने राज्य को दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया है। एक तो साधारण केन्द्रिक राज्य और दूसरा सङ्घात्मक राज्य। केन्द्रिक राज्य वह है जिसमें एक ही मुख्य शासन-यन्त्र के द्वारा सम्पूर्ण

देश का शासन होता है। यह अनेक नाम रूप का हो सकता है। चाहे वह एक राजा ही द्वारा सञ्चालित हो और चाहे उसका सञ्चालन सभा, समिति अथवा कौंसिल-द्वारा हो। किन्तु सङ्घात्मक अथवा संयुक्त राज्य वह है जो कई ऐसे राज्यों के मेल से बना हो जो अपने अन्तरङ्ग मामलों में स्वतन्त्र-से हों। सङ्घात्मक राज्य के स्थापन में कई राज्यों का होना अनिवार्य-सा है। वस्तुतः कई राज्यों की उपस्थिति के बिना सङ्घात्मक राज्य की संस्थापना ही असम्भव है। हाँ यह आवश्यक नहीं कि ये राज्य एक से हों या पूर्णरूप से स्वतन्त्र हों। उनकी स्वतन्त्रता की मात्रा भिन्न-भिन्न हो सकती है।

सङ्घात्मक राज्य के मुख्य भेद चार हैं। पूर्ण संयुक्त, कानफ़ेडरेशन, फ़ेडरेशन और अर्द्धरक्षित अथवा संरक्षित राज्य। पूर्ण संयुक्त सङ्घ वह है जिसमें उसके अन्तर्गत जितने राज्य हैं वे अपना व्यक्तित्व कम से कम बाहरी मामलों के लिए त्याग दें, चाहे उनके निजी या भीतरी क़ानून अथवा उनकी संस्थायें अपना व्यक्तित्व कैसा ही क्यों न रखती हों। इस श्रेणी के अन्तर्गत आस्ट्रिया-हंगरी का गत साम्राज्य एवं नारवे और स्वीडन के राज्य माने जाते हैं, यद्यपि इन दोनों के स्वरूप में बहुत कुछ भेद है।

कानफ़ेडरेशन उस सङ्घात्मक राज्य को कहते हैं जिसके अन्तर्गत ऐसे स्वतन्त्र राज्य हों जिन्होंने अपनी स्वाधीनता के कुछ अंश अथवा अंशों को किसी विशेष ध्येय के साधन करने के लिए कानफ़ेडरेशन को समर्पित कर दिया हो। वस्तुतः कानफ़ेडरेशन राज्य ऐसे स्वतन्त्र राज्यों का समूह है जो किसी कार्य-विशेष के लिए कुछ दृढ़ता के साथ मिल गये हों, किन्तु अपनी आन्तरिक स्वाधीनता, अपना दबदबा और राजनैतिक सङ्गठन अक्षुण्ण रक्खें। कानफ़ेडरेशन को यदि उसके अन्तर्गत का कोई राज्य छोड़कर स्वतन्त्र होना चाहे तो हो सकता है। हाँ, यदि और सब मिलकर उसको बलपूर्वक दबा लें तो बात और है, किन्तु उसके स्वतन्त्र होने के अधिकार को मानना अनिवार्य-सा है। इस श्रेणी के अन्तर्गत प्राचीन यूनान, मध्यकालीन योरप के कुछ सङ्घ, एवं अमरीका का संयुक्त-राज्य (१७८१-१७८९) और जर्मन कानफ़ेडरेशन (१८१५-१८६६) आदि माने जाते हैं। कानफ़ेडरेशन को अपनी आज्ञाओं के पालन कराने की क्षमता उसके अन्तर्गत राज्यों की इच्छाओं पर अवलम्बित है। यदि वे चाहें तो मानें और यदि न चाहें तो न मानें।

फ़ेडरेशन उस सङ्घात्मक राज्य को कहते हैं जिसके अन्तर्गत के राज्य मिलकर एक सर्वोपरि केन्द्रिक संस्था की रचना करें, जो किन्हीं विशेष कार्यों के करने में स्वतन्त्र हो। अथवा जहाँ कई सूबे या अधीन राज्य अपने ऊपर किसी सर्वमान्यशक्ति-द्वारा ऐसे ढंग से संयुक्त कर दिये जायँ जिससे उनकी प्रान्तिक स्वाधीनता अधिकांश में सुरक्षित रहे, किन्तु बाहरी मामलों का अधिकार फ़ेडरेशन के हाथ में रहे। प्राचीन यूनान की एकियन लीग, स्वीज़रलेंड का शासन, और अमरीका (१७८९-१८६३) का संयुक्त-राज्य, कनाडा, जर्मन-साम्राज्य (१८७१), मेक्सिको, अर्जेन्टाइन ब्रेज़िल, वेनेज़ुला आदि राज्य इसी श्रेणी के अन्तर्गत में माने जाते हैं।

अर्द्ध-रक्षित अथवा संरक्षित राज्य के विषय में राजनीतिविशारदों में मतभेद है। कुछ कहते हैं कि बिना पूर्ण स्वतंत्रता के भी राज्य हो सकते हैं और जो परमुखापेक्षी और दूसरे पर अवलम्बित रहते हुए भी राज्य कहे जा सकते हैं। इस विचार-धारा के अनुसार पूर्ण स्वतंत्रता राज्य का अनिवार्य लक्षण नहीं माना जाता। किन्तु अन्य विद्वानों का मत है कि स्वतन्त्रता अविभक्त और अक्षुण्ण हुए बिना राज्य की सत्ता ही नहीं मानी जा सकती। सैद्धान्तिक मतभेद चाहे जो हो, किन्तु ऐसे राज्यों की सत्ता कुछ विद्वान् तो मानते ही हैं। ये लोग गत बल्गेरिया, इजिप्ट, पुरानी दक्षिणी अफ्रीक़न रिपब्लिक आदि को अर्द्धरक्षित श्रेणी में मानते हैं। संरक्षित राज्य वे

हैं जो अपनी कमज़ोरी के कारण किसी प्रबल राज्य की रक्षा के आश्रित हों, अपने महत्त्वपूर्ण बाहरी विषयों को उसके सुपुर्द कर दें। ऐसे राज्य अफ़्रीका, अरब-अन्तरीप, कोरिया आदि में माने जाते हैं। वस्तुतः इन शासनों को हम स्वतन्त्र और स्वाधीन राज्य नहीं कह सकते। हाँ, पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अर्द्धरक्षित अथवा संरक्षित राज्य का विधान रास्ते की एक मंजिल अवश्य माना जा सकता है।

फ़ेडरल-शासन के लाभ अनेक हैं। पहला लाभ तो यह है कि छोटे और निबल राज्य भी मिलकर एक ऐसा सङ्गठन कर सकते हैं जो सबकी रक्षा कर सके, सबकी सेवा कर सके और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अपना प्रभाव डाल सके। दूसरा लाभ यह है कि उसके द्वारा सूबा और राज्यों की आपस की खींचातानी और विभाजक शक्तियों का उचित प्रबन्ध एवं संयोजक शक्तियों का पोषण फ़ेडरल सङ्गठन-द्वारा साध्य हो सकता है। तीसरा गुण यह है कि उस विधान से केन्द्रिक शासन को जटिलता कम हो जाती है और स्थानिक शासन को अपनी उन्नति करने का अधिक अवसर प्राप्त हो सकता है। केन्द्रिक शासन के उच्चतम कर्मचारी स्थानिक समस्याओं को उतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाते जितनी कि स्थानिक जनता और स्थानिक नेता समझ सकते हैं। घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण स्थानिक नेता और कर्मचारी अपने प्रान्त की उन्नति में अधिकाधिक उत्साह का प्रदर्शन करेंगे। उसके द्वारा स्थानिक स्वतन्त्रता की रक्षा अच्छे प्रकार हो सकती है और अपनी उन्नति करने के लिए अधिक संख्या को अवसर प्राप्त होता है। यदि स्थानिक उत्साह और स्वतन्त्रता का उचित पोषण किया जाय तो केन्द्रिक राज्य अधिक उत्तरदायी हो जाता है और जनता में अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के उत्साह और क्षमता की वृद्धि होती है। और शासन-कला का ज्ञान भी बढ़ जाता है। गत अर्द्ध शताब्दी में फ़ेडरेशन के लाभों की ओर नीतिज्ञों का ध्यान बहुत आकर्षित था। बाज़ बाज़ नीति-शास्त्रज्ञों की राय में फ़ेडरल सङ्गठन सब शासन-विधानों में श्रेष्ठतम है। अतएव वे आशा करते हैं कि उसका भविष्य उज्ज्वल है और सम्भवतः धीरे धीरे वह विश्वव्यापी हो जायगा।

उपर्युक्त धारणा एक-पक्षीय और एकाङ्गी है। इधर कई वर्षों के अनुभव से फ़ेडरल-विधान के दोषों एवं गुणों का कुछ अधिक पता चला है। अमरीकन पोलिटिकल सायन्स के कार्य-विवरण में एक प्रसिद्ध लेखक ने फ़ेडरल-विधान की कमज़ोरियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। देश, काल और अवस्था का परिवर्तन होने पर फ़ेडरल-विधान के नष्ट होने की आशङ्का प्रतीत हुई, क्योंकि जब वे रचे गये थे तब निर्माताओं को उसके दोषों का बहुत कम ज्ञान था। उसके दोषों में सबसे बड़ा दोष यह है कि उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय एवं दूसरे राज्यों से व्यवहार स्थिर करने और उसका निर्वाह करने में अधिक कठिनाइयाँ पड़ती हैं। यदि फ़ेडरल-शासन के निर्णय और सन्धियों का उद्देश उससे सम्बद्ध राज्यों अथवा प्रान्तों ने पालन करने से इनकार कर दिया तब विषम समस्या उत्पन्न होने का भय है।

यही नहीं, अन्तरङ्ग विषयों के भी समीचीन सञ्चालन में भी फ़ेडरल-विधान सदा सुविधाजनक नहीं होता। व्यापार, गमनागमन, मज़दूरों की समस्या, उद्योगों का पारस्परिक संयोजन, तथा देशव्यापी उद्योग-धन्धों का, और उनके विषयों का संयोजन जिन पर एक-सूत्रता जाति या देश के लिए आवश्यक है, फ़ेडरल-विधान-द्वारा सुविधा और सुन्दरता-पूर्वक संचालन करना अधिक कठिन है। यूनाइटेड स्टेट्स को इन कठिनाइयों का पूर्णरूप से अनुभव हुआ और हो रहा है। फ़ौजी मामलों की व्यवस्था करने में तो फ़ेडरल-विधान सबसे कमज़ोर साबित हुआ है। इस अंतिम कठिनाई को दूर करने के लिए फ़ेडरल-विधान भी केन्द्रिक शासन की परिपाटी का अवलंबन करने के लिए बाध्य-सा हो गया है।

तीसरा दोष यह है कि फ़ेडरल-विधान में फ़ेडरल शासन और तद्‌गत राज्यों के शासन में खींचातानी होने की सम्भावना है। मान लो कि किसी राज्य ने फ़ेडरल-विधान से अपने को मुक्त करने का निश्चय किया। उस समय उसको ऐसा करने से रोकने के लिए किसी न किसी प्रकार का युद्ध करना होगा, जिससे देश में भयङ्कर सङ्घर्षण होने एवं अन्तर्राष्ट्रीय हानियों के पहुँचने की सम्भावना हो जायगी। अभी हाल में ही आस्ट्रेलिया में इस प्रकार के उपद्रव होने की घोर आशङ्का हो गई थी।

यदि संघान्तर्गत राज्यों ने अपना सम्बन्ध विच्छिन्न भी न किया तो भी उनमें प्रान्तिक भाव की ऐसी प्रधानता हो सकती है जो सार्वजनिक उद्देशों एवं एकता के भावों और सिद्धान्तों के लिए अनिष्टकारक हो सकता है। प्रत्येक राज्य अपने अपने ढङ्ग पर चलेगा, जिससे दैशिक सभ्यता में विषमता और विभिन्नता के बढ़ने की आशङ्का हो सकती है। यदि एक प्रकार के भी क़ानून हों तो भी प्रत्येक राज्य के द्वारा उनको स्वीकृत करने-कराने में अनावश्यक विलम्ब होना और बहुमूल्य समय का नष्ट होना स्पष्ट सा प्रतीत होता है।

यद्यपि इस विषय पर विचारों और मतों में भेद अवश्य है, किन्तु यह नतीजा तो अनिवार्य है कि फ़ेडरल-शासन-विधान में कई चिंत्य दोष हैं। अतएव उसके गुणों एवं दोषों को दृष्टिगोचर रखकर यह विचार करना चाहिए कि भारतवर्ष को फ़ेडरल सङ्गठन की योजना से कहाँ तक हानि और लाभ होने की सम्भावना है? क्या भारत की सामयिक स्थिति में हम फ़ेडरल-शासन की अप्रतिबद्ध योजना कर सकते हैं और यदि फ़ेडरल-शासन की रचना आवश्यक है तो हमको किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए और किन-किन कठिनाइयों के प्रतिकार के साधन एकत्र करना चाहिए?

यह स्पष्ट है कि पूर्ण स्वतन्त्रता या पूर्ण स्वाधीनता के बिना हमारा फ़ेडरल-सङ्गठन रक्षित या प्रतिबद्ध शासन ही होगा। माना कि इस समय पूर्ण स्वतन्त्रता का आदर्श अन्तर्जातीय सङ्गठन के आदर्श से नीचा पड़ता है, किन्तु जब तक अन्य राज्य बाहरी राज्यों से अपने सम्बन्ध को नियन्त्रित करने के लिए स्वतन्त्र हैं तब तक उस अधिकार का न होना हमारा पर-मुखापेक्षी होना है, जिससे हमको अन्तर्राष्ट्रीय संसार में उचित स्थान मिलना दुस्साध्य है। इसी प्रकार यदि सेना और देश की आर्थिक नीति को अपनी इच्छा के अनुकूल सञ्चालन करने की शक्ति हममें नहीं है तो हम न स्वतन्त्र हैं और न साधारण अर्थ में स्वतन्त्र कहे भी जा सकते हैं।

उपर्युक्त आलोचना भारत के लिए सिद्धान्तवाद-सी प्रतीत होती है। क्योंकि न तो इँग्लैंड ही हमको अपने से दूर कर सकता है और न हमारा सङ्गठन ही ऐसा पुष्ट और प्रखर है कि हमारा इँग्लैंड से अपना पीछा छुड़ाना हमारे लिए वाञ्छनीय होगा। रजवाड़ों को अभी तक अँगरेज़ी सहायता की ऐसी आवश्यकता प्रतीत होती है कि वे उच्च स्वर से कह रहे हैं कि वे ब्रिटिश-साम्राज्य से प्रथक् होना अनिष्ट-कारक समझते हैं और ब्रिटिश-सम्राट् की सेवा करना अपना आदर्श और कर्तव्य समझते हैं। अधिकांश मुसलमानों, अछूतों, ईसाइयों को भी यह डर है कि कहीं पूर्ण अधिकार मिलने पर उनके साथ अन्याय न किया जाय। ऐसी परिस्थिति में पूर्ण स्वतन्त्रता को झटपट प्राप्त करने की आशा आदर्शवाद के अनुकूल भले ही जँचे, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यदि असाध्य नहीं तो दुस्साध्य तो अवश्य ही है। फलतः सामयिक फ़ेडरल-योजना हमको उस श्रेणी में नहीं पहुँचा सकती जिसमें अमरीका के यूनाइटेड-स्टेट्स हैं या जो राजनीति-शास्त्र के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता की कही जा सके। अतएव सामयिक स्थिति में बीच का मृदु मार्ग का अवलंबन करना ही एक प्रकार से उचित जान पड़ता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि "सेफ़गार्डों" को ऐसा रूप दिया जाय जो देश की उन्नति के मार्ग में कम-से-कम बाधा डालनेवाले हों

और अँगरेज़ी-राज्य की ओर हमारे सशङ्कित देश-बन्धुओं की आशंकाओं को यथासम्भव दूर करनेवाला हो। इस प्रकार की द्विमुखी योजना करना ही इस समय का मुख्य प्रश्न है। उसकी ओर यदि देश के नेता और ब्रिटिश-नेता अपनी पूरी शक्ति लगा दें तो बहुत सम्भव है कि कोई कामचलाऊ सूरत निकल आये। वितण्डावाद या कोरे सिद्धान्त-वाद का आश्रय लेना न तो इँग्लेंड के लिए हितकर है और न भारत के लिए। सामयिक समस्या को हल करने में ही राजनीतिज्ञता और नेतृत्व है, यही नेता और राजनीतिज्ञ की योग्यता की कसौटी है।

भारतवर्ष ऐतिहासिक कारणों से दो भागों में विभक्त है। एक ब्रिटिश इंडिया, दूसरा रजवाड़ा। ब्रिटिश इंडिया में केन्द्रिक शासन होने के कारण सूबों में बहुत-कुछ एक-सूत्रता है। किन्तु रजवाड़ों में यह बात नहीं है। उनमें शासन की एकता या तो है ही नहीं और यदि है भी तो ब्रिटिश इंडिया से भिन्न है। रजवाड़ों को कई अधिकार ऐसे प्राप्त हैं जो सूबों की सरकारों को नहीं हैं। वे उन अधिकारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। अतएव वे कानफ़ेडरेशन की कल्पना कर रहे हैं। ब्रिटिश-इंडिया के सूबे चाहते हैं कि रजवाड़े भी उनकी नीति के अनुकूल चलें। रजवाड़े अपनी समय-पोषित नीति का सहसा परित्याग करने के लिए अभी तैयार नहीं हैं। वे अनुभव करने के उपरान्त अपने सम्बन्ध को घटाने और बढ़ाने का निर्णय आगे चलकर करना चाहते हैं। परिणाम यह है कि हमारे फ़ेडरेशन के अन्तर्गत राज्यों में आरम्भ में विषमता रहना अनिवार्य हो गया है। यह विषमता यदि बढ़ गई और प्रान्तिक सूबे भी अपने अपने रास्तों पर चल पड़े तो भारत के एकता के भाव को गहरी चोट लगेगी और फ़ेडरल-शासन ऐसा निर्बल और निस्तेज हो जायगा कि न तो वह आन्तरिक समस्याओं और न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में समर्थ हो सकेगा।

उपर्युक्त आशङ्का केवल कल्पना-मात्र नहीं है। भारत के इतिहास के पाठकों से यह छिपा नहीं है कि हमारे देश में अन्तर्राष्ट्री-चेतना की बहुत कमी रही है। यद्यपि चन्द्रगुप्त, अकबर आदि ने कुछ सफलता प्राप्त की, किन्तु वह अगणनीय-सी ही है। गत दो सौ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय विधान और तज्जनित समस्यायें ऐसी जटिल और पेचीदा हो गई हैं कि उनको यथावत् चलाना दुष्कर-सा है। यदि हमारी फ़ेडरल-योजना ऐसी हुई जिससे केन्द्रिक सङ्गठन निर्बल रहा तो हमारा अन्तर्राष्ट्रीय-सम्बन्ध सम्भवतः वैसा ही कमज़ोर रह जायगा जैसा पहले था। हमने अपनी पूर्व की अज्ञानता का जो दण्ड पाया है वह ऐसा है कि समझदार लोग फिर उसमें फँसना कभी स्वीकार नहीं कर सकते। अन्तर्राष्ट्रीय विषयों की कम जानकारी से अमरीका ऐसे उन्नतिशील राज्य को भी धोखे खाने पड़े और योरप में वे अपना नैतिक भाव जमाने में असफल से रहे। हमारे देश को तो कठिनाइयों का और भी बुरा सामना करना पड़ेगा। यदि केन्द्रिक शासन सुदृढ़ रहा तो कठिनाइयाँ कम पड़ेंगी और यदि वह कमज़ोर रहा तो भयङ्कर स्थिति के पैदा हो जाने की सवथा आशङ्का रहेगी। अतएव फ़ेडरल-योजना में इस बात का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि वह इतना बलशाली हो कि अन्तर्राष्ट्रीय कामों में अशक्त न रहे। उसके पास इतनी शक्ति अवश्य होनी चाहिए कि वह जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापन करे उसके प्रति-पालन के लिए देशी रजवाड़ों और प्रान्तिक शासनों को आवश्यकता पड़ने पर बाध्य कर सके।

दूसरा प्रश्न यह है कि हमारे देश के लिए जो फ़ेडरल-योजना की जाय उसमें कुछ बातें ऐसी होनी चाहिए जिनके द्वारा प्रान्तिक शासनों एवं रजवाड़ों की प्रजा का ध्यान सार्वदेशिक शासन की ओर निरन्तर आकर्षित रहे। उसके सार्वदेशिक भावों और भारत की एकता के भावों को बराबर जीवित, जाग्रत और चैतन्य रक्खे। यद्यपि देश में सभ्यता और आदर्शों

की एकता पूर्वकाल में भी कभी कभी पाई जाती थी, तथापि वह प्रायः धार्मिक और सामाजिक ही थी। राजनैतिक एकता का स्वरूप यदि पहले था तो वह धुँधला और अस्पष्ट-सा था। किन्तु गत सौ वर्षों में यहाँ एकता के भाव का जो विकास हुआ है वह अपूर्व और श्रेयस्कर है। किन्तु वह भाव अभी उतना दृढ़ नहीं हुआ है कि अब उसकी चिन्ता छोड़ दी जाय। सच तो यह है कि वह अभी तक कोमल और तरल ही है। उसकी रक्षा और पुष्टि करना हमारा कर्तव्य है। जो योजना उस भाव को उन्नत और सुदृढ़ होने में बाधा डाले वह कदापि ग्राह्य न होनी चाहिए। एकता के भाव की कमी से हमारे देश ने जो दुःख और कष्ट सहे हैं उनकी करुण कथा इतिहास के रक्त-रञ्जित पृष्ठों में भरी पड़ी है। एकता के भाव को क़ायम रखने और पुष्ट करने के लिए यदि हमको भारी से भारी मूल्य देना पड़ जाय तो भी हमें हिच-किचाना न चाहिए। हमारे देश में जात-पाँत 'धार्मिक विभिन्नता के अलावा प्रान्तिक विभिन्नता भी मौजूद है। सच्ची राष्ट्रीयता उन पर विजय प्राप्त करना अपना ध्येय समझती है। यदि प्रान्तिक स्वराज्य ने प्रान्तिक विभिन्नता को सबल और राष्ट्रीयता को निर्बल कर दिया तो देश ने जो कुछ उन्नति एक शताब्दी में की है वह व्यर्थ हो जायगी और हमारी प्रगति आगे की ओर न होकर पीछे की ओर हो जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय-नीति का यथावत् पालन करने के लिए हमको सेना के सञ्चालन एवं व्यापार आदि की नीति निर्धारण की पूरी क्षमता अनिवार्य है। सेना और व्यापार के सम्बन्ध में केन्द्रिक शासन की शक्ति इतनी होनी चाहिए कि वह उनके लिए यथोचित साधन सूबों से प्राप्त कर सके और सूबों को बाध्य कर सके कि वे उसके निश्चय के अनुकूल चलें। इस समय स्वतन्त्रता और स्वराज्य की हवा इतनी बँधी हुई है कि कोई आश्चर्य नहीं कि उसके झोंके में हम अनेक आवश्यक बातों को भूल जायँ और भविष्य का विचार न करके वर्तमान में मस्त होकर प्रमाद-पूर्ण कार्य कर बैठें जिसके लिए पछताना पड़े। यह माना कि स्वाधीनता के उत्तेजक और पुष्टिकारक समीर से ऐसे नवजीवन का सञ्चार होगा जिसकी शक्ति से भविष्य के प्रश्नों को हल करने की शक्ति हममें आप-से-आप उत्पन्न हो जायगी। किन्तु फिर भी विवेक की अवहेलना करने का हमको कोई अधिकार नहीं। ऐतिहासिक अनुभवों को तिला-ञ्जलि देकर, दूरदर्शिता को तिरस्कृत कर, विवेक के प्रकाश-पूत मार्ग को छोड़ कर स्वर्ण-युग की खोज में अन्धकार-ग्रस्त और कंटकाकीर्ण कान्तार में जा फँसें और देश और उसके भविष्य को चिन्ताजनक और आपद्ग्रस्त बना दें।

भारत की राजनीति का वास्तविक आरम्भ तो तब होगा जिस समय हमारे कन्धों पर उत्तर-दायित्व का पूरा बोझ रख दिया जायगा और हमारी जातीय नाव को राजनैतिक और सामाजिक समुद्र की उज्ज्वल तरल-तरङ्गों में होकर किसी लक्ष्य की ओर खेने का अवसर मिलेगा। उस समय यदि हमारी नाव जर्जरित और रन्ध्र-पूर्ण हुई तो हमारी दशा के दयनीय, चिन्त्य और भयावह हो जाने का भय है। यदि हम अपने साधनों का सङ्ग-ठन सोच-समझकर और भविष्य के हिताहित पर विचार करके करें तो अवश्य अच्छा होगा। जातीय भविष्य और सन्तति के हित को विस्मृत करने का अधिकार किसी समय के व्यक्तियों अथवा जनता को नहीं है, क्योंकि सभ्यता और जातीय जीवन का सम्बन्ध भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों से है।

भारत विशाल देश है। इसकी समस्यायें जटिल हैं। ऐसे देश को सुन्दर और शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिए दो हज़ार वर्ष से प्रयत्न किये जा रहे हैं। मौर्य, गुप्त, मुसलमान और मराठे शासकों ने इसका अपने अपने ढङ्ग से सङ्गठन किया, किन्तु किसी का सन्तोषजनक न हुआ और विषम समय के आते ही टूट-फूट गया। इसका कारण इतिहासकार यह

बताते हैं कि उन सबका सङ्गठन इस ढङ्ग से नहीं किया गया कि वह अपनी स्वगत शक्ति से अपनी उन्नति कर सकता और परिवर्तनशील स्थितियों के अनुकूल अपना संशोधन कर सकता। उसने कुछ समय तक अपना काम किया, किन्तु परिस्थिति बदलते ही वह शिथिल हो गया। यदि विद्वान इतिहासकारों को गवेषणा से यही घोषणा निकलती है तो हमको सचेत हो जाना चाहिए और प्रान्तीय, जातीय, अन्तर्जातीय, भीतरी और बाहरी समस्याओं का विचार रखते हुए अपने शासन-यन्त्र का सङ्गठन करना चाहिए, जिससे आगे का मार्ग प्रशस्त और परिष्कृत हो जाय।

यद्यपि इस प्रश्न पर और भी कई पहलुओं से विचार हो सकता है और ऐतिहासिक प्रमाणों-द्वारा विवेचन भी सरलता से किया जा सकता है, किन्तु इस लेख का आशय केवल एक चेतावनीमात्र है। लेख का सारांश यह है कि प्रान्तिक स्वाधीनता अथवा फ़ेडरल आदि योजनायें स्वयं लक्ष्य नहीं, किन्तु किसी लक्ष्य की सिद्धि के साधन हैं। अभी तक कोई शासन-विधान ऐसा नहीं बना जो दोष-रहित हो। फ़्रांस, यूनाइटेड-स्टेट्स, रूस, जर्मनी आदि के शासनयन्त्र एक तो उन उन देशों की स्थिति के अनुकूल बने, फिर भी उनके दोषों का अनुभव शीघ्र ही होने लगा। हमारे देश का शासन-यन्त्र भी हमारी देश को स्थिति के अनुकूल बनना चाहिए और अन्य देशों और समाजों के अनुभवों से पूरा लाभ उठाकर जहाँ तक सम्भव हो सके उसे ज्ञात दोषों से बचाये रखना चाहिए। दूसरी बात यह है कि प्रान्तिक स्वतन्त्रता देते समय प्रान्तों की जनता का केन्द्रिक शासन से ऐसा कोई सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए जिससे उनमें भारतीयता का, एक-देशीयता का, अखिल भारत का भाव क्षीण न होकर परिपुष्ट होता रहे। भीतरी और बाहरी आपत्तियों से देश की रक्षा करने में जहाँ तक हो सके कम से कम बाधायें पड़ सकें। अन्तप्रान्तिक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल करने में कम से कम अड़चनें पड़ सकें। कोई प्रान्त ऐसा न हो सके कि सारे देश के लिए काँटा बन जाय और कोई जन-समुदाय ऐसा न हो जो सारे देश की उन्नति का बाधक बन सके। इस कहने का यह तात्पर्य नहीं कि केन्द्रिक शासन को अमरबेलि के समान बढ़ाकर प्रान्तिक स्वतन्त्रता का नाश कर दिया जाय। लेख के आरम्भ में ही यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि भारत में किसी न किसी ढङ्ग का फ़ेडरल विधान ही उचित होगा, किन्तु वह बिलकुल अमरीका, रूस या जर्मनी के ढङ्ग का होना चाहिए और उसमें फ़ेडरेशन और कुछ कान फ़ेडरेशन के गुणों का देश की स्थिति के अनुकूल सम्मिश्रण करना होगा। ऐसे विधान की रचना की आवश्यकता है जिससे कोई प्रान्त भारत की भुजाओं के पाश को तोड़ न सके और न आपसी सङ्ग्राम से देश की पवित्र भूमि को रक्त-रञ्जित कर सके।

देश को ऐसे शासन-विधान की आवश्यकता है जो प्रान्तिक सङ्कीर्णता, धार्मिक उद्दण्डता, सामाजिक विशृङ्खलता और आर्थिक विषमता को यदि नाश न कर सके तो कम से कम मर्यादित करने में ही समर्थ हो। यदि संयोगवश कोई आपत्ति देश पर आवे तो उसका निवारण करने योग्य केन्द्रिक शासन होना चाहिए, जिसके द्वारा अन्तर्प्रान्तिक व्यापार, यात्रा, सुधार और व्यवसाय, विचार-विनिमय, सामाजिक संसर्ग में नई नई सुविधायें प्राप्त हो सकें। देश का शासन ऐसा होना चाहिए जिससे आशङ्का, अज्ञान और ग़रीबी उसके कोने कोने से दूर हो सके। पिछड़े प्रान्त सदा पिछड़े न रहकर शीघ्रतापूर्वक उठ सकें और देश भर के समष्टि बल को लाभ पहुँचा सकें, जिससे एक-देशीयता का भाव सुपुष्ट होकर मानव-समाज की सेवा कर सके और अपनी मान-मर्यादा की रक्षा कर सके।

—रामप्रसाद त्रिपाठी

शायद हम तुम फिर मिलें

[१]
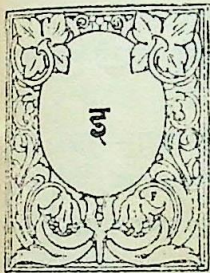
इलाहाबाद में बदली होने पर चन्द्रभाल को अपने विद्यार्थी-जीवन की एक घटना का एकाएक स्मरण हो आया। अभी तक वे उसे भूले हुए थे। परन्तु जब उन्होंने पैर-गाड़ी पर चढ़े हुए एक युवक को किसानों के एक समूह से टकराकर गिरते देखा तब उन्हें जान पड़ा मानो वह घटना हाल ही में घटी थी। उस घटना की ज़रा ज़रा सी बात उन्हें याद हो आई। उनके कानों में गूँज उठा—शायद हम तुम फिर मिलें। इसी एक वाक्य को वे राम-नाम की भाँति मन ही मन जपने लगे। उन्होंने हिसाब लगाना शुरू किया कि उस घटना को कितने दिन हुए। उँगुलियों पर घंटों गिनने के बाद उन्होंने मन ही मन कहा—पन्द्रह वर्ष! ओह! पूरे पन्द्रह वर्ष बीत गये। मेरे जीवन का वह दिन कितना सुन्दर था, मैं उस दिन कितना सुखी था, जब उसने कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें। मुझे याद है। एक एक शब्द याद है। उसने बिलकुल यही वाक्य कहा था। आह! वह कौन थी? क्या उससे फिर भेंट हो सकती है?

यही सोचते हुए चन्द्रभाल घर पहुँचे। उन्हें चिन्तित और उदास देखकर पत्नी ने पूछा—क्या मामला है? चन्द्रभाल ने मानो इस बात को सुना ही न हो। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। पत्नी ने क़रीब जाकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर और उन्हें हिला-झुला कर फिर पूछा—क्या सोच रहे हो? कुछ बताओगे?

चन्द्रभाल का जैसे नशा उतरा। बोले—कुछ नहीं। एक पुरानी बहुत दिनों की बात याद आगई थी। उसी को सोचने लगा था। तुम जानती हो, मैं यहाँ पढ़ता था। मेरे जीवन का एक अच्छा समय यहाँ बीता है। उस समय की बहुत-सी स्मृतियाँ मेरे मस्तिष्क में दबी पड़ी थीं। आज यहाँ बहुत दिनों के बाद आने से एकाएक याद हो आई। उसी पर विचार कर रहा था।

"क्या विचार कर रहे हो? मुझे भी बताओगे?"

"तुम्हारे जानने की कोई बात नहीं है। मेरे विद्यार्थी-जीवन की बातों से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम सुनकर क्या करोगी?"

"नहीं मैं सब कुछ जानना चाहती हूँ। तुम्हारे सारे जीवन की एक-एक बात जानना चाहती हूँ। अभी तक तो तुमने मुझसे कोई बात नहीं छिपाई।"

"ओह! छिपाने का सवाल नहीं है। अभी तो मैं ख़ुद नहीं समझ सका कि वह घटना क्या थी। ज़रा सोच लेने दो। इस वक़्त मैं एकान्त चाहता हूँ। इसके बाद तुमसे सब बताऊँगा। एक एक बात बताऊँगा।"

"अच्छा तो पहले भोजन कर लो।"

बिना कुछ कहे चन्द्रभाल हाथ-मुँह धोकर चौके में जा बैठे। वे खाते जाते थे और सोचते जाते थे—

"वह कितनी भोली थी! कितनी चञ्चल और कितनी सुन्दर! किस तेज़ी के साथ अपने स्कूल

की गाड़ी से उतर कर वह मेरे पास आई थी। उसकी सहेलियों ने उसे रोका था। दाई ने उसका हाथ पकड़ा था। पर उसने कहा था—नहीं, चाहे जो हो, मैं इस आदमी की सहायता करूँगी। गाड़ी रोको।

"मैं उस समय ज़मीन पर पड़ा हुआ था। मेरी दोनों आँखों में उस देहाती की पीठ पर बँधी हुई लकड़ियाँ घुस गई थीं, जिससे मेरी आँखें चोट लगने से बन्द हो गई थीं। मेरी पैर-गाड़ी कहीं पड़ी थी, किताबें कहीं पड़ी थीं। उसने किताबों को इकट्ठा किया। पैर-गाड़ी को एक तार के खम्भे के सहारे खड़ा किया और मुझसे पूछा—क्या आँखों में ज़्यादा चोट आ गई है?

"कानों में सहानुभूति से भरे हुए ये मधुर शब्द पड़ते ही मैंने भरसक चेष्टा करके अपनी आँखों को खोला था। सिर्फ़ उसको देखने के लिए खोला था। मैं जानना चाहता था कि यह भोली आवाज़ किसकी है जो मेरी सहायता करना चाहती है।

"यदि बीच में वह आ न गई होती तो मैं उस देहाती को बिना पीटे न छोड़ता। बेवक़ूफ़ अन्धा होकर चल रहा था। न जाने किस गली से आकर मेरी बाइसिकिल के अगले पहिये से उलझ गया था। आँखें बन्द होने पर भी मैं उसका फटा हुआ कुर्ता पकड़े हुए था। उसे कुछ दक्षिणा देकर विदा करना चाहता था। पर मुझे याद है। ख़ूब याद है उसने कहा था—जाने दो। इसे मारने से क्या होगा? जो होना था वह तो हो ही गया।

"मैं मन्त्रमुग्ध की तरह उसकी आज्ञा का क्यों पालन करता चला जाता था, यह बात आज तक मेरी समझ में नहीं आई। न मालूम उसमें कौन-सा आकर्षण था?

"मुझे उसकी शक्ल याद है। हज़ारों की भीड़ में मैं उसे पहचान सकूँगा, ऐसा मेरा हृदय कहता है। वह एक सफ़ेद रंग की, हरे किनारे की साड़ी पहने थी। किनारी का ठीक याद नहीं, पर साड़ी सफ़ेद थी, बिलकुल सफ़ेद। कहीं एक धब्बा न था। उसकी मैंने हँसी देखी थी। बिलकुल चमेली के फूलों-सी उसकी हँसी थी। मुझे उस समय की बातें भी नहीं भूली हैं। कदाचित् उसने कहा था—मैं आपकी और क्या सहायता कर सकती हूँ। और मैंने उत्तर दिया था कुछ नहीं! मुझे बिलकुल चोट नहीं आई। आँखों में मामूली खोंचा लग गया है। पर वह घर पहुँचते-पहुँचते अच्छा हो जायगा।"

खा-पी चुकने पर भी जब चन्द्रभाल चौके में बैठे रह गये तब पत्नी ने कहा—इस तरह तो तुम कभी नहीं करते थे। जान पड़ता है, तुम्हें किसी डाक्टर के पास ले चलना होगा।

कुछ शर्माते हुए चन्द्रभाल ने कहा—अभी नये नये यहाँ आये हैं। सब चीज़ें अव्यवस्थित पड़ी हैं। कुछ काम है नहीं। इसी से ज़रा आलस्य आ गया है। दो-चार दिन में सब कार्य्य नियम से होने लगेंगे।

पत्नी ने फिर पूछा—कुछ ध्यान में आया? क्या सोच रहे थे?

चन्द्रभाल ने कहा—स्मृतिकारों ने यह बहुत ठीक लिखा है कि स्त्रियों में सत्र नहीं होता। जल्दबाज़ स्त्रियाँ विवाहित पुरुषों का जीवन अशान्त बना देती हैं।

पत्नी झुँझलाकर अपनी एक सहेली के यहाँ चली गई। यहाँ उसका मायका था। गपशप करने के लिए उसे मनुष्यों की कमी न थी।

चन्द्रभाल ने कुछ आज़ादी की साँस ली। वे बिस्तर पर जा लेटे। लेटे लेटे फिर उसी घटना को सोचने लगे। वह बालिका कौन थी। मेरी सहायता करने को गाड़ी से क्यों उतरी? स्त्रियों का अपरिचित पुरुषों की सहायता करने दौड़ना ज़रा अजीब-सा मालूम होता है। पर यदि कोई स्त्री ऐसा करे तो इसमें ऐब क्या है? पर वह स्त्री नहीं थी। राम राम मैं क्या कह गया। वह बालिका थी—सरला, सुकुमारी, भोली-भाली। दया से उसका हृदय भरा था। मेरी सहायता करने के लिए उसका दौड़ना स्वाभाविक ही था।

पर उसने यह क्यों कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें ? या मुमकिन है कुछ और कहा हो और मुझे स्मरण न आता हो।

चन्द्रभाल गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गये। कुछ देर के बाद उन्होंने करवट बदली। फिर वे उठ कर बैठ गये। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। लाख यत्न करने पर भी वे स्मृति के इस बन्धन से न छूट सके। उन्हें जान पड़ा जैसे कानों में कोई कह रहा हो—आप कहाँ रहते हैं ? पलँग पर बैठे ही बैठे उन्होंने उत्तर दिया—फ़तेहपुर। "शायद हम-तुम फिर मिलें। अच्छा अब जाती हूँ नमस्कार।"

चन्द्रभाल इसी प्रकार बड़बड़ा ही रहे थे कि पत्नी ने आकर कहा—अभी तक तुम नहीं सोये। सपना देख रहे हो क्या ?

चन्द्रभाल चुप्पी साध गये।

[२]

सवेरा होते ही चन्द्रभाल ने बिस्तर छोड़ दिया। रात उन्हें नींद कब आई इसका उन्हें पता नहीं था। पर इस समय उनका चित्त कुछ स्वस्थ था। उन्हें अपने आप पर हँसी भी आई। वे सोचने लगे—कोई सुनेगा भी तो क्या कहेगा ? पन्द्रह वर्ष की बात के पीछे आज हैरान हो रहा हूँ। रात में उन्होंने सोचा था कि सवेरे इस घटना का ज़िक्र पत्नी से करूँगा। पर सवेरा होने पर उन्होंने तय किया कि नहीं, यह ठीक न होगा। इससे मेरे वैवाहिक जीवन में विषमता उत्पन्न हो सकती है। इससे मेरी पत्नी का चित्त उदास हो सकता है। वह यह सोच कर दुखी हो सकती है कि मैं अन्य स्त्रियों के प्रति भी आकर्षित हूँ। मैं बुरा हूँ।

उन्होंने उस घटना को भूल जाने की चेष्टा की। वे दृढ़ धारणा के युवक थे। अपने निश्चय से कभी टलते न थे। पत्नी से उन्होंने ख़ूब बातें कीं। इलाहाबाद में वे कहाँ रहते थे, किस प्रकार बाइसिकल पर सैर किया करते थे, किस प्रकार वे ससुराल में आकर रहना चाहते थे, पर यह सोच कर कि शायद पढ़ाई में विघ्न पड़े किस प्रकार उनके पिता ने उन्हें ससुराल में न रहने की सख़्त मनाही कर रक्खी थी ? उदारहृदया पत्नी उनकी एक दिन पूर्व की झिड़की को भूल गई और जैसे चकोरी चाँद की ओर देखती है वैसे ही उनकी ओर देखकर उनकी इस वचन-सुधा का पान करने लगी।

खा-पीकर निश्चित समय पर चन्द्रभाल दफ़्तर के लिए रवाना हुए। पर जैसे ही उन्होंने घर से बाहर क़दम रक्खा, वैसे ही पन्द्रह वर्ष पूर्व की उस घटना की उस स्मृति ने उन पर फिर आक्रमण किया। उन्होंने दफ़्तर पर ध्यान लगाया और अपनी चाल तेज़ की। संयम के सारे तीर चला डाले। पर अन्त में हार गये। उन्होंने अपने आप को एक अज्ञात स्थान में खड़ा पाया। असल में दफ़्तर न जाकर वे उस स्थान को ढूँढ़ रहे थे जहाँ पन्द्रह वर्ष पूर्व वे उस देहाती से टकरा गये थे और जहाँ एक अज्ञात बालिका उनकी सहायता करने को अपने स्कूल की गाड़ी से उतरी थी। उन्होंने सोचा, शायद वह उस रास्ते से फिर आती-जाती हो। कौन जाने उससे भेंट हो जाय ?

चन्द्रभाल उस स्थान की ओर बढ़ते भी जाते थे और मन ही मन अपने ऊपर हँसते भी जाते थे। रह रहकर वे स्वयं को समझाते भी जाते थे—चन्द्रभाल ! तुम कितने मूर्ख हो ? वह लड़की क्या तुम्हारा नाम लिये बैठी होगी ? और फिर बैठी ही हो तो क्या तुम्हारा उससे ब्याह थोड़े ही हो सकता है ? तुम विवाहित हो। अपने दफ़्तर जाओ। अपना काम देखो। तुम्हें नया प्रेम करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार सोचते हुए वे दफ़्तर की ओर मुड़ने की चेष्टा करते, उसी समय उनके हृदय में दूसरे प्रकार के ख़याल ज़ोर पकड़ते। वे एक स्थान पर खड़े होकर फिर अपने आपको समझाते—इसमें हर्ज ही क्या है ? एक बात को जान लेने में—हर्ज ही क्या है ? जानकारी प्राप्त करना मनुष्य का

स्वभाव ही है। लोग अख़बारों में पचासों क़िस्म की ख़बरें पढ़ते रहते हैं—सिर्फ़ कुछ न कुछ जानने के लिए—और ऐसी बातें जानने के लिए जिनसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यहाँ तो मैं एक ऐसी लड़की को जानना चाहता हूँ जिसने मेरी सहायता की थी, जिसने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की थी, जिसने मुझसे फिर मिलने की आशा की थी। क्या ब्याह ही करने के लिए मनुष्य किसी स्त्री की तलाश करे तो करे? जिसने अपने साथ भलाई की है उसकी तलाश करके उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना क्या मनुष्य का धर्म नहीं है? मुझे इस कार्य्य को वर्षों पूर्व करना था। ओफ़! इतना लम्बा समय मैंने क्यों बीतने दिया? उसने भी अपने दिल में क्या सोचा होगा कि मैं कैसा असभ्य हूँ?

बीती बातों की स्मृति से मनुष्य को एक प्रकार का सुख मिलता है। परन्तु चन्द्रभाल से सुख बहुत दूर था। बीती बात की कल्पना करके वे अधीर हो रहे थे। जितना ही सोचते थे, उतनी ही उनकी बेचैनी बढ़ती थी।

उस दिन वे दफ़्तर न गये। पर उन्होंने वह स्थान पा लिया। सड़क के उस भाग पर खड़े होकर उन्होंने चारों तरफ़ देखा। कुछ परिचित चीज़ें उन्हें दीख पड़ीं। आस-पास की इमारतें ज्यों की त्यों थीं। कुछ नये मकान ज़रूर बन गये थे, पर उनसे उस स्थान की रूप-रेखा में कोई विशेष अन्तर न पड़ता था। उन्होंने तार के उस खम्भे को देखा जिसके सहारे उस बालिका ने उनकी पैर-गाड़ी खड़ी की थी। उन्हें एक प्रकार का रोमाञ्च हो आया। उन्होंने अपने मन में कहा—निर्जीव खम्भे! तुम्हें इस बात से क्या प्रयोजन कि यहाँ से कौन कब निकला? यदि तुम बोल सकते, अपने पिछले दिनों की कथा कह सकते तो आज मुझे उस बाला का कुछ पता मालूम हो जाता। उन्होंने उस खम्भे को स्पर्श किया। उस समय उनकी विचित्र अवस्था थी।

चार बजे जब स्कूलों में छुट्टियाँ हुईं और लड़के अपने अपने घरों को जाने लगे तब उनकी व्याकुलता और भी बढ़ गई। उनके सामने उनके विद्यार्थी-जीवन का वह दिन और भी स्पष्ट हो उठा। उन्हें जान पड़ा मानो लड़कियों के स्कूल की गाड़ी लौट रही हो।

उन्होंने उस दिशा की ओर देखा जिधर को पन्द्रह वर्ष पूर्व वह गाड़ी गई थी। सचमुच एक गाड़ी उधर से आ रही थी। पहरे पर खड़ा सिपाही जैसे अपने अफ़सर को आने का समय जान कर मुस्तैद हो जाता है, बिलकुल उसी तरह वे मुस्तैद होकर खड़े हो गये। उनका हृदय धक धक करने लगा। वे सोचने लगे—यदि वह इस गाड़ी में होगी तो मुझे देखकर यहाँ ज़रूर उतर पड़ेगी। शायद कहेगी—आपसे बहुत दिनों में भेंट हुई। तब मैं क्या जवाब दूँगा? वे एक बढ़िया सा उत्तर सोचने लगे। तब तक गाड़ी वहाँ आकर खड़ी हो गई। एक लड़की उतरी। चन्द्रभाल ने समझा, शायद वही हो। पर उस लड़की ने उनकी ओर देखा भी नहीं। वह दौड़ कर पास के घर में चली गई।

चन्द्रभाल से अब न रहा गया। उन्होंने आगे बढ़कर गाड़ीवान से पूछा—क्यों जी तुम यह गाड़ी कितने दिनों से हाँकते हो?

"कोई ६ महीने से।"

"उसके पहले कौन हाँकता था।"

"मेरा बाप! पर अब वह नहीं रहा।"

"तुम्हारे बाप ने कितने दिन गाड़ी हाँकी थी।"

"कोई बीस वर्ष।"

चन्द्रभाल ने एक ठण्डी साँस ली और कहा—ओह! कितना अच्छा आदमी संसार से उठ गया!

गाड़ीवान की आँखों में आँसू आ गये। गाड़ी के भीतर बैठी हुई दाई चन्द्रभाल की बातें सुनकर बाहर निकल आई और बोली—बाबू तुम उन्हें जानते हो। वे सचमुच बहुत अच्छे थे। शहर का ऐसा कोई रईस नहीं जो उन्हें न जानता रहा हो।

वे सबके यहाँ जाते थे। सबको सलाम कर आते थे। उनका यह लड़का उनके अनुरूप नहीं है। शर्माता है। फिर उसने गाड़ीवान को डाँट कर कहा—बातों का ठीक से जवाब क्यों नहीं देता? यह कहकर मानो उसने यह ज़ाहिर किया कि वह उसकी माँ है। इसके बाद उसने कहना शुरू किया—इसी गाड़ी की नौकरी में उनकी जिन्दगी कटी है। ससुराल आने पर मैं भी इसी गाड़ी की छिपकली हो गई। दूसरी जगह अच्छा हो नहीं लगता।

"ऐसे आदमियों से बड़े सौभाग्य से भेंट होती है।" कहकर चन्द्रभाल उस तार के खम्भे को फिर देखने लगे। अब गाड़ी चल रही थी और सड़क पर चन्द्रभाल से बातें करने के लिए दाई नीचे उतर पड़ी थी।

चन्द्रभाल ने कहा—तब तो तुम्हें इस स्कूल की सब लड़कियों का पता होगा।

"हाँ! सब मेरी आँखों में खिंची हैं। देखते ही पहचान जाती हैं।"

"अब से पन्द्रह वर्ष की लड़कियों को भी तुम पहचान सकती हो।"

"हाँ! क्यों नहीं?"

"तुम्हें उन दिनों की वह घटना याद है जब मैं यहाँ पैरगाड़ी से गिर पड़ा था और एक लड़की मुझे बचाने उतरी थी।"

"नहीं, मैं किसी लड़की को रास्ते में गाड़ी से उतरने नहीं देती।"

"पर एक बार ऐसा हुआ है, सोचो।"

"नहीं ऐसा कभी नहीं हुआ।"

"तुम्हें याद न होगा। दाई! मुझे बातें बहुत याद रहती हैं। मेरी बात मानो।"

"शायद उतरी हो।"

"तुम उस लड़की का पता बता सकती हो।"

"नाम बताओ।"

"नाम मुझे नहीं मालूम।"

"तब मैं कुछ नहीं जानती! अच्छा जाती हूँ। अरे! गाड़ी बहुत दूर चली गई।

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"भल्ला दाई।"

चन्द्रभाल मानो उस खम्भे से कहने लगे—इससे अधिक पता तो स्कूलवाले भी न बता सकेंगे। बिना नाम जाने पता लगाना मुश्किल है। निराश होकर वे घर लौट गये।

उस दिन रात को जब वे बिस्तर पर लेटे उन्हें एक उपाय सूझा। वे तत्काल उठकर बैठ गये और स्त्री-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के लिए उन्होंने निम्नलिखित विज्ञापन तैयार किया—

"मिलकर धन्यवाद देना चाहता हूँ उन श्रीमतीजी को जिन्होंने अब से पन्द्रह वर्ष पूर्व त्रिवेणी को जानेवाली सड़क पर बाईसिकल पर से मुझे गिरा देखकर मेरी सहायता करने के लिए महिला-विद्यालय की गाड़ी रुकवाई थी। उस समय उनके प्रति समुचित कृतज्ञता न प्रकट करने का मुझे आज तक दुःख है। अपना पता लिखकर मेरी चिन्ता दूर करने का कष्ट करें।"

इसके अतिरिक्त विज्ञापन में और कुछ नहीं था। स्त्री से और दोस्तों से इस बात को गुप्त रखने के लिए उन्होंने विज्ञापन के साथ अपना नाम और पता नहीं लिखा था।

दूसरे महीने में उन्होंने अपने विज्ञापन के उत्तर में ये पंक्तियाँ उस पत्रिका में पढ़ीं।

"परसों! उसी स्थान पर!! उसी समय!!! जरूर।"

[३]

मिस्टर चन्द्रभाल आज साढ़े तीन बजे ही दफ़र से निकल खड़े हुए। उन्हें एक अत्यन्त जरूरी काम है, यह कहकर वे अपने साथियों से बिदा हुए। आज उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। आज वे स्मृति के बन्धन से मुक्त होने जा रहे थे। उनके कल्पना के संसार में जो स्त्री निरन्तर विचरण करती

रहती थी उसे आज वे प्रथम बार देखने जा रहे थे। जीवन में इतने प्रसन्न शायद वे पहले कभी नहीं हुए थे।

सड़क के उस भाग में जब वे पहुँचे तब वहाँ सन्नाटा था। उसी खंभे में पीठ का सहारा देकर वे खड़े हो गये। वह स्थान उन्हें अपने घर-सा प्रतीत हुआ। खड़े खड़े वे सोचने लगे—पर इससे लाभ क्या होगा? मैंने भारी भूल की है। मेरा उसका ब्याह नहीं हो सकता। मेरी स्त्री मेरा उसका साथ पसन्द नहीं कर सकती। यदि उसका ब्याह हो गया हो और ज़रूर हो गया होगा, क्योंकि हिन्दुस्तान में कोई स्त्री अविवाहित नहीं देखी गई, तो उसका पति भी इन बातों को न पसन्द करेगा। आह! मेरा इतना पतन क्यों हो गया है? मैं ऐसी बातें क्यों सोचता हूँ? किसी ग़ैर की स्त्री को एकान्त में बुलाकर उससे बातें करने का मुझे क्या हक़ है?

इस प्रकार सोचते-सोचते वे तिरस्कार के साथ अपने आप से कहने लगे—चन्द्रभाल तुम्हें कुछ शर्म है। तुम्हारी यह उम्र स्त्रियों की तलाश करने की है? तुम्हें क्या हो गया है? अपने घर वापस लौटो और इस दिशा की ओर पैर रखने का नाम न लो।

वे बलपूर्वक अपने आपको वहाँ से घर की ओर ले जाने की चेष्टा करने लगे। कुछ दूर वे गये भी, पर तुरन्त ही यह सोचकर फिर लौटे कि यदि वह स्त्री यहाँ आयेगी और उनको न पायेगी तो अपने मन में क्या कहेगी। यह तो और भी मूर्खता होगी। जिसने अपने साथ ऐसा उपकार किया है उसको इस प्रकार छकाना क्या उचित है?

वे आकर फिर उसी खम्भे के सहारे खड़े हो गये। अब वे कुछ और ही बात सोचने लगे। उन्हें जान पड़ा कि उनके जैसा सहृदय और उदार मनुष्य संसार में नहीं है। जो कुछ वे कर रहे हैं, बड़े आदमियों का वही काम है। वे यह क्यों सोचते हैं कि वे किसी बुरे भाव से प्रेरित होकर उस स्त्री की तलाश कर रहे हैं। उनका उद्देश है सिर्फ़ उसे धन्यवाद देना, एक बार उससे मिल कर उसके प्रति अपना कृतज्ञ भाव प्रकट कर देना। यह करने में कोई दोष नहीं है। कोई ऐब होता तो वह उत्तर ही क्यों देती?

चन्द्रभाल फिर गम्भीर चिन्तन में ग़ोते लगाने लगे—सम्भव है, वह भी मेरे विषय में कुछ जानना चाहती हो। सम्भव है, उसके हृदय में भी इतनी ही व्याकुलता हो। इस मिलन से मेरा ही नहीं, दो व्यक्तियों का उद्धार होगा। इसके बाद हमें स्मृति इतना परेशान न कर सकेगी। और यदि मैं बिना जाने यहाँ से वापस चला गया तो कौन जाने ऐसा अवसर हाथ आये न आये और फिर कौन जाने स्मृति का चाबुक और भी ज़ोर से न लगने लगे। पन्द्रह वर्ष के बाद जब इस बात के जानने की इतनी इच्छा हुई है तब ज़रूर इसका कोई अच्छा ही परिणाम होगा।

उन्होंने जेब-घड़ी निकाल कर देखा। साढ़े चार हो गया था। यही तो समय था। वे सोचने लगे—वह आई क्यों नहीं? अब उसे आना चाहिए। शायद वह न आये। शायद वह सोचे कि ऐसे अपरिचित मनुष्य से मिलकर क्या होगा? परन्तु उसने यह क्यों कहा था—शायद हम तुम फिर मिलें। उसके यह कहने का क्या तात्पर्य्य हो सकता है। बस मैं यही बात जानना चाहता हूँ और कुछ नहीं।

एकाएक उन्हें पहियों की गड़गड़ाहट मालूम हुई। वे सजग होकर खड़े हो गये। एक इक्का सामने से निकल गया। फिर वही सन्नाटा। थोड़ी देर बाद दूसरा इक्का निकला। वह भी चला गया। ज़रा ज़रा सी आहट पर वे चौंक उठने लगे। अन्त में जब ६ बज गये तब वे निराश होगये। उन्हें जान पड़ा, मानो किसी ने उनसे मज़ाक करने के लिए वैसा उत्तर अख़बार में छपा दिया है। यह उत्तर छपाने वाला कौन है, यह जानने के लिए वे अख़बार के

दफ़्र में जाने का इरादा करने लगे। पर उन्हें फिर ख़याल आया, शायद वह आती न हो। उन्होंने एक घंटा और इन्तज़ार करने का निश्चय किया।

इस बार उन्हें अधिक इन्तज़ार न करना पड़ा। उन्होंने देखा—सामने से एक टाँगा आ रहा है, और ज्यों ज्यों आगे बढ़ता है त्यों त्यों उसकी चाल मन्द होती जाती है। वे बोल उठे—आ रही है। इस बार ज़रूर वही है।

उनका अनुमान ठीक था। टाँगा वहाँ आकर खड़ा होगया और उसमें से एक स्त्री उतरी। अरे! यह तो उन्हीं की स्त्री है। शायद उनके घर न पहुँचने के कारण उन्हें तलाश करने आई है। वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो रहे। अब वह दूसरी स्त्री भी आजाय तो क्या होगा? वे आश्चर्यचकित और अपराधी-से जहाँ के तहाँ खड़े रहे। पत्नी से कुछ बोलने का उन्हें साहस न हुआ।

इधर पत्नी स्थान की निर्जनता देखकर पहले तो कुछ डरी-सी थी। पर पति को सामने पाकर उसका भय जाता रहा। और अवसर होता तो इस प्रकार निर्जन में बेवक़ूफ़ सा उन्हें खड़ा देखकर वह बेहद नाराज़ होती, पर यहाँ वह ख़ुश ही हुई। उसने आगे बढ़कर प्रसन्नमुख से उनसे पूछा—यहाँ क्या कर रहे हो?

चन्द्रभाल को भी कुछ हिम्मत आई। उन्होंने पूछा—और तुम यहाँ क्यों आई हो?

पत्नी ने उत्तर दिया—अपने एक बचपन के साथी से मिलने। पाँच बजे तक तुम्हारा इन्तज़ार किया। जब तुम घर न पहुँचे तब अकेले ही आना पड़ा। वादा कर चुकी थी। आना ज़रूरी था।

पत्नी ने अख़बार की दो कतरनें चन्द्रभाल के हवाले कर दीं।

चन्द्रभाल जैसे सोते से जाग उठे। बोले—अरे मेरे सपनों की रानी तुम हो। मुझसे घर ही में क्यों न बता दिया था।

"तुमने कभी पूछा भी तो नहीं।"

अच्छा सबसे पहले यह बताओ—तुमने यह क्यों कहा था कि शायद हम तुम फिर मिलें।

पत्नी ने कहा तुमने मेरे पूछने पर यह बताया था कि तुम फ़तेहपुर में रहते हो।

"हाँ, शायद कहा था।"

"बस इसी लिए मैंने कहा था। मैंने सोचा था, जब तुम्हारी सेवा में फ़तेहपुर पहुँचूँगी तब अपने बचपन के उस साथी से भी शायद मिल सकूँगी।"

टाँगेवाला पास की दूकान पर बीड़ी सुलगाने चला गया था। आसमान में तारे निकल आये थे। पेड़ की अँधेरी छाया के नीचे चन्द्रभाल ने पत्नी को प्रेम से अपनी ओर खींच कर कहा—मेरे कल्पना-जगत् की रानी, मेरी स्मृति की परी! तुझे मैंने आज पाया है।

पत्नी ने अपने आपको चन्द्रभाल की बलिष्ठ बाँहों के हवाले करते हुए उसी भाव से कहा—मेरे प्रत्यक्ष जीवन के सर्वस्व मैंने भी तुम्हें आज पहचाना है।

थोड़ी देर के बाद पहियों की फिर गड़गड़ाहट हुई और वह स्थान वैसा ही निर्जन हो गया। चन्द्रभाल को अब उसकी बिलकुल चिन्ता न थी। वे अपने घर निश्चिन्त वापस जा रहे थे।

—श्रीनाथसिंह

विरहिणी उर्मिला*

हरी भूमि के पात पात में मैंने हृद्गति हेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

खींच रही थी सृष्टि दृष्टि यह स्वर्णरश्मियाँ लेकर,
पाल रही ब्रह्माण्ड प्रकृति थी, सदय हृदय में सेकर।
तृण तृण को नभ सींच रहा था, बूँद बूँद रस देकर,
बढ़ा रहा था सुख की नौका समय-समीरण खेकर।

बजा रहे थे द्विज दल-बल से शुभ भावों की भेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

वह जीवन-मध्याह्न सखी, अब श्रान्ति-क्लान्ति जो लाया,
खेद और प्रस्वेद पूर्ण यह तीव्र ताप है छाया।
पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया?
रहे न हममें राम हमारे, मिली न हमको माया!

यह विषाद! वह हर्ष कहाँ अब, देता था जो फेरी?
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

वह कोयल, जो कूक रही थी, आज हूक भरती है,
पूर्व और पश्चिम की लाली रोष-दृष्टि करती है।
लेता है निःश्वास समीरण, सुरभि धूल चरती है,
उबल सूखती है जल-धारा, यह धरती मरती है।

पत्र-पुष्प सब बिखर रहे हैं, कुशल न मेरी तेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

आगे जीवन की सन्ध्या है, देखें क्या हो आली!
तू कहती है 'चन्द्रोदय ही' काली में उजियाली।
सिर-आँखों पर क्यों न कुमुदिनी लेगी वह पद-लाली,
किन्तु करेंगे कोक-शोक की तारे जो रखवाली।

'फिर प्रभात होगा' क्या सचमुच? तो कृतार्थ यह चेरी,
जीवन के पहले प्रकाश में आँख खुली जब मेरी।

—मैथिलीशरण गुप्त

* 'साकेत' से

भारत की राजनैतिक अवस्था

किसी देश का स्वरूप ज़्यादातर उसकी प्राकृतिक रूप-रेखा तथा उसके देश-काल से निश्चित किया जाता है। इस नियम का भारत अपवाद नहीं है। भारत एक विस्तृत छोटा महाद्वीप-सा है। उत्तर की ओर से एक ऊँचे पहाड़ की दीवार से वह संसार से अलग कर दिया गया है। उसकी पूर्वी सीमा दुर्गम पहाड़ियों और जङ्गलों से आवृत है। उसके उत्तर-पश्चिम में जो पहाड़ स्थित हैं वे उतने दुर्गम नहीं हैं। इस छोटे महाद्वीप के भिन्न भिन्न भाग यद्यपि बड़ी बड़ी नदियों और पहाड़ियों से अलग अलग हैं, तथापि एक भाग से दूसरे भाग में भूतकाल में आना-जाना बराबर जारी रहा है और अब तो सड़कों और रेल-मार्गों के हो जाने से आने-जाने की बहुत ही अधिक सुविधा हो गई है। इस तरह भारत-देश अपने आप एक देश होगया है और उसके किसी एक भाग के लिए अब अलग रहना या दूसरे भागों के मामलों से उदासीन हो जाना बहुत कठिन है। दूसरे शब्दों में यह कि यदि पंजाब पर विदेशियों का आक्रमण हो या दक्षिण में कोई गड़बड़ हो तो बङ्गाल चुप नहीं रह सकता। इसी कारण हमें भारत के प्रामाणिक इतिहास में मिलता है कि इस देश में सारे देश या उसके एक बड़े भाग्य को एक साम्राज्य के अन्तर्भुक्त करने की भावना सदा काम करती रही है। क्योंकि शान्ति तथा सुरक्षा केवल एक सर्व-प्रधान की शक्ति की संरक्षा में ही सम्भव हो सकती थी। देश की जब ऐसी अवस्था नहीं रहती थी तब भिन्न भिन्न प्रदेश आपस में लड़-भिड़कर अपने निवासियों की अपार क्षति करते थे और विदेशियों को उन पर आक्रमण करने का प्रलोभन देते थे।

इसी प्रसिद्ध भावना के ही फलस्वरूप भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई है। बहुत दिनों तक अँगरेज़ अधिकारी भारत पर शासन करने का भारी उत्तर-दायित्व ग्रहण करने में सचमुच आनाकानी करते रहे थे। परन्तु जब उनके क़ब्ज़े में एक प्रदेश आगया तब वे अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए देशी नरेशों से मित्रता करने लगे एवं अन्य भागों पर भी अधिकार किया, यहाँ तक कि सारा देश उनके शासन अथवा प्राधान्य में आगया। सन् १८५८ में भारत में अँगरेज़ों की सत्ता देश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रधान रूप से क़ायम हो गई। अपने अधिकार के प्रदेशों में उनकी सत्ता क़ायम ही हो गई थी, देशी राज्यों पर भी वह उसी रूप से क़ायम होगई।

अँगरेज़-सरकार ने यह स्थिति भिन्न भिन्न प्रकार के उपायों से प्राप्त की है। उनमें से सर्वप्रधान उपाय अँगरेज़-सरकार का शस्त्रों पर अपना एकाधिकार क़ायम कर लेना रहा है। उसने इस क्षेत्र में भारत भर में—चाहे देशी राज्यों में हो—चाहे कोई एक व्यक्ति हो—अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहने दिया। देशी नरेशों की सामरिक शक्ति पहले ही पङ्गु कर दी गई थी। कुछ रियासतें तो सेना को सब तरह से सुसज्जित रखने के साधनों से रहित हैं और जिनके पास साधन हैं

वे सन्धियों एवं प्रचलित प्रथा के अनुसार वैसा कर नहीं सकतीं। सेंधिया और मैसूर के नरेशों की सैन्य-संख्या सन्धियों-द्वारा सीमित कर दी गई है। भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग ने सैन्य-संख्या परिमित करने के सम्बन्ध में अन्य राज्यों पर भी वही नियम लागू कर दिये हैं। देशी राज्यों का बड़ी बड़ी सेनाओं, क़िलों, तोपख़ानों आदि का संग्रह करना सर्व-प्रधान सरकार के लिए चिन्ता का कारण है। ग़दर के उपरान्त अँगरेज़ी प्रदेशों की जनता पूर्णरूप से निशस्त्र कर दी गई और कड़े शस्त्र-क़ानून ने उसे शस्त्रों के प्रयोग के ज्ञान से बिलकुल अनभिज्ञ बना दिया। सरकार की ओर से एक विशाल सेना जिसकी वीरता और दक्षता की गत महायुद्ध में परीक्षा हो चुकी है, भारत की रक्षा करती है।

इसके सिवा सरकार ने सारे भारतीय साम्राज्य पर अपना एक प्रकार का हलका आतङ्क जमाये रखने के लिए रेलमार्गों, सड़कों, तार और डाक की व्यवस्थाओं का जाल बिछा दिया है। लार्ड कर्ज़न के शब्दों में इसलिए कि बिना दिल्ली या शिमला के आदेश के कोई गौरैया अपनी पूछ न हिलाये और न कोई पत्ती गिरे। ब्रिटेन तथा साम्राज्य के दूसरे भागों से शीघ्रगामी केबुल तथा स्टीम के यातायात के साधनों से सम्बन्धित हो जाने से उस अँगरेज़ी सत्ता की स्थिति को और भी अधिक दृढ़ता प्राप्त होगई है। रेल-मार्ग के बड़े बड़े पुलों, नहरों तथा वैसे ही दूसरे बड़े बड़े कार्यों का भारतीयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा है और वे शासक जाति का लोहा मान गये हैं और उनमें उनके प्रति भक्ति का भाव पैदा हो गया है। तीसरे पार्थिविक विजय की पूर्ति सांस्कृतिक और नैतिक विजयों से भी की गई। मुस्लिम-शासन के काल में धार्मिक नेताओं का लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव था। यहाँ तक कि जब अकबर ने उनका प्रभाव बहुत कम कर दिया था तब भी बच्चों की शिक्षा का अधिकार उन्हीं के हाथों में था। सार्वजनिक शिक्षा पर राज्य अपनी सत्ता नहीं स्थापित कर सका। परन्तु ब्रिटिश सरकार इस सम्बन्ध में पूरी तरह सफल हुई। जब मैकाले ने सरकारी सहायता से पाश्चात्य शिक्षा का प्रोत्साहन देने के समर्थन में अपना ख़रीता लिखा था तब से सारी सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था सरकार के हाथ में हो गई है और वह भी उसकी शक्ति का एक साधन बन गई है। जो भारतीय सुख के साथ जीवन-यापन कर सकते हैं उनके विचार और आदर्श, उनका सामाजिक जीवन और सुरुचि इन सब ने उन्हें योरपीय बनाने में प्रवृत्त किया है। प्रत्येक पाश्चात्य वस्तु की श्रेष्ठता के—उसकी राजनैतिक व्यवस्था, उसकी सामाजिक व्यवस्था, उसकी शिक्षा-पद्धति और व्यवसाय की श्रेष्ठता के—विश्वास ने भारतीयों के मन में यह भाव भर दिया है कि अँगरेज़ी साम्राज्य के भीतर रहना उनके लिए अनिवार्य है।

ऐसे भाव के पैदा करने में भारत की सरकारी नौकरियों के मण्डलों का प्रधान हाथ रहा है। यह विशेषता उन्होंने अपनी निपुणता और कुशलता के द्वारा प्राप्त की थी। योरपीय सेना की नियमशीलता और कार्य-निपुणता का सामना करने को भारत में कुछ नहीं था। १९ वीं सदी में अपने सिविल सर्विस विभाग में भी इँगलेंड ने अपने यहाँ के योग्यतम व्यक्तियों को भेजा था। इन्होंने अनेक अवसरों पर प्रजा-जनों की भलाई के लिए सेवा-भाव और उच्च मनस्विता से काम किया। फलतः वर्षों की अराजकता के बाद जब यहाँ अँगरेज़ी सत्ता की स्थापना हो गई तब वह एक ऐसी बरकत समझी गई कि उसकी श्रद्धा-भक्ति करने में राजा-प्रजा दोनों अपने को भूल गये। जिन देशी नरेशों ने सम्राट् की सेवा के लिए अपने को प्रदान किया था और अपने प्रिय सम्राट् की सेवा में अपने प्राण तक विसर्जन करने की इच्छा प्रकट की थी उनकी सचाई पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इसी प्रकार उन बड़े बड़े देश-भक्तों की सचाई पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है जिन्होंने कांग्रेस के प्रारम्भ-काल में बार बार इस बात पर अपना विश्वास प्रकट किया था कि भारत का भविष्य ब्रिटेन के साथ बँधा हुआ है और यह उसका सौभाग्य है कि उसने उसकी मुक्ति के लिए ऐसा साधन उपस्थित कर दिया है।

यह उपर्युक्त भाव इस समय स्वाधीनता तथा स्वराज्य के भाव में परिवर्तित हो गया है। इस परिवर्तन का कारण सरलता से बतलाया जा सकता है। अँगरेज़ों का सारा इतिहास और साहित्य इस बात की शिक्षा देता है कि आत्म-शासन का स्थान सुशासन नहीं ग्रहण कर सकता है। वही यह भी बताते हैं कि लाभप्रद स्वेच्छाचारी शासन का विश्वास नहीं किया जा सकता है कि वह लाभ-प्रद बना ही रहेगा। मनुष्य-स्वभाव की प्रवृत्ति स्वार्थ की ओर रहती है। और यहाँ निस्वार्थी शासकों की एक पीढ़ी के बाद भी वैसे ही स्वार्थ-रहित शासक गद्दी पर आसीन होंगे, यह कहा नहीं जा सकता। तो भी भारत की नौकरशाही अपनी सफलता का उचित गर्व करती है, उसका यह दावा है कि भारत के लिए उनका शासन उत्कृष्ट है और यदि इसमें कोई परिवर्तन हुआ तो यह भारत के लिए आपत्ति का कारण होगा। अपना यह दावा उपस्थित करते हुए वह देश की परिवर्तित अवस्थाओं की ओर ध्यान नहीं देती है। इधर देश के राजे और प्रजा-जन अधिकाधिक राजनैतिक भावापन्न होते जा रहे हैं तथा सरकार ने भी भारतीय स्वार्थों की अपेक्षा अँगरेज़ी स्वार्थों की ओर अधिकाधिक पक्ष लेना प्रारम्भ कर दिया है। ऐंग्लोइंडियन अफ़सरों की पुरानी पीढ़ी का भारत से कौटुम्बिक सम्बन्ध रहा है। इसलिए वे भारतवासियों और उनकी संस्कृति के प्रति सद्भाव रखते थे। इसके बाद प्रतियोगिता-परीक्षावाले भारत के सम्बन्ध में आये। ये लोग बेशक विद्वान् और योग्य थे। परन्तु इनका उनका सम्बन्ध नहीं स्थापित हुआ। भारत और योरप के बीच द्रुतगामी स्टीमरों के द्वारा यातायात की विशेष सुविधा हो जाने से ये लोग अक्सर अपनी छुट्टियों में इँग्लेंड जा सकते थे और भारत में अपना कुटुम्ब तथा पाश्चात्य ढङ्ग से अपना रहन-सहन रख सकते थे। देश की प्रकृति से इनका जो सम्पर्क था वह कम होता गया। भारत के ग़ैर सरकारी योरपीयों के मनोभाव से यह बात भले प्रकार परिलक्षित होती है। क्योंकि इन योरपीयों ने सरकार के विरुद्ध भारतीयों का साथ दिया। वस्तुतः इन्हीं लोगों ने भारतीयों को सरकार का विरोध करने का मार्ग दिखाया। परन्तु जब सरकार ने योरपीयों और भारतीयों के बीच भेद डालना आरम्भ किया जैसा कि उसने सन् १८७८ के वर्नाक्यूलर प्रेस ऐक्ट को पास करके किया था तब उसने इन दोनों को अलग अलग कर दिया। यह भेद-भाव तब और भी बढ़ गया जब सन् १८८४ में एलबर्ट बिल के कारण बड़ा कटु-विवाद छिड़ा था और अपने अधिकारों की रक्षा करने को योरपीय ख़ूब भिड़कर लड़े थे। व्यापार में और सरकारी नौकरियों में अपना एकाधिकार क़ायम रखने के लिए ये लड़े थे और सरकार ने इनका साथ दिया था। इस तरह सरकार ने विरोध के होते हुए भी लंकाशायर के सूती वस्त्रों की चुङ्गी मंसूख़ करदी थी। और फिर जब राजस्व के विचार से वह चुङ्गी फिर लगाई गई तब भारतीय बने हुए माल पर भी अतिरिक्त चुङ्गी लगा दी गई। सरकारी नौकरियों के एकाधिकार की कड़ाई के साथ रक्षा की गई—वस्तुतः सेना से भारतीय अधिक कड़ाई के साथ पहले की अपेक्षा अधिक दूर रक्खे गये और उसमें योरपीयों की मात्रा और बढ़ादी गई। ऊँची श्रेणी की नौकरियाँ भारतीयों को देने की सारी सिफ़ारिशों की यहाँ तक कि पार्लियामेंट तक की अवहेलना की गई। इस तरह नौकरशाही जो जनता के हित करने का दम भरती थी, वस्तुतः स्वार्थी हो गई।

ऐसी परिस्थिति में उत्तरदायित्व-पूर्ण सरकार की माँग का उपस्थित होना सर्वथा स्वाभाविक था। वह माँग ज़ोर पकड़ती गई। यहाँ तक कि महायुद्ध के समय में सरकार ने यथासमय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन प्रदान करने का अपना विचार घोषित किया और यह नीति बार बार दुहराई गई है।

इधर जब नौकरशाही उदार अँगरेज़ी प्रदेशों के निवासियों की सहानुभूति सदा अपने हाथ में किये रहने में असफल हुई तब उधर दूसरी ओर देशी नरेश भी अपने ऊपर स्थापित प्रधान शक्ति की कड़ी निगरानी से छुटकारा पाने की इच्छा करने लगे। सिपाही-विद्रोह के पहले सरकार ने देशी नरेशों को अपने भीतरी मामलों का प्रबन्ध करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रक्खी थी। उसने केवल तभी हस्तक्षेप किया था जब समस्या बहुत

विकट आकार धारण करती थी और तब सरकार उस राज्य को ब्रिटिश भारत में मिला कर कुशासन या दूसरी बुराई को दूर कर देती थी। ग़दर के बाद महारानी विक्टोरिया की घोषणा में यह नीति छोड़ दी गई। अतएव देशी राजाओं को उनके दुर्व्यवहार तथा विश्वासघात का प्रतीकार करने और कुशासन दूर करने के लिए दूसरे उपाय ग्रहण किये गये। यह काम भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग के द्वारा कई एक प्रकार से किया गया। भारत-सरकार से गद्दीनशीनी की स्वीकृति प्राप्त करना सभी देशी नरेशों के लिए आवश्यक हो गया। जिन देशी नरेशों ने ठीक ठीक शासन नहीं किया और असद् व्यवहार किया वे गद्दी से उतार दिये गये और उनके स्थान में उनके निकट सम्बन्धी गद्दी पर बिठाये गये। एक बार यह प्रयत्न किया गया था कि ऐसे मामलों का निपटारा एक ऐसी पञ्चायत किया करे जिसके सदस्य देशी नरेश भी हों। परन्तु इस प्रयत्न में सफलता नहीं हुई। अतएव इस सम्बन्ध के अपने अधिकार का प्रयोग सरकार स्वेच्छानुसार ही करती रही। उसकी यह नीति न्याय-युक्त रही है या नहीं, किन्तु इससे देशी नरेशों के आत्मसम्मान तथा मर्यादा को अवश्य ठेस पहुँची है।

इसी के साथ ही देशी नरेशों को अपने राजस्व की भी हानि उठानी पड़ी है। सरकार का नमक और अफ़ीम पर एकाधिकार होने से देशी राज्यों को अपने न्यायपूर्ण लाभों के एक अंश से वञ्चित होना पड़ा। जिन ब्रिटिश बन्दरगाहों में उनके राज्यों के प्रजा-जन बहु-संख्या में निवास करते हैं उनमें लगनेवाली चुङ्गी की अत्यधिक आय-वृद्धि के सम्बन्ध में उनकी शिकायत का कारण है, क्योंकि देशी राज्यों को इस चुङ्गी की आय में कोई भाग नहीं मिलता है।

बाहरी दुनिया से सम्बन्ध हो जाने से भारतीयों में असन्तोष अधिक फैला है। अँगरेज़ी साम्राज्य में होने का भारतीयों को बड़ा गर्व था और उसके नागरिकता के अधिकारों का अपने को पात्र समझते थे। परन्तु जब ब्रिटिश उपनिवेशों ने क़ानून बनाकर भारतीयों को अपने यहाँ से निकालना आरम्भ किया, साथ ही अन्य विदेशियों को आने दिया तब इस बात से उनके आत्म-सम्मान को बड़ी ठेस लगी—इसी के फलस्वरूप 'डोमीनियन स्टेट्स' की माँग हुई है।

इस प्रकार भारत की स्थिति यह होती है। वहाँ अँगरेज़ी सरकार एक शक्तिशाली सेना और निपुण सिविल-सर्विस के सहित दृढ़ता से स्थापित है। रेलवे, नहर आदि के सार्वजनिक कामों और जूट, चाय, कोयला, खान आदि के उद्योग-धन्धों के बढ़ाने में ब्रिटिश पूँजी लगाई गई है। अँगरेज़-सरकार देशी नरेशों का स्वेच्छा से नियन्त्रण करती है। वह उन्हें केवल चेम्बर आफ़् प्रिंसेज़ में अपने सम्बन्ध के प्रश्नों पर वाद-विवाद तथा उन पर अपनी सम्मति भर प्रकट करने देती है। अँगरेज़ी प्रदेशों के लिए जो उसने एक शासन-विधान बना दिया है उसके अनुसार सारी महत्त्व की बातों का नियन्त्रण इँग्लैंड की सरकार के द्वारा होता है। परन्तु सरकार ने भारत में यथासमय उत्तर-दायित्व-पूर्ण सरकार की स्थापना करने की भी प्रतिज्ञा की है। भारत की यही वास्तविक स्थिति है। इसके साथ-ही-साथ ब्रिटिश भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन शीघ्र स्थापित करने की माँग का आन्दोलन फैला हुआ है। और देशी नरेशों में भी आकांक्षा जागृत हुई है कि उनके भाग्यों की रचना में उनका भी हाथ रहा करे।

जो लोग ब्रिटिश-सत्ता को इस दृढ़ स्थिति से स्थान-च्युत करना चाहते हैं वे मोटे हिसाब से तीन श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते हैं। पहले तो वे लोग हैं जो आशा करते हैं कि इस स्वभाग्य-निर्णय के ज़माने में अँगरेज़ लोगों को आत्मशासन-सम्बन्धी भारतीय माँग के औचित्य का बोध हो जायगा और वे भारत को किसी शर्त के बिना आत्म-शासन का अधिकार प्रदान कर देंगे और तब भारतीय भी कृतज्ञतावश अँगरेज़ों को सबसे अधिक कृपापात्र राष्ट्र का अधिकार प्रदान करेंगे। निस्सन्देह अँगरेज़ों में एक दल है जिससे इस आशा की यथार्थता प्रकट होती है। ब्रिटिश राष्ट्र का वह भाग इस बात के लिए तैयार है कि भारत अपना शासन आप करे। परन्तु अँगरेज़ी राष्ट्र का दूसरा भाग है जो एक बहुमूल्य

देश इस तरह मूर्खता से नहीं छोड़ देना चाहता। वह कहता है कि अँगरेज़ों को भारत में स्वयं भारतीयों के हित के लिए बने रहना चाहिए, क्योंकि भारतीय बिना अँगरेज़ों की सहायता के अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे। इसके सिवा उनका विश्वास नहा किया जा सकता कि वे अपने देशवासियों में से निर्बल लोगों के साथ न्याय करेंगे। तथा उन अँगरेज़ लोगों के साथ न्याय करेंगे जिन्होंने भारत में अपनी पूँजी लगाई है और व्यापार तथा उद्योग-धन्धों को समुन्नत किया है। और जिनके उद्योग-धन्धों का विनाश भारत के लिए विनाश की बात होगी। दूसरी श्रेणी उन लोगों की है जो अँगरेज़ों की हित-रक्षा के लिए यथेष्ट संरक्षणों का प्रबन्ध कर देने पर अँगरेज़ों से शासन-सूत्र प्राप्त कर लेने की आशा करते हैं। ये लोग सेना, पर-राष्ट्र-विभाग, राष्ट्रीय ऋण, मुद्रा-नीति—आदि उस गवर्नर-जनरल के हाथों में सौंप देने को तैयार हैं जो इँगलेंड की सरकार के नियन्त्रण में रहे। वे योरपीय कर्मचारियों, व्यवसायियों तथा पूँजी लगानेवालों के डर को विधानात्मक गारंटियाँ देकर दूर कर देना चाहते हैं। वे अल्प-संख्यक समुदायों के भी डर को दूर करने को तैयार हैं। इन बातों के सिवा वे सरकार की विधान को स्थगित कर स्वयं शासन करने में भी मदद करेंगे। परन्तु इस प्रकार के संरक्षण तीसरी श्रेणी के भारतीयों को पसन्द नहीं हैं। इनका कथन महात्मा गाँधी-द्वारा प्रकट होता है। इनका कहना है कि ये संरक्षण भारत की हित की दृष्टि से होने चाहिए, दूसरे शब्दों में यह है कि ये लोग अँगरेज़ों से सौदा नहीं करना चाहते। ये अपनी स्वतन्त्रता को मूल्य देकर ख़रीदना नहीं चाहते। ये लोग सार्वजनिक विरोध के भाव से अँगरेज़ी शासन-चक्र का चलना असम्भव करके अँगरेज़ों को इस बात का विश्वास करा देना चाहते हैं कि भारत को स्वतन्त्र कर देने की आवश्यकता है। लंदन को छोड़ते समय गाँधीजी ने जो कहा था उससे यह बात साफ़ प्रकट होती है। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय महासभा को फिर अपनी बैटरी भरनी पड़ेगी और उसे अँगरेज़ों को यह दिखा देना होगा कि वह उनके हाथों से अपनी स्वाधीनता ले लेने को काफ़ी मज़बूत है। राउंडटेबिल कान्फ़रेंस में यह प्रकट कर महात्माजी का समाधान करने का प्रयत्न किया गया था कि प्रस्तावित संरक्षण भारत के हित में हैं। इसका महात्माजी को विश्वास हुआ है या नहीं, यह बात सन्देहात्मक है।

यदि अँगरेज़ लोग अपना प्रभुत्व छोड़ने को राज़ी किये जा सकें तो शासन-विधान के निर्माण में बहुत-सी कठिन अड़चनों का सामना न करना पड़ेगा। यह स्पष्ट ही है कि आत्मशासन-प्राप्त भारत में ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के सहित एकात्मक सरकार की स्थापना नहीं हो सकती। ऐसी सरकार का केन्द्रगत अधिकार अधिक कठोर रहता है। अतएव आशा नहीं की जा सकती कि देशी रियासतों को जो अपने भीतरी मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र हैं, इस सरकार की अधीनता स्वीकार होगी। फलतः सरकार सङ्घात्मक होनी चाहिए।

सङ्घ-सरकार एकात्मक सरकार से इस बात में भिन्न है कि संघ-सरकार केन्द्रीय सरकार और प्रान्तों एवं राज्यों की सरकारों की शक्ति और उनके अधिकारों को अलग अलग कर देती है। वह प्रत्येक को अपने क्षेत्र में स्वाधीनता प्रदान करती है और चाहती है कि प्रत्येक अपने व्यवस्थापक मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहे।

किसी ऐसे भारतीय संघ के सम्बन्ध में पहला जटिल प्रश्न यह निश्चय करना है कि संघीभूत राज्य कैसे होने चाहिए।

अँगरेज़ी भारत के पन्द्रह प्रान्त क्षेत्रफल, आबादी, राजनैतिक उन्नति तथा व्यावसायिक महत्त्व की दृष्टि से एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। इधर कोई छः सौ देशी रियासतें आपस में एक दूसरे से और भी अधिक भिन्न हैं। इस ऐसे सामञ्जस्यहीन समूह को किसी संघ के साझीदार बनाने के लिए एकरूपता प्रदान करना सरल काम नहीं है। हैदराबाद के निज़ाम जैसे कुछ देशी नरेशों को क़रीब क़रीब 'सावरेन' के अधिकार प्राप्त हैं। उनके सेनायें, टकसाल, दीवानी और फ़ौजी अदालतें हैं। इसके विपरीत बहुत-सी ऐसी छोटी छोटी रियासतें हैं जहाँ ये राज्याधिकार-सूचक चिह्नों का अभाव ही नहीं है, किन्तु अपराधियों को

दण्ड देने की उनकी शक्ति भी सीमित है। संघ में इनके शामिल किये जाने पर इनकी व्यवस्थाओं में सामञ्जस्य लाना आवश्यक होगा। यही अवस्था रियासतों की सरकारों और संघ-सरकार के बीच कार्यों के विभाग की योजना के तय करने में कठिनाई उपस्थित करती है। जिन मामलों का समानरूप से सब भागों पर प्रभाव पड़ता है उनका प्रबन्ध संघ सरकार के ही हाथों से होना चाहिए। उदाहरण के लिए देश-रक्षा की व्यवस्था, वैदेशिक और व्यावसायिक मामले—वे मामले जिनमें एक-रूपता आवश्यक है जैसे करंसी, फ़ौजदारी क़ानून, तौल-माप तथा वे मामले भी जिनमें सहयोगात्मक प्रयत्न अधिक लाभदायक है जैसे औद्योगिक तथा वैज्ञानिक खोज का कार्य—सङ्घ-सरकार के ही हाथों में रहना ठीक होगा। स्थानिक हितों के मामले तथा रोज़ रोज़ का प्रबन्ध-कार्य बड़े सुभीते के साथ रियासतों की सरकारों को सौंपा जा सकता है और इनका नियन्त्रण स्थानीय व्यवस्थापक-मण्डल-द्वारा बड़े अच्छे ढङ्ग से किया जा सकता है।

परन्तु इतने से ही यह कार्य-विभाग पूर्ण नहीं हो जाता। सङ्घ और देशी रियासतों के न्याय-विभागों के बीच के झगड़ों आदि का रोकना असम्भव है। ऐसे सन्दिग्ध मामलों को तय करने के लिए एक सङ्घीय बड़ी अदालत की स्थापना करनी होगी, जिसे पूर्ण आवश्यक स्वाधीनता प्राप्त रहेगी। इस अदालत की रचना और इसका कर्तृत्व सङ्घ-विधान के लिए एक बड़े महत्त्व की बात होगी।

सङ्घ-सरकार के व्यवस्थापक-मण्डल का सङ्गठन और उसका स्वरूप अनेक नये प्रश्न उपस्थित करता है। इसको दो व्यवस्थापक-मण्डलों का होना एक साधारण बात है। उस दशा में इसके एक भवन में रियासतों की सरकारों के प्रतिनिधि रहेंगे और दूसरे में सारे देश के निवासियों के चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे। अँगरेज़ी प्रान्त प्रतिनिधित्व की इस पद्धति से परिचित हैं, परन्तु कुछ को छोड़ कर शेष भारतीय रियासतें इस पद्धति से परिचित नहीं हैं। और यह सम्भव नहीं है कि देशी नरेश अपने प्रजाजनों को चुनाव-द्वारा अपने प्रतिनिधि मनोनीत करने की अनुमति देने को राज़ी होंगे। इसके सिवा एक यह भी प्रश्न है कि प्रत्यक्ष चुने हुए प्रतिनिधियों-द्वारा सङ्गठित व्यवस्थापक-मण्डल का होना सम्भव है या नहीं सम्भव है।

और इसी कारण रियासतों के व्यवस्थापक-मण्डलों में एकरूपता प्राप्त करना कठिन होगा। स्वभावतः प्रत्येक रियासत अपने यहाँ के व्यवस्थापक-मण्डल का रूप .खुद निश्चित करेगी और उसमें चुने जानेवाले प्रतिनिधियों के लिए नियम बनायेगी। परन्तु अल्पसंख्यकों के लिए समुचित संरक्षित स्थान रखते हुए सभी समाजों का प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का कठिन प्रश्न सभी मामलों में विकट समस्या उपस्थित करता है। इसका निर्णय अब तक नहीं हो सका है। सङ्घ-सरकार के व्यवस्थापक-मण्डल के मामले में भी यह प्रश्न उठता है।

इसी तरह सङ्घ और राज्यों के शासक-मण्डलों का सङ्गठन तथा व्यवस्थापक-मण्डलों के प्रति उनका उत्तरदायी होना भी एक मसला है जो कठिनाइयों से भरा हुआ है। राउंडटेबल कान्फ़रेंस में यह बात स्वीकार की गई है कि प्रान्तिक शासक-मण्डल व्यवस्थापक-मण्डल के प्रति उत्तरदायी रहेगा, परन्तु परिवर्तन-काल में कुछ समय तक कुछ आवश्यक अधिकार गवर्नर के हाथ में रहेंगे जो उनका प्रयोग व्यवस्थापक-मण्डल से सर्वथा स्वाधीन रहकर करेंगे। वे अपने इन अधिकारों का प्रयोग संरक्षा-व्यवस्था के सम्बन्ध में तथा एक समाज और दूसरे समाज के बीच के भेद-भाव के रोकने में करेंगे। केन्द्रीय सरकार के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव किया जा रहा है कि कई महत्वपूर्ण विभागों का नियन्त्रण वायसराय के हाथों में रहे, अर्थात् इन विभागों के नियन्त्रण का कोई अधिकार व्यवस्थापक-मण्डल को न दिया जाय। इसके साथ ही सङ्घ-सरकार को व्यवस्थापक-मण्डल के विरुद्ध कार्य करने के लिए विशेष अधिकार दिये जाने को हैं। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या शासक-मण्डल पूर्णतया उन लोगों का मन्त्रि-मण्डल होगा जो व्यवस्थापक-

मण्डल से ही लिये जायँगे या केवल कुछ ऐसे आदमियों का तथा उन कुछ अधिकारियों का जिन्हें गवर्नर-जनरल नियुक्त करेंगे और जो अनुत्तरदायी होंगे।

शासक-मण्डलों के सम्बन्ध में एक और प्रश्न है। वह है उसके भीतर भिन्न भिन्न समाजों के प्रतिनिधित्व का। सरकार को व्यवस्थापक-मण्डल के प्रति उत्तरदायी बना देना, साथ ही उसमें सभी समुदायों के लोगों के प्रतिनिधि भी रखना, एक व्यावहारिक बात नहीं जान पड़ती है।

राउंडटेबल कान्फ़रेंस में इन उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण मसलों के केवल कुछ अंशों पर ही बातचीत हुई है। वस्तुतः कांग्रेस ने राउंडटेबल कान्फ़रेंस में इस बात का वाद-विवाद जारी रखना चाहा था कि ब्रिटेन भारत को पूर्णरूप से स्वतन्त्र करेगा या नहीं। परन्तु इस बात का उत्तर उन निर्णयों से निकालना पड़ेगा जो भिन्न भिन्न संरक्षणों के सम्बन्ध में किये गये हैं।

—परमानन्द
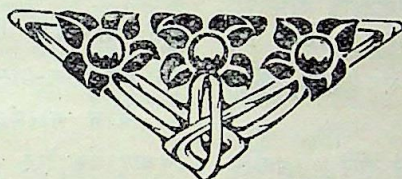
किसान

बैरन दुर्न्नैली ने मुझसे कहा कि न हो तो अब के मौसम में हम लोग अपने 'मेरिन विली' के इलाके पर ही शिकार खेलें। वहाँ का शिकार अकेले के मान का नहीं। पर दोस्त! कटेगी बड़े आनन्द से। मैंने पूछा, कौन कौन चलेगा?

तब बैरन ने कहा कि बस मैं और तुम। क्योंकि इन दिनों मैं भी अकेला ही हूँ और वहाँ का घर कुछ ऐसे पुराने ढङ्ग का है कि सिवा इष्ट-मित्रों के और किसी को वहाँ निमन्त्रित भी नहीं कर सकता।

मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

शनिवार के दिन नारमंडी की ओर हम लोग रेल गाड़ी से चल पड़े। अलमेयर के स्टेशन पर ज्योंही उतरे, सामने ही एक देहाती छकड़ा देख पड़ा। उसमें एक बड़ा ही चञ्चल घोड़ा जुता हुआ था और एक ऊँचा-पूरा बूढ़ा साईस उसके पास खड़ा था। बैरन ने इशारा करते हुए कहा, देखो यह अपनी देहाती गाड़ी है।

साईस ने तुरन्त बैरन की ओर अपना हाथ बढ़ाया और बैरन ने भी बड़े स्नेह से उसे दबा लिया। और पूछा, कहो, क्या हाल है।

साईस ने कहा, सब अच्छा है सरकार।

हम लोग उसी बड़े बड़े पहियेवाले छकड़े में बैठ गये। घोड़े ने कुछ देर तक तो मस्ती की, पर फिर जब सरपट भगा तब हम लोगों को गाड़ी में बैठे-बैठे ऐसा मालूम होने लगा मानो हवा में उड़े जा रहे हों। उस कँकरीली सड़क पर छकड़ा भी ख़ूब उछल रहा था। तख़्तों पर उछलते उछलते मैं तो हैरान होगया।

साईस बार-बार 'मुटार्ड' को पुचकारता था, पर 'मुटार्ड' अपनी धुन के सामने किसी की सुनता न था। हमारे दोनों कुत्ते भी छकड़े में पीछे चुपचाप खड़े हवा को सूँघ सूँघ कर आस-पास शिकार की टोह लगा रहे थे।

बैरन नारमंडी की ऊँची-नीची भूमि की ओर विचारपूर्वक देख रहा था। वहाँ चारों तरफ़ निरे वृक्ष देख पड़ते थे। कहीं उम्दा हरी-भरी खेती का दृश्य था, तो कहीं सेब के छोटे छोटे झुँड के झुँड अपनी आड़ में घरों को छिपाये हुए थे। जिधर देखिए उधर यही सुहावना दृश्य था। देखते देखते बैरन सहसा कह बैठा, मुझे यह देश बड़ा ही प्रिय है। मेरी तो जड़ यहीं से है।

उसकी नसों में पवित्र 'नार्मन' रक्त बहता था। वह लम्बा-चौड़ा तुंदारा जवान उसी वंश का था जिसके आदि-पुरुष चारों ओर समुद्री तटों पर राज्य स्थापित करते जाया करते थे। उसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की थी और उस देहाती साईस से वह लगभग दस वर्ष छोटा था। उस किसान की हड्डी हड्डी देख पड़ती थी। उसके शरीर में हड्डी और चमड़ी को छोड़कर और कुछ था ही नहीं। और देहाती किसानों की तो प्रायः यही दशा रहती भी है।

उसी पथरीली सड़क पर दौड़ते-दौड़ते लगभग दो घंटे बीत गये तब कहीं हम लोग उस हरे-भरे मैदान को

पार करके सेब के बाग़ से निकलते हुए 'मेयर डुब्रैली' के उस पुराने मकान पर पहुँचे। यहाँ पर एक पुरानी बुढ़िया नौकरानी काम कर रही थी और एक लड़के ने तुरन्त उठकर घोड़ा थाम लिया।

हम लोग घर के भीतर गये। उसका लम्बा चौड़ा रसोई-घर धुयें से बिलकुल काला हो रहा था। चूल्हे पर पीतल और चीनी के बर्तन चमक रहे थे। एक कुर्सी पर एक बिल्ली सो रही थी और एक कुत्ता मेज़ के नीचे पड़ा सो रहा था। चारों तरफ़ कहीं दूध और सेब की सुगन्ध आ रही थी—कहीं ज़मीन पर गिरा हुआ शोरवा बसा रहा था—कहीं से धुयें और ज़मीन की सोंधी सोंधी बास आ रही थी।

मैं वहाँ से बाहर निकल कर खलियान की ओर चल दिया। वहाँ बड़े घने सेब के पेड़ लगे थे और सबके सब फलों से बिलकुल लद रहे थे। फूल बार बार चारों ओर घास पर टप टप गिर रहे थे।

धीरे धीरे रात घिर आई और मैं भी घर लौट आया। बैरन बैठा हुआ अपने पैर सेंक रहा था और बूढ़ा किसान बैठा हुआ देहात का हाल सुना रहा था कि कहाँ ब्याह हुआ, कहाँ लड़का पैदा हुआ, कौन मरा, गेहूँ का भाव कैसे गिर गया, कौन सी गाय कब जनी, चीड़ को अब कोई नहीं पूछता, नाशपाती की फ़सल कम हो गई, इत्यादि, इत्यादि।

तब हम लोग भोजन करने बैठे। देहाती भोजन बड़ा सादा पर अत्यन्त पुष्ट एवं स्वादिष्ट था और हम लोगों ने ख़ूब खाया। खाते खाते मेरा ध्यान बैरन तथा उस किसान की पारस्परिक घनिष्टता की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

बाहर पेड़ों के बीच से हवा सन सन चल रही थी और हमारे कुत्ते अस्तबल में बन्द चिल्ल-पों मचाये हुए थे। बुढ़िया नौकरानी सो गई थी। इतने में उस बूढ़े किसान ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो अब जाकर सो रहूँ, क्योंकि रात में देर तक नहीं जाग सकता। बैरन ने तुरन्त हाथ बढ़ाया और कहा, हाँ हाँ! अवश्य सो जाओ। परन्तु बैरन ने यह बात इतनी नम्रता से कही कि बूढ़े के उठते ही मैं बैरन से बिना पूछे न रह सका कि मालूम होता है इस किसान से आपकी विशेष घनिष्टता है।

बैरन ने कहा—यार! इससे भी कहीं अधिक। इसका बड़ा पुराना इतिहास है, जिससे मैं इसकी ओर इतना अधिक खिंचा रहता हूँ। बात बड़ी सीधी है, पर दुख-दायक भी वैसी ही है। तुम तो जानते हो, मेरे पिता सेना में कर्नल थे। यह बूढ़ा किसान उस समय लड़का ही था और उन्हीं की अर्दली में था। जब उन्होंने नौकरी छोड़ दी तब इसे भी अपने साथ ही लेते आये। उस समय इसकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की हो गई थी और मैं भी लगभग ३० वर्ष का था। उस समय हम लोग अपने गाँववाले बँगले में रहते थे।

मेरी मा के पास 'लूसी' नाम की एक बड़ी ही सुन्दरी नौकरानी थी। वैसी अच्छी लड़की तो अब देख भी नहीं पड़ती। ऐसा सुडौल बदन था कि क्या कहूँ। वैसी लड़कियाँ अब कहाँ मिलती हैं? क्योंकि अब तो यदि कहीं कोई हुई भी तो लोगों के चङ्गुल में पड़कर तुरत नष्ट हो जाती है। और फिर रेलगाड़ियों के चल जाने से तो और भी ख़राबी हो गई है। क्योंकि अब तो लड़कियाँ ज़रा बड़ी हुईं कि चट-पट शहर की हवा खाने चल देती हैं और वहाँ इनके फँसाने के बड़े बड़े सामान हैं। प्रायः जो कोई भी अब इधर से निकलता है वह फ़ौजी भर्तीवालों की तरह बस इन छोकरियों की ही ताक में रहता है। जहाँ कोई ज़रा भी अच्छी देख पड़ी कि चटपट फाँस-फूँस कर लेकर चल देता है। इसी लिए अब घरों में काम करने के लिए बस वही भोंड़ी सूरतें रह जाती हैं जिन्हें कोई पूछनेवाला नहीं।

यार वह लड़की बड़ी ही सुन्दरी थी और कुछ लुक-छिप कर मैं भी उसका चुम्बन कर लिया करता था। बस और कुछ नहीं—इससे अधिक और कुछ नहीं—मैं शपथ खा सकता हूँ कि बस इससे अधिक और नहीं। वह स्वयं बड़ी सुशील थी और फ़िर मुझे भी अपनी मा के घर का पूरा ध्यान था। मानो आज-कल के लड़के ऐसी बातों का विचार प्रायः नहीं करते।

कुछ ऐसा हुआ कि हमारा यह नौकर उस पर बेतरह लट्टू हो गया। हम लोगों ने देखा कि यह कुछ अधिक सुल्लड़ सा हो गया था और मन-ही-मन कुछ सोचा-विचारा करता था। पिताजी प्रायः इससे पूछा करते थे कि क्यों जीन क्या हाल है? तबीयत तो ठीक है? यह कह दिया करता था, सरकार कुछ नहीं, सब ठीक है।

धीरे धीरे यह गलता जाता था और कभी कभी परोसते समय ग्लास तोड़ देता, कभी तश्तरियाँ पटक देता था। हम लोग समझे, इसे कमज़ोरी की बीमारी हो गई है, और हम लोगों ने डाक्टर को बुलवाया। उसने इसे 'रीढ़' की बीमारी बतलाया। तब पिताजी ने इसे अस्पताल भेजने का विचार किया। जब इसे यह पता चला तब इसने सचसच बतलाने का विचार किया।

एक दिन सवेरे पिताजी डाढ़ी बना रहे थे तब इसने डरते डरते उनसे कहा।

हुज़ूर।

'हाँ 'गारशों'*।

'सरकार! मुझे दवा नहीं चाहिए'।

'हाँ। तब फिर'?

'मैं ब्याह करना चाहता हूँ'।

पिताजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे घूम पड़े।

'तुमने क्या कहा? क्या?'

'मैं ब्याह करना चाहता हूँ सरकार'।

'ब्याह। तो तुम—तुम कहीं फँस चुके हो। क्यों?

'बस सरकार! बात तो यही है।'

इतना सुनते ही मेरे पिताजी इतनी ज़ोर से हँसने लगे कि मा चिल्ला पड़ीं कि क्या हो गया है?

उन्होंने कहा—ज़रा यहाँ आओ कैथरिन। जब वे भीतर आईं तब पिताजी ने उनसे 'जीन' की प्रेम-पीड़ा का वर्णन किया। मा को हँसी तो नहीं आई, पर दया अवश्य आगई।

*फ्रेंच में होटल के नौकर को 'गारशों' कहते हैं।

उन्होंने पूछा—गारशों तुम किससे प्रेम करते हो?

उसने बेधड़क कह दिया—सरकार मैं लूसी से प्रेम करता हूँ।

तब मा ने कहा—अच्छा हम सब ठीक करने का प्रयत्न करेंगे।

माँ ने लूसी को बुलाया और उससे पूछा। उसने कहा—हाँ, मुझे 'जीन' की इस सनक का पता अवश्य है और वह बहुत बार कह भी चुका है, पर कुछ कारण ऐसे हैं जिससे मैं उसे नहीं चाहती।

दो महीने बीत गये और मा और पिताजी लूसी को दबाते रहे कि वह 'जीन' से विवाह कर ले। और उसने भी शपथपूर्वक कहा कि वह भी किसी और से प्रेम नहीं करती थी, परन्तु जीन से विवाह न करने का कारण नहीं बताती थी। परन्तु पिताजी ने कुछ ले-देकर उसकी स्वीकृति प्राप्त ही कर ली और ये दोनों यहीं जहाँ इस समय हम लोग बैठे हैं, बसा दिये गये।

कुछ दिनों के बाद इन्होंने हमारा बँगला छोड़ दिया और दो-तीन वर्षों तक मुझे नहीं मालूम कहाँ रहे। लगभग तीन वर्ष के बाद मैंने सुना कि लूसी क्षय-रोग से मर गई। और मेरे माता-पिता भी नहीं रहे। फिर दो वर्ष तक मैंने 'जीन' को नहीं देखा।

अन्त में एक दिन मेरे चित्त में आया कि इस इलाके में भी शिकार खेलने जाना चाहिए, क्योंकि मेरे किसान कहा करते थे कि यहाँ बड़ा शिकार है। अतः एक दिन ख़ूब पानी बरस रहा था और मैं इसी घर में आ पहुँचा। यहाँ पर अपने पिता के पुराने अर्दली को देखकर जो अब बिलकुल बूढ़ा हो गया था, मुझे बड़ा आश्चर्य एवं कुतूहल हुआ। इस समय इसकी अवस्था लगभग ४५ या ४६ वर्ष की थी।

यहीं जहाँ इस समय हम लोग बैठे हुए हैं, मैंने इसे अपने साथ ही भोजन कराया। उस समय बाहर बड़े वेग से वर्षा हो रही थी। छत पर और दीवार और खिड़कियों पर बौछारें बड़े ज़ोर से पड़ रही थीं। और अस्तबल में मेरा कुत्ता इसी प्रकार चिल्ला रहा था। जैसे इस समय ये कुत्ते आफ़त मचाये हुए हैं।

जैसे ही बुढ़िया नौकरानी सोने चली गई, यह बूढ़ा बोल उठा।

'सरकार'

'कहो जीन'

'मुझे आपसे कुछ कहना है।'

'कहो, कहो, क्या बात है' ?

'वह—क्या कहूँ बड़ा कष्ट होता है।'

'ख़ैर—कहो तो'।

'आपको मेरी स्त्री—लूसी की याद है' ?

'हाँ! हाँ! मुझे याद है'।

'उसने आपसे कुछ कहने को कहा था'।

'क्या' ?

'अ—अ—आप इसे एक प्रकार का 'कन्फ़ेशन' ही समझिए'।

'तो क्या बात है' ?

'मैं—मैं—तो चाहता हूँ कि न कहूँ—परन्तु कहना ही पड़ेगा।'

'वह-सरकार! क्षय-रोग से नहीं मरी, बरन दुख के कारण मरी। यह बात बिलकुल अन्त में मालूम हुई। वह जैसे ही यहाँ आई कि बिलकुल ही बदल गई। छः महीने में ही पहचानी नहीं जाती थी। इतना परिवर्तन हो गया कि क्या बताऊँ? मैंने डाक्टर को बुलवाया—उसने कहा, दिल की बीमारी है। मैंने सैकड़ों रुपये की दवा ख़रीद डाली, पर वह उन्हें खाना ही नहीं चाहती थी—उसने कहा 'प्यारे! ये सब व्यर्थ में क्यों कर रहे हो? इसका कुछ भी अच्छा परिणाम न होगा।

'और मैंने भी देखा कि भीतर कोई गुप्त बीमारी अवश्य थी। वह प्रायः पड़ी-पड़ी रोया करती थी। मुझे सूझ ही नहीं पड़ता था कि क्या करूँ। मैं इसके लिए तरह तरह के कपड़े, तथा श्रृङ्गार की चीज़ें भी ले आया कि किसी प्रकार उसका दिल बहल जाय। पर सब व्यर्थ हुआ। तब मैं समझ गया कि वह बच नहीं सकती थी।

'एक दिन नवम्बर में रात के समय जब ख़ूब बरफ़ गिर रही थी और दिन भर वह उठ न सकी थी, वह मुझसे बोली कि एक पुरोहित को बुला लाओ। मैं जाकर बुला लाया। वह जैसे ही आ गया, तैसे ही वह कहने लगी—देखो जीन! मैंने तुम्हें कभी भी धोखा नहीं दिया है—कभी नहीं। न कभी ब्याह के पहले और न उसके पश्चात्। ये पुरोहितजी जो मेरी आत्मा को जानते हैं यही मेरे साक्षी हैं। यदि मेरी मृत्यु हो गई तो इसका कारण यह था कि मैं 'उस' बँगले से हट कर जी नहीं सकती थी। क्योंकि मेरे हृदय में 'बैरन दुर्ब्रेली' के लिए अत्यन्त स्नेह था—बहुत ही अधिक स्नेह था समझे? बस केवल स्नेह और कुछ भी नहीं। बस यही मुझे खाये जाता है। जब मैं उनके दर्शनों से भी वञ्चित हो गई तभी मैं समझ गई कि अब जीना कठिन है। यदि उनके दर्शन हो जाते तो अवश्य बच जाती। बस केवल दर्शन और कुछ नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ कि जब मैं न रहूँ तब तुम एक दिन उनसे यह कह देना। अवश्य कहोगे न? अच्छा शपथ खाओ कि अवश्य कह दोगे। अच्छा तो पुरोहित के सामने शपथ खाओ यदि वे जान जायँगे कि मैं उन्हीं के कारण मरी तो मेरी आत्मा को अवश्य सन्तोष होगा। अच्छा बस शपथ खाओ।

'तब सरकार! मैंने वचन दे दिया। और मैंने अत्यन्त सचाई से अपना वचन पालन किया है'।

यह कह कर वह चुप हो गया और मेरी आँखों की ओर घूरने लगा।

तुम तो अनुमान भी नहीं कर सकते कि उस विकट रात में इसकी यह करुणाजनक कहानी सुन कर मेरे हृदय में कैसे कैसे भाव उठे होंगे?

बस मैं तो केवल 'जीन! जीन!' चिल्ला पड़ा। वह धीरे से कह उठा—अब तो जो होना था सो हो चुका। हम लोग कर ही क्या सकते हैं? सब कुछ हो चुका!

उसका हाथ पकड़ कर बस मैं रोने लगा।

उसने पूछा—'क्या उसकी क़ब्र देखोगे?

मैंने धीरे से सिर हिला दिया—कुछ बोल तो सकता ही न था।

उसने उठके बत्ती जलाई और उस विकट अँधेरी रात में जब वेग से बड़ी बड़ी बूँदें गिर रही थीं हम और वह दोनों जन उसी टिमटिमाते प्रकाश में चल पड़े। उसने फाटक खोल दिया और मुझे सामने कुछ काले-काले लकड़ी के 'क्रास' देख पड़े। वह सहसा कह उठा।

"बस यही है।" और एक क़ब्र पर संगमरमर का पत्थर लगा हुआ था उसी पर उसने लालटेन रख दी कि मैं उस पर खुदे अक्षर पढ़ सकूँ।

'लूसी हॉर्टेन्सी मेरिनेट
किसान 'जीन फ्रान्सो' की स्त्री थी।
वह अत्यन्त पति-परायणा पत्नी थी
परमात्मा उसकी आत्मा को शान्ति दे।'

बत्ती के दोनों ओर हम दोनों कीचड़ में ही घुटने टेक कर खड़े हो गये। मेरी आँखें संगमरमर की शिला पर गिरकर बिखर जानेवाली वर्षा की बूँदों को देख रही थीं और चित्त उस मृत ललना के हृदय की स्नेह-भरी पवित्रता की कल्पना कर रहा था।

तब से मैं प्रतिवर्ष यहाँ आता हूँ। और न जाने क्यों मैं स्वयं ही इस किसान के सामने अपने आपको अपराधी-सा समझने लगता हूँ, यद्यपि इसके नेत्र सदा ही क्षमा-शीलता से भरे रहते हैं।*

—ललिताप्रसाद सुकुल

* एक फ्रेञ्च कहानी के आधार पर।
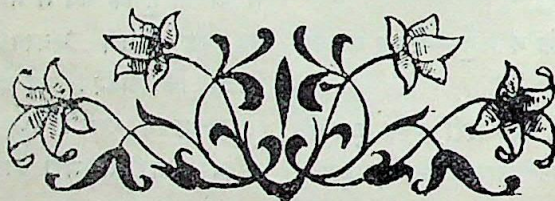
बाड़ोली के प्राचीन शिव-मन्दिर

संसार का इतिहास मानव-जाति के उत्थान-पतन का इतिहास है। संसार की सभी जातियों को प्रकृति के उत्थान और पतन के रहस्य का अनुभव करना पड़ा है। परन्तु खेद की बात है कि वह सारा का सारा इतिहास आज हमें उपलब्ध नहीं। उसका अधिकांश काल के गाल में समा गया है। उसका जो अंश हमें उपलब्ध है वह केवल कुछ महापुरुषों की प्राचीन कृतियों से ही सुलभ है। इस सम्बन्ध में उनके द्वारा निर्मित बड़े बड़े मन्दिरों और दुर्गों को विशेष महत्त्व प्राप्त है। यदि उनकी बनवाई हुई प्राचीन इमारतें सदियों की वर्षा-धूप सह कर बच न रह जातीं तो आज उनके निर्माता पुरुषों का पता हमें कैसे होता। फलतः ऐसी ही प्राचीन कृतियों के द्वारा हम अपने भूतकालीन इतिहास का जो ज्ञान प्राप्त करते हैं उसका अधिकांश हमें प्राचीन ध्वंसावशेषों से ही प्राप्त हो रहा है। अतएव इस सम्बन्ध में वे महापुरुष वास्तव में महापुरुष हैं, क्योंकि उनकी उत्कृष्ट महान् रचनायें भूतकाल की जातियों की उच्च संस्कृतियों का इतिहास प्रकट करती हैं।

अन्य देशों की भाँति भारत में भी यहाँ के महापुरुषों ने अपनी कीर्ति अक्षुण्ण व स्मृति-शेष रखने के विचार से प्रसिद्ध व सर्वोत्कृष्ट शिल्पियों-द्वारा अपार धन-राशि व्यय कर अपने आराध्य देवों के देवालय निर्माण कराये थे। उनका विश्वास था कि उनके इस काम से उनकी सभ्यता व उनके धार्मिक

[साहित्यरंजन कुँवर हिम्मतसिंहजी, भैंसरोड़गढ़, मेवाड़]

भावों का संसार को परिचय होगा, साथ ही उनके गगनचुंबी देवालयों व प्रासादों से उनकी कीर्ति चिरस्थायी
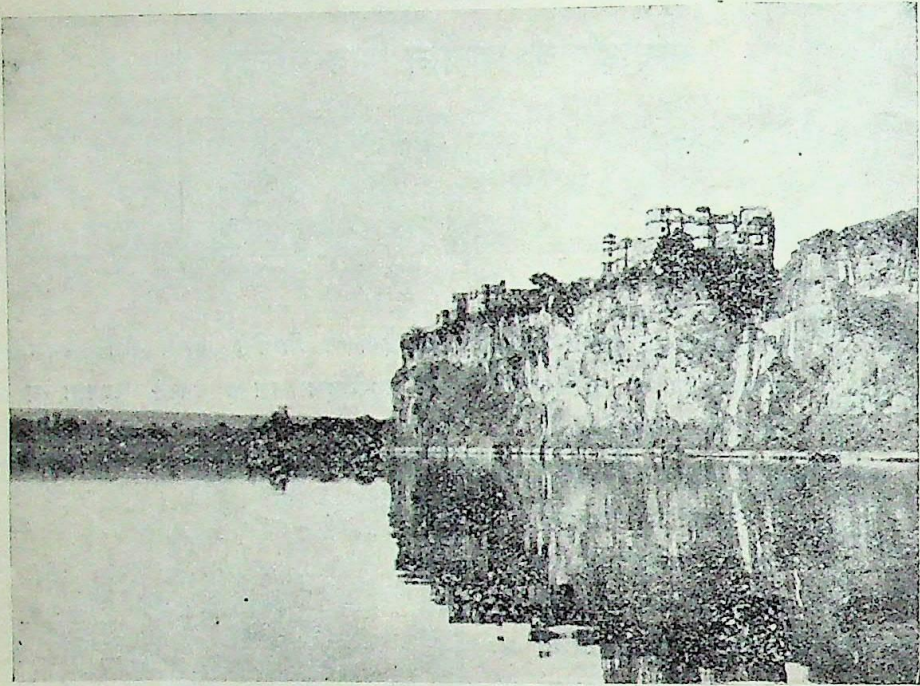
[भैंसरोड़गढ़ का राजप्रासाद और चम्बल-नदी का दृश्य]
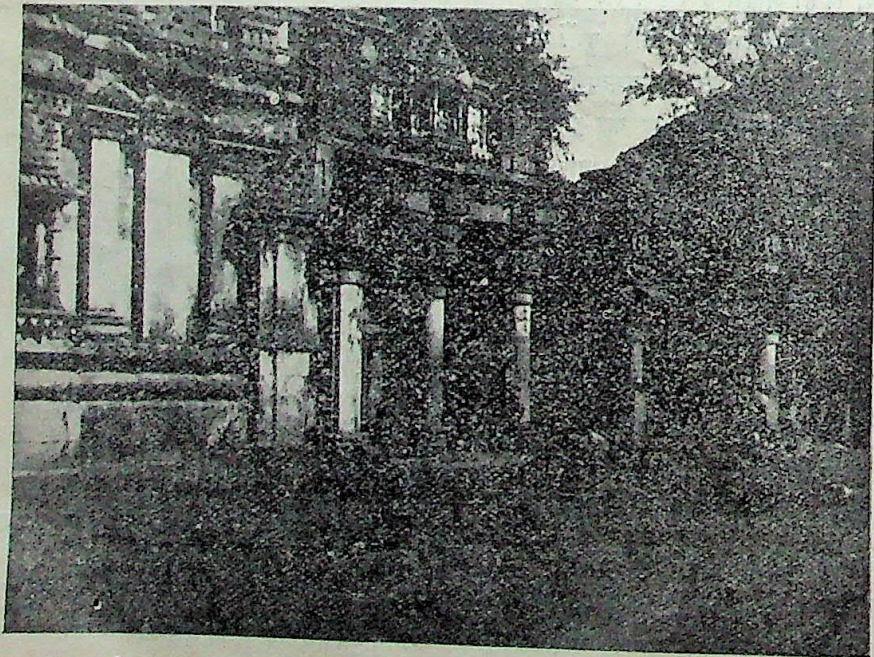
[घटेश्वर-मन्दिर और हूणराज की चौंरी का एक दृश्य]

होगी। परन्तु हमारी शताब्दियों की निर्बलता और विधर्मियों के आक्रमण तथा अन्य दैवी प्रकोपों से हमारे पूर्वजों के वे देवोपम मन्दिर आदि धराशायी हो गये हैं, केवल उनके ध्वंसावशेष रह गये हैं। तो भी उनकी अत्यंत कठोर पाषाणों पर की हुई तक्षण-कला हमारे नेत्रों को तृप्त करती है और हमें अपने प्राचीन गौरव की याद दिलाती है। यही नहीं, सात समुद्र के पार रहनेवाले संसार के प्रसिद्ध

इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़राज्य में 'भैंसरोड़गढ़' नाम का एक ठिकाना है। ठिकाने के दुर्ग से आग्नेय कोण में चम्बल-नदी के पार तीन मील के अन्तर पर जङ्गल के भीतर हूण-राज की उक्त रचना आज भी उसके गौरव का गान कर रही है। वह रचना इस समय यहाँ बाड़ोली के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ के मन्दिरों में शिव आदि की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनसे प्रकट होता है कि
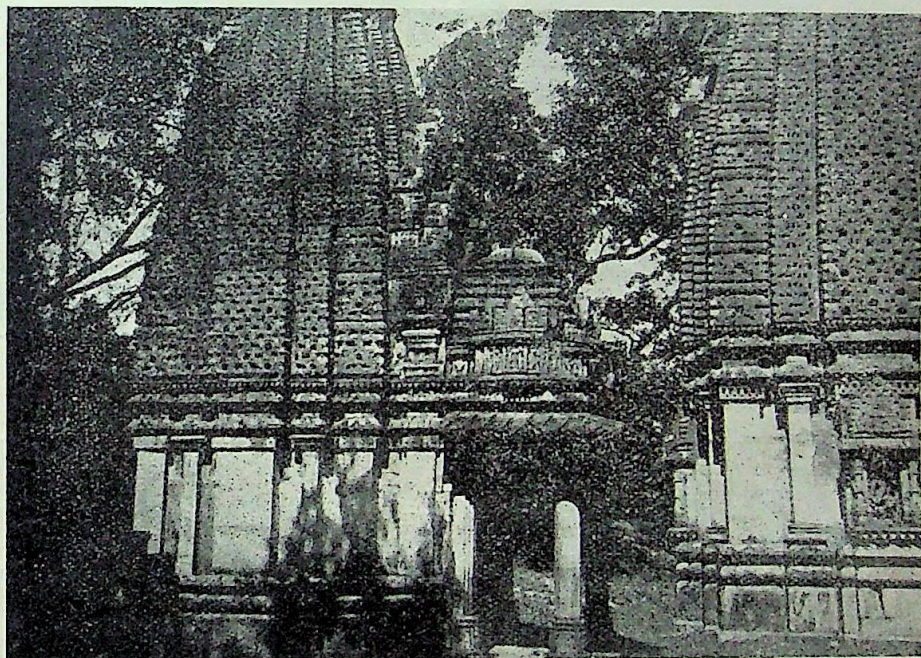
[घटेश्वर-मन्दिर के पास भगवती पार्वती का मन्दिर]

पुरातत्ववेत्ता तक को घोर परिश्रम व अपार धन के व्यय से निर्मित उन विचित्र और भव्य मन्दिरों के भग्नावशेष मुग्ध करते हैं। हमारा भारत ऐसे ही प्राचीन ध्वंसावशेषों का आकर है। उसमें उसकी अपनी संस्कृति के निदर्शक ही भव्य कृतियों के ध्वंसावशेष सुरक्षित नहीं हैं, किन्तु कतिपय विदेशी महापुरुषों की भी कृतियाँ यहाँ विद्यमान हैं। इस लेख में हम ऐसे ही एक महापुरुष की रचना का सचित्र वर्णन करेंगे। यह चारु रचना हूणराज मिहिरकुल की है।

इन देवालयों का निर्माता सम्राट् मिहिरकुल हूण परम शिवभक्त था।

हूण लोग मध्य-एशिया के रहनेवाले थे। अपने अभ्युदयकाल में इन लोगों ने एशिया और योरप के कई देशों को विजय किया था और उन विजित देशों पर अपना अधिकार भी जमा लिया था। चीनी ग्रन्थकारों ने यून् यून् यूनानी इतिहास-लेखकों ने उन्नोई और भारतीयों ने हूण और श्वेत हूण के नाम से इन लोगों का उल्लेख
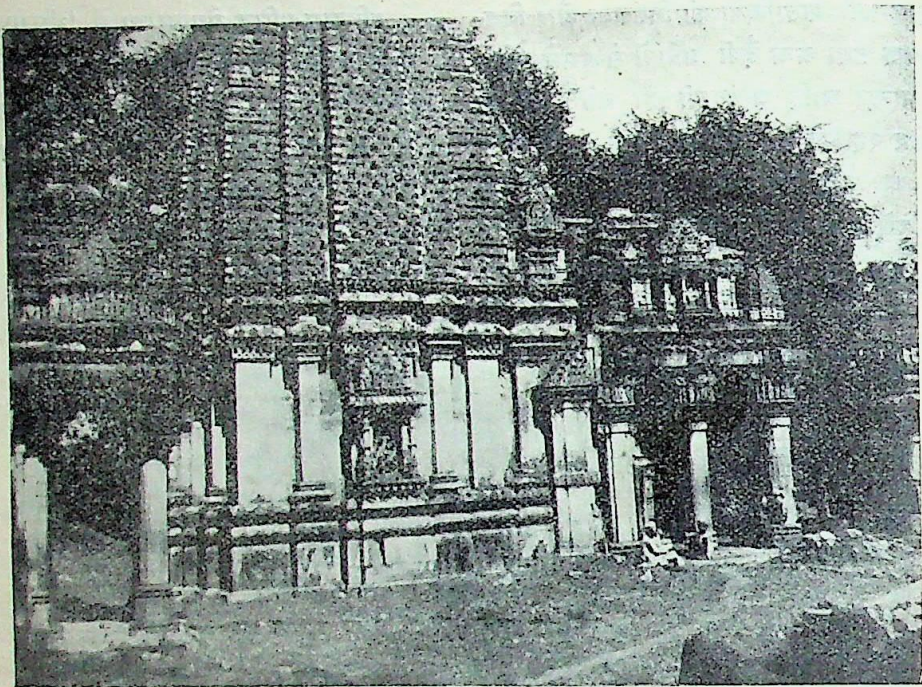
[घटेश्वर महादेव के मन्दिर का एक पार्श्व भाग]

[घटेश्वर महादेव के मन्दिर के सामने स्थित यज्ञ-मण्डप का एक दृश्य—इसको आज भी लोग हूणराज की चौंरी कहते हैं]

किया है। महाभारत तथा पुराणों में भी हूणों का उल्लेख मिलता है। मध्य-एशिया से भारत में इनका आना विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक नहीं पाया जाता। मध्य-एशिया में बौद्ध-धर्म का प्राबल्य था। हूणों ने भी बौद्ध-धर्म स्वीकार किया था। इसी धर्म-द्वेष के कारण ब्राह्मण लेखकों ने मध्य-एशिया की अन्य जातियों के साथ साथ हूणों की भी गणना म्लेच्छों में की।

विक्रमी संवत् ४७७ के आस-पास मध्य-एशिया की वैच नदी के पास रहने वाली हूण-जाति ने ईरान के ससानिमन् वंशी राजाओं से लड़ना प्रारम्भ किया और (दूसरे) मजज़र्द (विक्रमी संवत् ४६९-५१४) और फ़ीरोज (विक्रमी संवत् ५१४-५४१) को परास्त कर उनका ख़ज़ाना लूटा और उनका कुछ देश भी अपने अधीन किया। फिर ये लोग भारत की ओर मुड़े और गांधारदेश को विजय कर शाकल नगर को अपनी राजधानी बनाया और क्रमशः आगे बढ़ते गये। चीनी यात्री सुंगयुन् विक्रमी संवत् ५७७ में गांधार में आया था। वह लिखता है कि यहाँ का राजा एथोलेटो हूण है जो बड़ा योद्धा है। उसकी सेना में ७०० हाथी रहते हैं। हूणों ने गांधार में लेलिह को अपना राजा बनाया था। वर्तमान राजा तीसरा राजा है। विक्रम-संवत् ५६७ के आस-पास हूणराज तोरमाण ने गुप्तवंशी राजा भानुगुप्त से मालवा, राजपूताना आदि देश छीन लिये थे। इसी तोरमाण का उत्तराधिकारी मिहिरकुल बड़ा प्रतापी राजा हुआ। इसके चाँदी के सिक्कों पर 'जयतु वृषभध्वज' लेख के अतिरिक्त त्रिशूल, वृष (नन्दी) और छत्र के चिह्न हैं, जो उसका शैव होना प्रकट करते हैं। इन सब उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मिहिरकुल की राजधानी शाकल नगर (पंजाब) में थी। इसके सिवा एक हंगेरीनिवासी पादरी साहब का कहना है कि मिहिरकुल की राजधानी ग्वालियर थी और वह बाड़ोली में अपने इष्टदेव के मन्दिरों के निर्माण कराने में और उनके बन जाने के बाद भी बहुत समय तक रहा था। ये पादरी साहब अपने को हूण-वंशी कहते हैं इस प्रकार उसने बाड़ोली को अपनी उपराजधानी बना दिया था। इस बात के प्रमाण-स्वरूप बाड़ोली से कुछ फ़ासले पर हूणों के एक क़िले के भग्नावशेष मिलते हैं। मिहिरकुल पहले बौद्ध-धर्मानुयायी था। किन्तु पीछे से वह बौद्ध साधुओं से अप्रसन्न हो गया और उन पर अत्याचार करने लगा था, यहाँ तक कि बौद्ध-धर्म को समूल
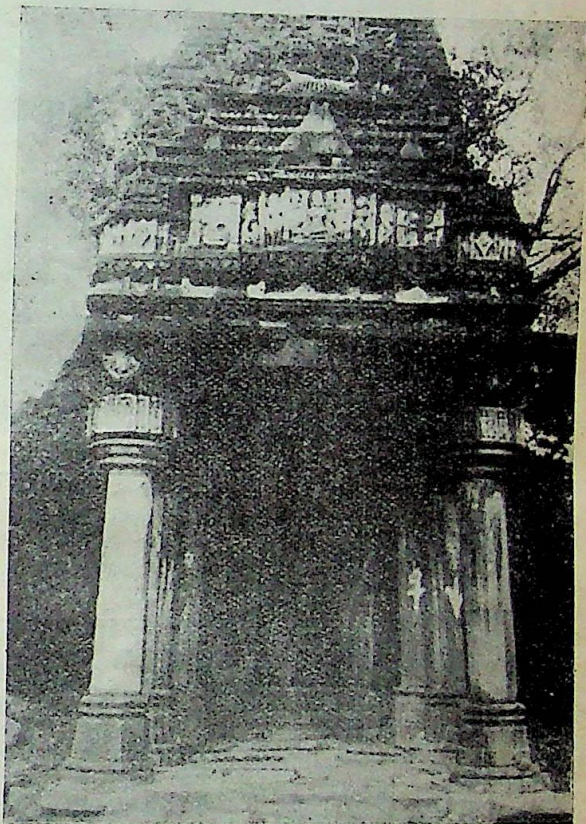
[भगवती का मन्दिर]
(इस मन्दिर की देवी की मूर्ति खण्डित है।)

नष्ट कर देने का भी प्रयत्न किया था। उसने गांधारदेश में बौद्धों के १६०० स्तूप और मठ तुड़वा दिये थे। इसके साथ ही कई लक्ष मनुष्यों का वध भी करवा दिया था। कहा जाता है कि वह बड़ा निर्दय था। शिव का अनन्य भक्त हो जाने से वह शिव को छोड़कर और किसी के आगे नतमस्तक नहीं होता था। इसी शिव-भक्ति की प्रेरणा से उसने विक्रम-संवत् ५७० और ५७५
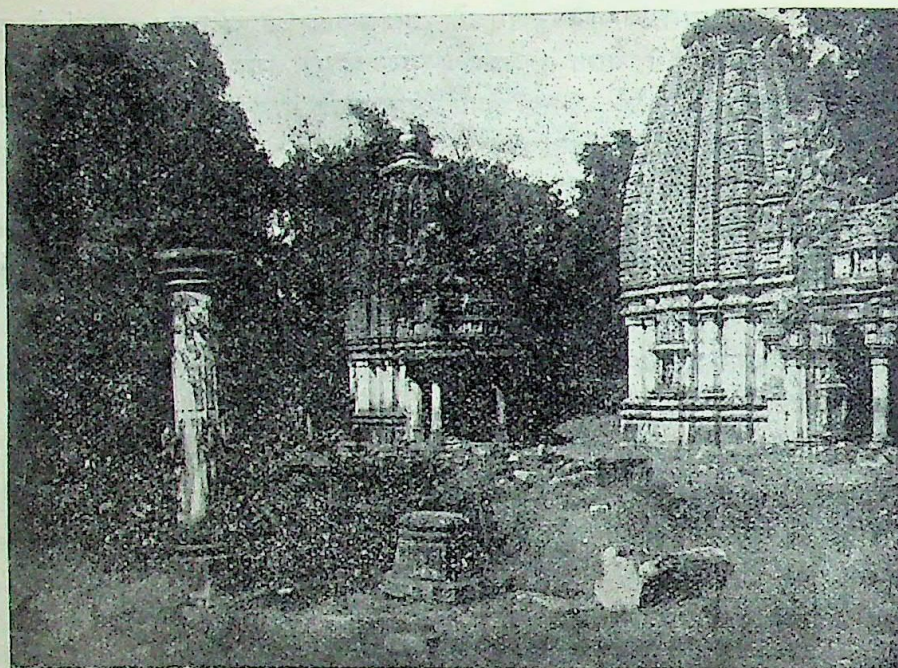
[देवी का मन्दिर, लकुटेश्वर त्रिमूर्ति महादेव तथा तोरण का स्तम्भ]
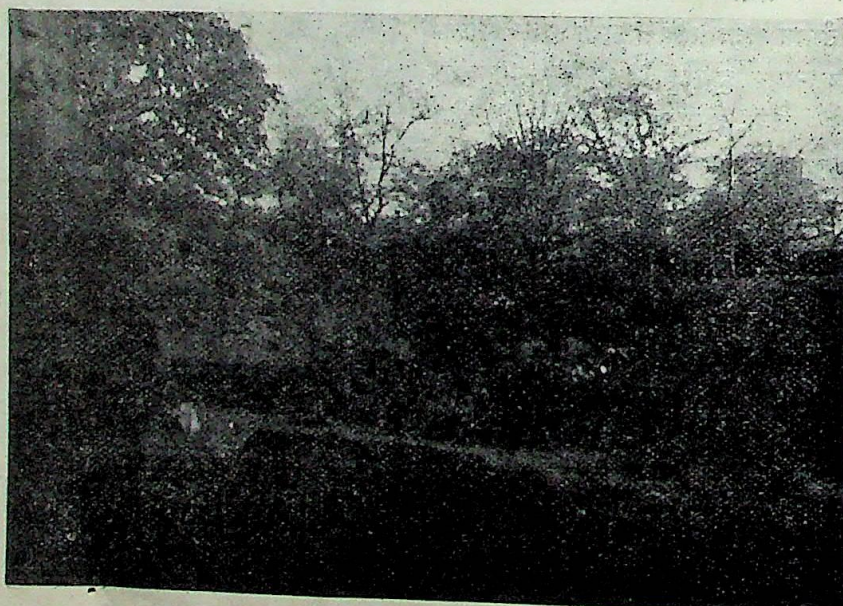
[प्राकृतिक दृश्य बाड़ोली]

के आस-पास बाड़ोली में शिवालय का निर्माण कर अपनी विजय और प्रगाढ़ शैव होने का ज्वलन्त उदाहरण दिया।

हूणराज मिहिरकुल के ये प्राचीन मन्दिर एक २५० फ़ुट लम्बे-चौड़े आहाते के भीतर बने हुए हैं। इनके

[शेषशायी नारायण के मन्दिर के भीतर की खण्डित मूर्ति का चित्र]

चारों तरफ़ क़िले सा कोट और बुर्ज भी थे, जो अब खण्डहर के रूप में गिरे पड़े हैं। इस स्थान के आस-पास का वनवृक्ष गुल्म-लता आदि से ऐसा आच्छादित है कि जेष्ठ की धूप यहाँ अपना प्रभाव नहीं जमा सकती। अनेक द्रुम-समूहों की सघन छाया होने से यहाँ भगवान् अंशुमाली की प्रखर रश्मियों के भी दर्शन नहीं होते। यह स्थान मानो राजपूताने का 'नन्दन-कानन' है। इसकी यहाँ के लोग कैलास से उपमा देते हैं। आहाते के बाहर एक जल-कुंड है, जिसके बीच में एक शिवालय बना हुआ है। कुमुदिनी से पूर्ण जलकुंड के मध्य में यह देवमन्दिर अपनी सुन्दरता और प्राचीनता दोनों का दिग्दर्शन कराता है। इसके दक्षिण-पार्श्व में भगवान् शेषशायी नारायण का मन्दिर है। इसकी नारायण की मूर्ति भारत में ही नहीं, समस्त विश्व में अपने ढङ्ग की एक मूर्ति है। उसकी तक्षण-कला के विषय में कई एक प्रसिद्ध योरपीय पुरातत्त्ववेत्ताओं की यह सम्मति है कि यह भारत भर में अद्वितीय हिन्दू-मन्दिर है।

शेषशायी नारायण का दर्शन करके यात्री आहाते के भीतर प्रवेश करता है। वहाँ घटेश्वर महादेव का बड़ा
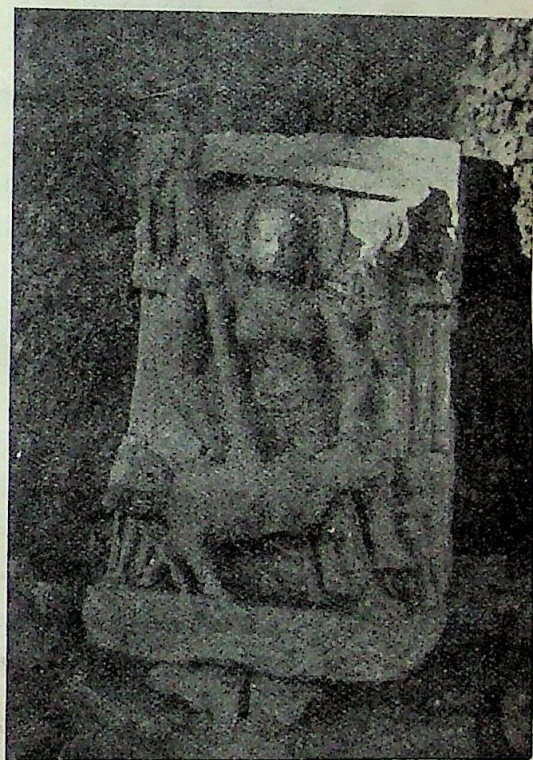
[घटेश्वर के पास के प्रधान देवी-मन्दिर के भीतर की देवी की खण्डित मूर्ति का चित्र]

मन्दिर दृष्टिगत होता है। इस मन्दिर के सामने जो सभामंडप है उसे आज भी 'हूण की चौंरी' कहते हैं। यही मन्दिर यहाँ का सबसे बड़ा मन्दिर है। इसके निर्माण में अद्वितीय तक्षण-कला का निदर्शन किया गया

है। मन्दिर के प्रत्येक स्तम्भ पर और मन्दिर के प्रत्येक पत्थर पर नाना प्रकार की सुन्दर मूर्तियाँ क्रमबद्ध खड़ी की गई हैं। ये सब नाना प्रकार के वाद्यों और गायन के उपकरणों को अपने हाथों में लिये हुए हैं, मानो भगवान् शूलपाणि के किसी नाटक का अभिनय कर रही हैं।
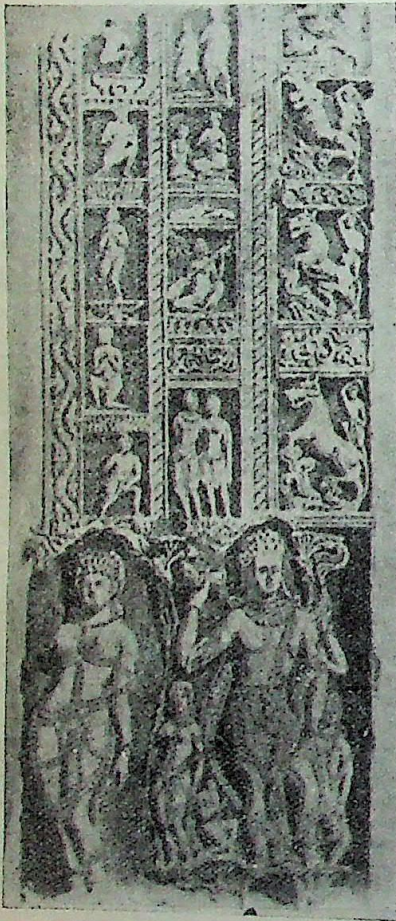
[घटेश्वर मन्दिर की चित्रकारी का एक नमूना]

नीचे से ऊपर शिखर तक मन्दिर का प्रत्येक पत्थर बिना चूने की लाग के ऐसा जमाया गया है जो किसी भी तरह वैसा मज़बूत चूने से भी नहीं जमाया जा सकता। इस मुख्य मंदिर के दक्षिण एक दूसरा मंदिर श्रीलकुटेश्वर महादेव का है। यह भी एक बड़ा मन्दिर है। इसकी भी शिल्पकला अनुपम है। प्रधान मन्दिर घटेश्वर के पार्श्व में देवर्षि नारद का एक छोटा मन्दिर और पास ही श्रीभगवती पार्वती का विशाल मन्दिर है। इन मन्दिरों की भी रचना में घटेश्वर के मन्दिर का सा ही शिल्प-चातुर्य प्रकट किया गया है। यद्यपि अब इन मन्दिरों की पहले की सी शोभा नहीं रह गई है और उनमें की कतिपय उत्कृष्ट मूर्तियाँ भग्न हो गई हैं, तथापि उनकी विशेषता उनकी इस अवस्था में भी दृष्टिगत हो जाती है। घटेश्वर के मंदिर के उत्तर में भगवान् गजानन का भी एक मंदिर है और इसके पास ही श्रीहनुमान्‌जी की भी एक विशाल प्रतिमा विराजमान है। हनूमान की मूर्ति के पीछे २५ फ़ुट के अंतर पर एक वापी है, जिसका जल अत्यन्त शीतल रहता है। इन मन्दिरों के बीच (मध्य) में दो स्तम्भ तोरण के बने हुए हैं, जिनमें एक खड़ा है और एक टूटा हुआ पड़ा है। पास में ही सप्तमातृका प्रभृति अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। इन सब मंदिरों की तक्षण-कला का विशद वर्णन करने के लिए एक बड़े भारी पोथे की ज़रूरत है। यहाँ केवल इनका उल्लेख भर किया गया है। यह स्थान प्राचीन शिल्पकला-प्रेमियों के देखने योग्य है।

इन मंदिरों की मूर्तियों की अर्चा-पूजा का आज भी समुचित प्रबन्ध है। भैंसरोड़गढ़ के अधिपति की तरफ़ से इन मूर्तियों की पूजा आदि के लिए 'बाड़ोली' नामक मौज़ा लगा हुआ है, जो नाथ साधु के अधिकार में है। उसी ग्राम की आमदनी से मंदिरों की बराबर पूजा होती और भोग लगता है। ये मंदिर जब से बने हैं, वैसी ही स्थिति में आज भी हैं। १५०० वर्ष से ये मंदिर ज्यों के त्यों खड़े हैं। किन्तु इन मंदिरों के स्तम्भों व दीवारों पर तक्षण-कला-युक्त जो अनेक देवी-देवता-गंधर्व-देवाङ्गना-किन्नरियों आदि की मूर्तियाँ अभिनय-सा करती हुई दिखाई गई हैं वे प्रायः सब खंडित कर दी गई हैं। तो भी अवशिष्ट मूर्तियाँ दर्शनीय हैं, जो अतीत काल के हमारे देश के शिल्प-कला-कोविदों के अथक परिश्रम व हस्तकौशल का दिग्दर्शन करा रही हैं। इन मंदिरों को प्रसिद्ध मूर्तिभञ्जक महमूद ग़ज़नवी ने तोड़ा-फोड़ा था। सोमनाथ का मंदिर

तोड़ कर जब वह जाने लगा था तब वह इन मंदिरों को तोड़ता हुआ गया था। कर्नल टाड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है कि बाड़ोली के मंदिरों की भव्य और विचित्र रचना का यथावत् वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। यहाँ मानो कारीगरी का कोष ख़ाली कर दिया

[नाग-स्तम्भ]
(आहाते के बाहर आहाते और जल-कुण्ड के बीच में यह स्थित है। यह स्तम्भ विलायत गया था। वहाँ से स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह ने वापस मँगा लिया था)

गया है। बाड़ोली के मंदिरों के स्तम्भों, छतों और शिखरों का प्रत्येक पत्थर छोटे से मंदिर का अलौकिक दृश्य बतलाता है। हर एक स्तम्भ पर खुदाई का काम इतना सुन्दर और बारीकी के साथ किया गया है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। ये मंदिर सैकड़ों वर्षों के पुराने होने पर भी अब तक अच्छी हालत में खड़े हैं।

इसी प्रकार प्रसिद्ध तक्षण-कला-विशारद फ़र्गुसन साहब का कहना है कि उनकी देखी हुई हिन्दू-देव-मूर्तियों में यहाँ की शेषशायी नारायण की मूर्ति एक सर्वश्रेष्ठ मूर्ति है।

महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा ने भी अपने राजपूताने के इतिहास में बाड़ोली के विषय में लिखा है कि मेवाड़ में ही नहीं, किन्तु भारतवर्ष में भी
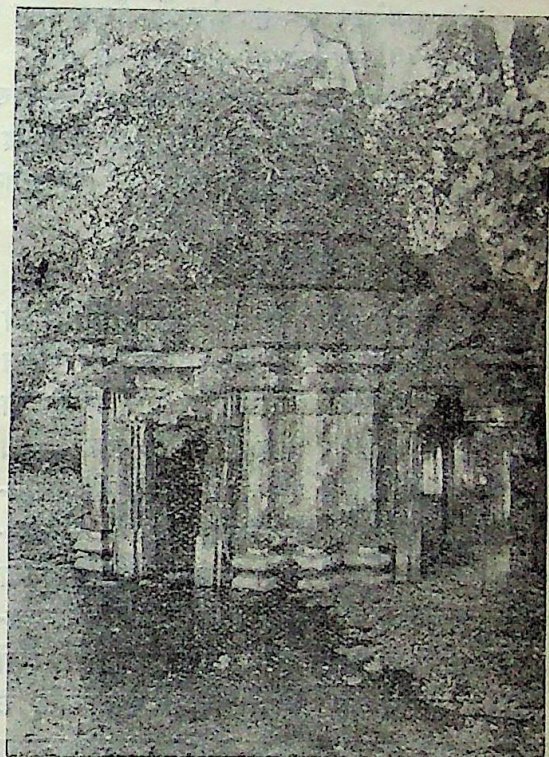
[जलकुण्ड के भीतर महादेव का मन्दिर]

कारीगरी के विचार से इन मंदिरों की समता करनेवाले आबू का प्रसिद्ध जैन-मंदिर तथा नागदा (मेवाड़) का 'सास का मंदिर' को छोड़ कर और कोई नहीं है।

—कुँवर हिम्मतसिंह

क्या भारत पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ बनेगा ?

[लेखक महोदय ने प्रस्तुत लेख में वर्तमान समय के भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित स्वेच्छाचारी और पञ्चायती शासन-प्रणाली की रूप-रेखा का दिग्दर्शन कराया है। इसमें उन्होंने पञ्चायती सरकार में राष्ट्रीय सरकार, और न्यायालयों के अधिकार की आलोचना बहुत ही सुन्दररूप में की है। अमेरिका के संयुक्त-राज्य के पञ्चायती शासन-विधान की विशेषता बतलाते हुए लेखक ने यह दर्शाया है कि देशी रियासतों और ब्रिटिश-भारत के बीच पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ स्थापित हो सकता है यदि वह सम्राट् की सरकार तथा देशी रजवाड़ों को मंजूर हो।]

वर्गीकरण

संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में जो शासन-प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनका वर्गीकरण दो श्रेणियों में हो सकता है। एक तो उन देशों की शासन-प्रणालियाँ जिनमें स्वेच्छाचारी सरकार की प्रधानता है और दूसरी ऐसी शासन-प्रणालियाँ जिनका सञ्चालन लोकमत-द्वारा होता है। पहली श्रेणी के देशों में राष्ट्र के शासन की बागडोर किसी एक व्यक्ति के हाथ में होती है अथवा किसी व्यक्ति या संस्था-द्वारा सङ्गठित किसी ऐसी संस्था के हाथ में होती है जिसकी रचना में देश की जनता का कुछ भी हाथ नहीं रहता। ऐसी संस्था-द्वारा देश पर उस व्यक्ति अथवा संगठित संस्था का स्वेच्छाचारी शासन होता है। दूसरी श्रेणी के देशों में राष्ट्र की प्रभुत्व-शक्ति जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों में रहती है और उन प्रतिनिधियों के द्वारा जनता देश पर शासन-कार्य का सञ्चालन करती है। इस लोकप्रिय शासन को पञ्चायती शासन-प्रणाली कह सकते हैं, क्योंकि ऐसी सरकार बिना जनता के बहुमत को प्राप्त किये हुए बहुत दिनों तक न्यायतः नहीं टिक सकती। स्वेच्छाचारी शासन के उदाहरण ईरान, अफ़ग़ानिस्तान, अबीसीनिया, स्याम, नेपाल आदि देश हैं।

जिन दो श्रेणियों को शासन-प्रणालियों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनकी अनेक शाखायें-प्रशाखायें हैं। प्रस्तुत लेख में दूसरी श्रेणी के अन्तर्गत पञ्चायती शासन-प्रणाली के रूप का उल्लेख किया गया है।

राष्ट्रपुञ्ज

पञ्चायती शासन-सङ्घ के निर्माण के लिए अनेक देशों के एक ऐसे समुदाय की आवश्यकता होती है जिनके अधिवासियों की एक व्यापक संस्कृति हो और जिन पर भौगोलिक परिस्थितियों और ऐतिहासिक सम्बन्धों के कारण एक-जातीयता की छाप हो। इस शासन-प्रणाली की जरूरत उस देश में होती है जो वास्तव में एक बड़ा देश होता है, किन्तु छोटे छोटे अनेक स्वतन्त्र भागों में बँटा हुआ होता है। इन छोटे छोटे भागों को हम छोटे छोटे राष्ट्र कह सकते हैं। बाहरी बड़े राष्ट्रों के हमलों से ये छोटे राष्ट्र अपनी

रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। साथ ही परिमित आमदनी के होने से ये अपनी शक्ति से परे आवश्यक बड़ी सेना रखने और अपने देश की उन्नति के व्ययसाध्य साधनों से लाभ उठाने में असमर्थ होते हैं। अपनी इस असहायावस्था से त्राण पाने के उद्देश से ही इनको अपनी स्वतन्त्रता को क़ायम रखते हुए एक ऐसे बड़े राष्ट्र के निर्माण की ज़रूरत पड़ती है जो सङ्कट के अवसर पर उनकी सहायता करे और संसार की महती शक्तियों के साथ बैठकर विश्व के मामलों में उनका प्रतिनिधित्व भी करे। वह सङ्घ में शामिल राष्ट्रों की स्वाधीनता की रक्षा ही नहीं करेगा, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण हो जायगी। इसी से अनेक छोटे छोटे राष्ट्र स्वतः समझौता करके पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अमरीका के संयुक्त-राज्य हैं। परन्तु सभी तरह की रियासतें मिलकर पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण नहीं करतीं। यदि यह बात होती तो योरप और एशिया के सभी बड़े बड़े राष्ट्र मिलकर पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण कर लेते। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में केवल वही रियासतें सम्मिलित होकर सङ्घ का निर्माण करती हैं जो देशीय, ऐतिहासिक और जातीय अथवा अन्य किसी दृष्टि से परस्पर इस प्रकार हिली-मिली रहती हैं कि उनके अधिवासी आपस में एक-जातीयता के सूत्र में बँधे रहने का अनुभव करते हैं। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घों का निर्माण अकारण नहीं, बरन सदा सकारण ही हुआ करता है।

सहकार की अभिलाषा

जिन देशों को राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण करना अभीष्ट हो उनमें पारस्परिक सहकार की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। बिना इस इच्छा के राष्ट्र-सङ्घ का निर्माण असम्भव है। उन देशों में एकता के सूत्र में बँधने की तो प्रबल इच्छा होनी ही चाहिए, साथ ही यह भी टेक रहनी चाहिए कि अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता बनी रहे। अगर इस दृढ़ता का अभाव रहा तो वह राष्ट्र-सङ्घ का नहीं, बरन एक राष्ट्र अथवा साम्राज्य का निर्माण होगा, जिसमें छोटी-छोटी रियासतें अपने अस्तित्व को एक बड़े राष्ट्र में तिरोहित कर देंगी अथवा पराधीन होकर किसी बड़े राष्ट्र का एक प्रान्त बनेंगी। अतएव स्वतन्त्र पंचायती राष्ट्र के निर्माण के लिए विभिन्न रियासतों के अधिवासियों में दो भावों की प्रधानता होनी चाहिए। प्रथम तो यह कि कतिपय उद्देशों के साधनार्थ पारस्परिक सहकार से एक विशाल राष्ट्र के निर्माण की अभिलाषा और दूसरा यह कि उस विशाल राष्ट्र में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे। उसकी पंचायती शासन-प्रणाली का लक्ष्य इन दोनों भावों को कार्यरूप में परिणत करना होगा।

राष्ट्रीय सरकार

इन्हीं दोनों भावों की रक्षा के उद्देश से पंचायती शासन-प्रणाली के अनुसार एक राष्ट्रीय सरकार का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है। राष्ट्र-सङ्घ में शामिल होनेवाली रियासतें ही इस प्रकार की सरकार का निर्माण करती हैं। इस सरकार के अधीन उन समस्त विषयों का शासन रहता है जिनका सम्बन्ध सामूहिक रूप से समस्त राष्ट्र से होता है। जिन विषयों का सम्बन्ध समस्त रियासतों से सामूहिक रूप से नहीं, बरन व्यक्तिगत रूप से होता है वे विषय रियासतों की स्थानीय सरकारों के अधीन रहते हैं। अपने आभ्यन्तरिक शासन के सम्बन्ध में रियासतें उस हद तक पूर्ण स्वतन्त्र रहती हैं जिस हद तक पञ्चायती शासन-विधान-द्वारा उनका अधिकार निर्धारित कर दिया जाता है। राष्ट्रीय सरकार भी रियासतों के शासन में केवल उसी हद तक हस्तक्षेप कर सकती है जिस हद तक उस शासन-विधान-द्वारा अधिकार प्राप्त होता है।

शासन-विधान की सर्वमान्यता

अतएव पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण में शासन-विधान मुख्य चीज़ है। उसका अस्तित्व ही एक

शासन-विधान के आधार पर होता है। केन्द्रस्थ सरकार और स्थानीय सरकारों की समस्त कार्यकारिणी समितियों, व्यवस्थापिका सभाओं और न्याय-विभागों का निर्माण शासन-विधान-द्वारा होता है और उनकी शक्तियों का नियन्त्रण और शासन भी एक ऐसे विधान-द्वारा होता है जिसे समस्त रियासतें मिलकर बनाती हैं और जो असाधारण उपायों का उपयोग किये बिना बदला नहीं जा सकता। शासन-विधान का निर्माण सङ्घ की समस्त रियासतें मिलकर करती हैं, अतएव अपने विधान की पाबन्दी वे बड़ी निष्ठा से करती हैं।

अधिकारों का विभाजन

पञ्चायती राष्ट्र की एक महती विशेषता यह है कि सरकार की शक्तियाँ बँटी रहती हैं। पञ्चायती राष्ट्र का निर्माण ही इस सिद्धान्त पर होता है कि राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों की शक्तियाँ स्पष्ट रूप से निर्धारित रहें। परन्तु सरकार के समस्त विभागों की शक्तियाँ सीमित रहती हैं। उदाहरणार्थ अमरीका के संयुक्त राज्यों के अधिकारों को ही लीजिए। वहाँ के शासन-विधान के अनुसार राष्ट्र को जो अधिकार प्राप्त हैं वे किसी एक व्यक्ति या किसी एक संस्था में सीमित नहीं हैं। अमेरिकन कांग्रेस के अध्यक्ष जिसे राष्ट्रपति कहते हैं, और न्याय-विभाग के अधिकार एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र हैं। दोनों के अधिकारों की सीमायें निर्धारित हैं और अपनी सीमाओं में दोनों पूर्ण स्वतन्त्र हैं। न तो राष्ट्रपति के अधीन न्याय-विभाग है और न न्याय-विभाग के अधीन राष्ट्रपति ही हैं। इस शासन-विधान के विपरीत इँगलेंड के शासन-विधान में सर्वशक्तिशालिनी संस्था ब्रिटिश-पार्लमेंएट है और अँगरेज़ी सरकार के समस्त विभाग वैध रूप से पार्लमेंएट के अधीन और उसी के एकाधिकार से शासित हैं। पार्लमेंएट का अधिकार अनियन्त्रित है। वह अँगरेज़ी सरकार के किसी भी विभाग में सहज ही स्वेच्छानुसार हस्तक्षेप कर सकती है।

न्यायाधीशों के कर्त्तव्य

पञ्चायती राष्ट्र-संघ के दृढ़ अस्तित्व के लिए एक कठोर शासन-विधान की परम आवश्यकता होती है। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में कई भिन्न राष्ट्रों का एक कृत्रिम सहयोग रहता है, अतएव उनमें आपस में अधिकारों की खींचातानी का होना स्वाभाविक ही है। यह खींचातानी एक कठोर शासन-विधान के द्वारा ही रोकी जा सकती है। यहाँ कठोर शासन-विधान से तात्पर्य उस विधान से है जिसमें समस्त सरकारी विभागों के अधिकार स्पष्ट रूप से निर्धारित हों और जो टूट भले ही जाय, परन्तु झुकाया न जा सके। अधिकारीवर्ग विधान की आड़ में निरङ्कुश शासन न कर सके। संयुक्त-राज्यों का शासन-विधान ऐसा ही है। वहाँ के विधान में यह एक स्पष्ट धारा है कि कांग्रेस और अमेरिकन प्रजातन्त्र में शामिल विभिन्न रियासतों की व्यवस्थापिका सभाओं अथवा वहाँ के अन्य किसी वैध विभाग के द्वारा निर्मित वे समस्त क़ानून मान्य नहीं होंगे, जो संयुक्त-राज्यों के शासन-विधान के प्रतिकूल अथवा उसके भाव के विरुद्ध होंगे। अतएव संयुक्त-राज्यों के प्रत्येक न्यायाधीश और इसी लिए सभी पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घों के न्यायाधीशों का कर्त्तव्य स्पष्ट है। कांग्रेस और रियासतों की व्यवस्थापिका सभाओं-द्वारा बनाये गये उन समस्त क़ानूनों को जो शासन-विधान के प्रतिकूल होंगे, अमान्य कर देना उनका कर्त्तव्य है। शासन-विधान की रक्षा के सम्बन्ध में न्यायाधीशों की इस महती ज़िम्मेदारी के कारण यह आवश्यक है कि न्यायाधीश और न्यायालय अपनी सीमा के अन्दर पूर्ण स्वतन्त्र रहें और किसी सरकारी विभाग के अधीन न रहें। यदि न्यायाधीश केन्द्रस्थ सरकार अथवा स्थानीय सरकार के अधीनस्थ रहेंगे तो शासन-विधान की रक्षा का प्रश्न जोखिम में पड़ जायगा। राष्ट्रीय सरकार के अधीनस्थ न्यायाधीश राष्ट्रीय सरकार के पक्ष में और स्थानीय सरकार

के अधीनस्थ न्यायाधीश स्थानीय सरकार के पक्ष में उपस्थित विषयों पर निर्णय देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। और परिणाम यह होगा कि राष्ट्रीय सरकार को रियासतों की सरकारों पर अनुचित दबाव डालने के लिए मौक़ा मिलेगा और रियासतें उस स्वतन्त्रता का उपभोग करने में असमर्थ होंगी, जिसकी रक्षा के लिए उन्होंने पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में स्वेच्छा से शामिल होना अपना कर्त्तव्य समझा। यदि न्याय-सम्बन्धी यह गड़बड़ बहुत दिनों तक जारी रहे तो रियासतें राष्ट्र-संघ से विद्रोह करने के लिए उत्साहित होंगी और सारा बना-बनाया खेल नष्ट हो जायगा। इस गड़बड़ को दूर करने के लिए ही पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय और पञ्चायती अदालत के निर्माण की ज़रूरत पड़ती है।

प्रधान न्यायालय

पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय का निर्माण भ राष्ट्र-सङ्घ के शासन-विधान-द्वारा ही होता है। यह संस्था भी अपने अधिकारों के सम्बन्ध में उसी प्रकार स्वतन्त्र होती है जिस प्रकार राष्ट्रपति, केन्द्रस्थ सरकार की राष्ट्रसभा और रियासतों की सरकारें अपनी सीमा में स्वतन्त्र होती हैं। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के न्याय-विभाग का शासन प्रधान न्यायालय-द्वारा होता है। संयुक्त-राज्यों के सारे न्यायाधीशों की नियुक्ति इसी के द्वारा होती है। जिस देश में कठोर शासन-विधान लागू होता है अर्थात् जिस देश के शासन-विधान की धारायें साधारण क़ानूनों के निर्माण से संशोधित नहीं की जा सकतीं उनकी रक्षा के लिए कुछ ऐसे साधनों की ज़रूरत होती है जो उन क़ानूनों से शासन-विधान की रक्षा करें जिनका भाव शासन-विधान के विपरीत हो। संयुक्त-राज्यों के शासन-विधान के निर्माताओं ने उसमें एक ऐसा प्रबन्ध किया है जिसके अनुसार उनका शासन-विधान राष्ट्र के समस्त क़ानूनों से श्रेष्ठ बन गया है। उस शासन-विधान की छठी धारा में यह स्पष्ट सूचना है—

"अमरीका के संयुक्त-राज्यों का शासन-विधान और उसके अन्तर्गत जितने क़ानून बनाये जायँगे वे सब राष्ट्र के श्रेष्ठतम क़ानून होंगे और रियासतों के समस्त न्यायाधीशों को मान्य होंगे........."।

इस धारा से वहाँ के न्यायाधीशों का कर्त्तव्य स्पष्ट हो जाता है। वे किसी भी मामले का ऐसा निर्णय नहीं कर सकते जिससे वहाँ के शासन-विधान को कोई क्षति पहुँच सके। यदि कोई जज ऐसा फ़ैसला करे भी तो वह क़ानून से मान्य न होगा और उसके फ़ैसले के अनुसार कार्रवाई करने को मुल्की या फ़ौजी अधिकारी बाध्य न होंगे। कौन सा क़ानून शासन-विधान के विपरीत है और कौन उसके अनुकूल है, इस बात का निर्णय प्रधान न्यायालय करता है। पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में प्रधान न्यायालय ही उसके न्याय-विभाग का सर्वेसर्वा होता है और बिना सरकारी अफ़सरों की मदद लिये वह अपने अफ़सरों के द्वारा समस्त रियासतों को अपना फ़ैसला और देश का क़ानून मानने के लिए बाध्य करता है। शासन-विधान की धाराओं के ठीक अर्थ को नियत करने के लिए प्रधान न्यायालय का फ़ैसला ही अन्तिम फ़ैसला होता है और समस्त रियासती और पञ्चायती अदालतों की अन्तिम अपील भी इसी अदालत में होती है। संयुक्त-राज्यों की कांग्रेस अथवा किसी रियासत की व्यवस्थापिका सभा के द्वारा बनाया गया कोई क़ानून वैध है या अवैध, इस बात का अन्तिम फ़ैसला देने का अधिकार यहाँ के प्रधान न्यायालय को है। रियासतों की प्रधान अदालतों के उन फ़ैसलों की भी अपील संयुक्त-राज्यों के प्रधान न्यायालय में होती है, जो कांग्रेस के किसी क़ानून की धारा या शासन-विधान के अर्थ को निर्णय करने के सम्बन्ध में होती है। अवैध क़ानूनों से शासन-विधान की रक्षा करने का इससे बढ़िया कोई दूसरा प्रबन्ध

नहीं हो सकता कि देश के न्यायाधीश शासन-विधान के संरक्षक बना दिये जायँ। इस प्रकार व्यक्तिगत और संस्थागत स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखते हुए छोटी छोटी रियासतें पारस्परिक सहयोग और समझौते से एक विशाल राष्ट्र का निर्माण करती हैं।

भारतीय परिस्थिति

पञ्चायती शासन-प्रणाली की विशेषताओं पर विचार करने के अनन्तर यदि हम भारत की वर्तमान शासन-पद्धति पर विचार करें तो हमको मालूम होगा कि भारत पंचायती शासन-विधान के अनुसार शासित होने के लिए पूरी तरह तैयार है। यही नहीं, उसकी वर्तमान शासन-व्यवस्था भी पंचायती शासन-विधान के अनुकरण पर हो रही है। भारत का शासन एक विधान के अनुसार हो रहा है जो उसे ब्रिटिश-पार्लामेंट के द्वारा प्राप्त हुआ है।

भारत एक विशाल देश है। शासन-सम्बन्धी सुविधाओं और ऐतिहासिक, भौगोलिक, जनता के आचार-विचार और भाषा की विभिन्नताओं के कारण वह कई प्रान्तों में विभक्त है। प्रत्येक प्रान्त का एक पृथक् और निजी शासन है। शासन-सम्बन्धी समस्त अधिकार शासन की सहकारी संस्थाओं में विभक्त हैं। समस्त प्रान्तों में बड़ी अदालतें हैं और वे सभी एक-दूसरी से पूर्ण स्वतन्त्र होते हुए भी इँगलेंड की प्रिवी कौंसिल-द्वारा शासित हैं। भारत में वाइसराय, प्रान्तीय गवर्नरों, हाईकोर्ट के जजों और कमाण्डर इन चीफ़ की नियुक्ति सीधे सम्राट् के द्वारा होती है, जिसका परिणाम यह है कि ये एक दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र हैं और आपस में पारस्परिक सहयोग की शृङ्खला में आबद्ध हैं। तो भी भारत पञ्चायती राष्ट्र नहीं है। भारत में केन्द्रस्थ सरकार ज़रूर है, किन्तु वह राष्ट्रीय नहीं है। प्रान्तों को स्थानीय स्वराज्य प्राप्त है, किन्तु उत्तरदायी शासन वहाँ नहीं है। प्रान्तों का शासन हस्तान्तरित और ग़ैर हस्तान्तरित विषयों में बँटा हुआ है, किन्तु ग़ैर हस्तान्तरित विषयों के शासन में लोकमत का प्रभाव नहीं है। प्रान्तीय मिनिस्टर प्रजा के प्रतिनिधियों में से ज़रूर चुने जाते हैं, किन्तु प्रजा के प्रतिनिधियों-द्वारा निर्वाचित नहीं, बरन गवर्नर-द्वारा मनोनीत होते हैं। प्रजा के प्रतिनिधियों के बहुमत की यदि गवर्नर उपेक्षा करना चाहें तो बहुमत का सम्मान करने के लिए वे लाचार नहीं किये जा सकते। प्रान्तीय मिनिस्टरों के अधिकार भी बहुत परिमित हैं। वे केवल पूछे जाने पर ग़ैर हस्तान्तरित विषयों के शासन के सम्बन्ध में गवर्नर को सलाह भर दे सकते हैं। अपनी सलाह के अनुसार कार्रवाई कराने के लिए वे गवर्नर को विवश नहीं कर सकते। भारतीय लोकमत का इस तरह का अनुत्तरदायित्व भारत-सरकार के प्रत्येक विभाग में मौजूद है। इस अनुत्तरदायित्व को दूर करना ही स्वराज्य की स्थापना है। परन्तु उत्तरदायी शासन की स्थापना-मात्र से भारत की समस्यायें हल नहीं हो जायँगी और न भारत एक स्वतन्त्र राष्ट्र ही हो सकेगा।

देशी रजवाड़े

भारत के पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण में देशी रजवाड़ों की समस्या बड़ी जटिल और अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। ये संख्या में अनेक और कई श्रेणियों में विभक्त हैं। समस्त देशी नरेशों के समान अधिकार भी नहीं हैं। उनमें समानता केवल इस विषय में है कि वे सब ब्रिटिश के संरक्षण में हैं। उनका सीधा सम्बन्ध भारत-सरकार से नहीं, बरन ब्रिटिश-सम्राट् से है। सम्राट् के नाम पर ही उनसे सन्धियाँ हुई हैं और वे सन्धियाँ एक सी नहीं हैं। ब्रिटिश-सम्राट् के नाम पर भारत-सरकार देशी नरेशों की रक्षा करती है और इस रक्षा के लिए ब्रिटिश-गवर्नमेंट के प्रति देशी नरेशों के कुछ निश्चित कर्त्तव्य हैं। सम्राट् की सरकार देशी रियासतों की रक्षा और उनके परराष्ट्र-सम्बन्धी मामलों का नियन्त्रण करती है। इसके बदले में रजवाड़ों का कर्त्तव्य है

कि वे युद्ध के अवसर पर अपने भरसक सम्राट् की सरकार की मदद करें और शान्ति के अवसर पर साम्राज्य की सेना को आवश्यक सहायता दें। रियासतों में इतनी सेना सर्वदा तैयार रखना राजाओं का कर्त्तव्य है जितनी उनके निजी शासन के लिए पर्य्याप्त हो और इतनी न हो कि उनसे पड़ोसी राजाओं को ख़तरा का अन्देशा हो और निजी रियासत की अन्दरूनी शान्ति सङ्कट में पड़ जाय। रजवाड़ों का यह भी कर्त्तव्य है कि रियासत में साम्राज्य की जो सेना मौजूद हो उसके साथ साम्राज्य की बाहरी सेनाओं से सम्पर्क रखने की समस्त सुविधायें दें। परराष्ट्रों अथवा दूसरी रियासतों के साथ सम्राट् की सरकार देशी नरेशों की तरफ़ से जो सन्धि-विग्रह करे उनका पालन करना देशी नरेशों का कर्त्तव्य है। रियासतों के नाश, आभ्यन्तरिक विद्रोह और कुशासन के अवसर पर सम्राट् की सरकार के हस्तक्षेप को स्वीकार करना देशी रजवाड़ों का धर्म है। साम्राज्य के हितों की रक्षा के लिए सम्राट् की सरकार को अधिकार है कि देशी रियासतों के भीतरी मामलों में—यथा मुद्रा के सञ्चालन, व्यापार-प्रसार अथवा पोस्टल सङ्घों की स्थापना आदि विषयों में—भी दख़ल दे। परन्तु प्रत्येक हस्तक्षेप के लिए वास्तविक आवश्यकता का होना ज़रूरी है। उत्तराधिकार के विषय में देशी नरेशों को वायसराय की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। उनको सम्राट् के प्रतिनिधियों के साथ बड़े सम्मान और सत्कार से पेश आना चाहिए। नाबालिग़ी के अवसर पर सम्राट् की सरकार के संरक्षण को प्राप्त करना और सर्वदा राजभक्ति को प्रदर्शित करना देशी नरेशों का परम कर्त्तव्य है। सम्राट् की सरकार की आज्ञाओं को न मानना सम्राट् के प्रति बग़ावत करना है। देशी रियासतों में सम्राट् के प्रतिनिधियों की हत्या करनेवालों को प्राणदण्ड देने का अधिकार भी सम्राट् को है।

इस प्रकार सम्राट् की सरकार का देशी नरेशों पर भी एक प्रकार से पूरा नियन्त्रण है। भारत-सरकार से उनका कोई सरोकार नहीं है। यह एक जटिल भेद है। इसका अर्थ यह है कि देशी रियासतें भारत की अनैक्यता के कारण हैं।

नरेशों के निश्चय का महत्त्व

नरेशों के द्वारा भारत विभिन्न रियासतों में बँटा हुआ है। यह प्रसन्नता की बात है कि देशी रजवाड़ों ने स्वेच्छा से उस पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ में शामिल होना स्वीकार कर लिया है जिसका प्रस्ताव अँगरेज़-सरकार की ओर से लन्दन की राउण्डटेबुल कानफ़रेन्स में उपस्थित किया गया था। निस्सन्देह देशी रजवाड़ों का यह मनोभाव प्रशंसनीय है और इससे समग्र भारत के एक स्वतन्त्र राष्ट्र-सङ्घ के निर्माण की पूरी सुविधा हो गई है।

परन्तु देशी रजवाड़ों की सदिच्छा और भारतीय महत्त्वाकांक्षा को वास्तविक स्वरूप देना सम्राट् की सरकार का काम है। भारत को एक पञ्चायती राष्ट्र-संघ में संगठित करने ही से भारत की समस्त कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। पर क्या सम्राट् की सरकार भारत में पञ्चायती राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना करेगी? भारत को राष्ट्र-सङ्घ में परिणत करने से ब्रिटिश साम्राज्य का पाया मज़बूत हो सकता है।

—रामधर दुबे।

जिज्ञासा

(१)

जीवन निरीह जल-कण-कण संकुल-सा,
होके प्रवाहित कभी सिंधु लहराता-सा।
बनकर वाष्प घन-घन में समाता कभी,
कमल-दलों में मुक्त-विन्दु बिखराता-सा।
'प्रणयेश' हिमकर-द्वारा हिम-राशि होके—
दीखता हिमालय है तुङ्ग मदमाता-सा।
कौन जान सकता है इस तत्त्व का महत्त्व,
किसका विधान यह किसका विधाता-सा ?

(२)

किसकी प्रभा से दीप्तमान रवि, शशि, तारे,
किसके प्रकाश से प्रकाशित भुवन है ?
किससे मिला है रङ्ग ऊषा को सुनहरा-सा,
सप्त-रङ्ग पाके बनी किससे किरन है ?
चाँदनी के मिस मुसकान बिखराता कौन—
'प्रणयेश' सुधा सरसाता शान्त-मन है ?
लाता है कहाँ से यह पाता रत्न-राशि कहाँ,
फिर उसे व्यर्थ ही लुटाता क्यों गगन है ?

—प्रणयेश शुक्ल

द्वन्द्व

[अरुण के साथ वीणा के विवाह का प्रस्ताव जब भङ्ग हो गया तब वह किरण को अपनी ओर आकर्षित करने का फिर से प्रयत्न करने लगी। वीणा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कितने ही सुशिक्षित युवक उसका प्रणय प्राप्त करने के लिए असाध्य साधना कर रहे थे, किन्तु उसकी वह रूप-राशि किरण के हृदय पर अधिकार नहीं कर सकी। लीला को ही वह अपनी एक-मात्र सहचरी समझता था और उसी के साथ हृदय खोल कर मिला करता था। वास्तव में लीला तथा किरण में इतनी घनिष्ठता थी कि वे परस्पर एक दूसरे को छोड़ कर संसार में और किसी से प्रायः कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना चाहते थे। परन्तु अरुण के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिए जब लीला उसके पास गई और उसे वीणा समझ कर वह आनन्द के मारे गद्‌गद हो गया तब लीला ने उस असहाय अन्धे का आनन्द भङ्ग करना उचित नहीं समझा। वीणा के ही रूप में वह उससे बात-चीत करती रही और भविष्य में भी जब तक वीणा अपना मत परिवर्तित करके अरुण के साथ विवाह करने को फिर न तैयार हो जाय, उसी रूप में उसके साथ व्यवहार करने का, यहाँ तक वीणा के सर्वथा परित्याग कर देने पर अरुण के साथ विवाह तक करने का निश्चय कर लिया। इस घटना से किरण के हृदय पर बड़ी चोट पहुँची और वह सोचने लगा कि वीणा ने यदि अपने विचारों में परिवर्तन न किया तो लीला फिर मेरी न रह जायगी। यह सोच कर वीणा से मनोभावों का अध्ययन करने के लिए वह उसके पास गया। जिस समय एकान्त में वह उससे बातें कर रहा था, उस समय लीला भी उधर से निकली थी, किन्तु उसकी ओर दृष्टिपात न करके किरण वीणा से ही बातें करता हुआ चला गया।]

(१७)

किरण जब वीणा के साथ चला गया तब लीला कुछ समय तक चुपचाप वहीं खड़ी रही। उस दिन का सारा आनन्द-उत्सव और खेल-कूद मानो क्षण भर में ही मिट्टी में मिल गया। पहले कौन जानता था कि जीवन का परिपूर्ण सुधापात्र पल भर में इस तरह सूख जा सकता है।

अनेक प्रयत्न करने पर भी लीला अपनी वर्तमान अवस्था का ठीक-ठीक अनुभव नहीं कर सकी। उसका चुटीला अभिमान मन ही मन गरज उठता था। किरण यदि व्यर्थ में रुष्ट होकर उसकी इस तरह उपेक्षा करके उसका तिरस्कार कर सकता है तो इसमें उसी की क्या हानि है? वह भी उसके साथ अब कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेगी। किरण की मित्रता से वञ्चित हो जाने पर सारा संसार तो उसके लिए अँधेरा हो न जायगा। इसके अतिरिक्त भी संसार में सोचने और करने के लिए काफ़ी काम हैं। किन्तु इस संकल्प में अपने अन्तः-करण में से उसे कहीं किसी प्रकार का बल नहीं मिला।

किरण का तमतमाया हुआ चेहरा और यह बेढंगी उपेक्षा उसकी अन्तरात्मा में बाण-सी लग रही थी। उसके मन में यही बात आती कि दौड़ कर वह किसी एकान्त स्थान में जाय और एक बार ख़ूब जी भर कर रो आवे। परन्तु वहाँ से वह एक पग भी हिल न सकी। केवल नीरव भाव से सन्ध्या के नक्षत्रों से सुशोभित आकाश की ओर ताकती हुई खड़ी रह गई।

अरुण से जब भेट हुई थी तब से एक सप्ताह बीत गया। उसके बीच में किरण से लीला की भेट नहीं हुई। अरुण से मिलने के लिए जब वह बसन्तपुर जाती तब किरण उससे पहले ही घर से निकल चुका रहता। साँझ को क्लब में खेलने आना भी किरण ने छोड़ दिया था। जहाँ जिस समय लीला से भेट हो जाने की सम्भावना रहती, किरण चेष्टा करके उस समय के लिए वह स्थान बचा जाता। उसकी इस स्पष्ट विरक्ति से लीला दिन दिन सूखती चली जाती थी। फिर भी अभी तक उसे आशा थी कि किरण से भेट होने पर उसे अच्छी तरह समझा-बुझा कर शान्त कर दूँगी। परन्तु आज जब इन लोगों के ही निमन्त्रण पर किरण इनके यहाँ आया और लीला के आह्वान की उपेक्षा करके वीणा के साथ लौट गया तब उसे आशा करने की कोई भी बात न रह गई।

इसके अतिरिक्त लीला की समझ में एक बात किसी तरह भी नहीं आती थी। किरण के रुष्ट रहने के कारण लीला के अन्तःकरण में जो वेदना काँटे की तरह बिध रही थी वह अरुण के पास पहुँचते ही न जाने कहाँ विलीन हो जाती। जब तक वह अरुण के पास रहती, हँसी-ठट्ठा, ग़पशप और गाने-बजाने में मस्त रहती। अरुण के प्रति अगाध प्रेम से उसका हृदय परिपूर्ण रहता, उस समय भूल कर भी उसे किरण की याद न आती। परन्तु जैसे ही वह अरुण के पास से हट कर बाहर निकलती, उस घर के चारों ओर कितने दिन के कितने परिचित दृश्य कितने दिन पहले की सुखमय स्मृति जागृत हो उठती और उस समय उसके हृदय की छिपी हुई व्यथा फिर से उसे व्याकुल करने लगती। खेल-कूद या पढ़ने-लिखने में उसे किसी तरह भी शान्ति न मिलती। उसका हृदय सदा ही किरण के लिए रोता रहता। यह कैसी विषम समस्या उसके सामने आ पड़ी। इसकी मीमांसा किस तरह और कहाँ हो सकेगी, यह उसकी समझ में ही नहीं आता था।

लीला के खेलने के साथी इतने समय में खेल से निवृत्त होने और ज़रा सा विश्राम करने के बाद जलपान के लिए दल के दल तम्बू में आ रहे थे। उनके कलरव से सचेत होकर लीला घूमकर ताकने लगी। वहाँ से कुछ दूरी पर वीणा और किरण तम्बू के सामने खड़े होकर बातचीत कर रहे थे। लीला ने देखा कि वीणा ने आज कैसा अच्छा शृंगार किया है। उसकी काली काली आँखों की लज्जा और अनुराग से भरी हुई दृष्टि किरण के मुँह पर थी। किरण क्या कह रहा था, यह तो लीला सुन नहीं सकी, किन्तु उसके मुख पर वीणा के सम्बन्ध में पहले का सा उदासीन भाव नहीं था।

लीला यह दृश्य अधिक समय तक नहीं देख सकी। मुँह फेर कर वह वहाँ से सीधे अपने कमरे में चली गई और अँधेरे में ही बिस्तरे पर जाकर लेट गई।

कुछ समय के बाद बत्ती जलाने के लिए शान्त के कमरे में आई और लीला को इस तरह बिस्तरे पर पड़ी देखकर कहने लगी—अरे बिटिया रानी, आज अभी से बिस्तरे पर आकर लेट गई हो? तबीयत तो नहीं कुछ ख़राब होगई?

लीला ने चित्त को ज़रा सा दूसरी ओर फेरने के लिए कहा—नहीं, तबीयत नहीं ख़राब है। योंहीं ज़रा सा लेट गई हूँ! खेलते-खेलते दिमाग़ में चक्कर-सा आगया है। तू ज़रा देर तक यहीं बैठी रह। कुछ बातचीत तो की जाय।

लीला की यह बात सुनकर शान्त के चित्त को बहुत कुछ आश्वासन मिला। पैर फैला कर वह ज़मीन पर बैठ गई और कहने लगी—दिमाग़ में चक्कर क्यों न आवेगा? रात-दिन उपद्रव तो मचाये रहती हो। हज़ार हो लड़की ही तो हो। चौबीस घंटे इस तरह पुरुषों से होड़ लगा कर दौड़ने में कहाँ शरीर बना रह

सकता है? ख़ैर, थोड़ी देर तक लेटी रहो। जी हलका हो जाय।

लीला ने कहा—तुझे इस समय कोई काम तो नहीं है? हाथ हिलाकर चान्त ने उत्तर दिया—काम की बात तो न पूछो बिटिया। काम का भी कभी अन्त होता है? जितना ही करती जाती हूँ, उतना ही बढ़ता जाता है! ख़ैर, यह सब भाड़ में जाने दो। तुम इस समय यहाँ अकेली हो ना? अच्छा, बिटिया रानी एक बात याद आगई। तुम तो इतनी जगह आती जाती हो। यहाँ के डिप्टी साहब की स्त्री को कभी देखा है?

"नहीं तो क्यों?" लीला समझ गई कि चान्त आज कोई नई बात खोज लाई है।

"यों ही कह रही हूँ। यहाँ के सब लोग उन्हें जानते हैं न! बड़ी अच्छी स्त्री हैं। देखने में भी बड़ी सुन्दर हैं। इसके अतिरिक्त सब स्त्रियों में डिप्टी साहब की स्त्री का प्रवेश भी है। परन्तु तुम उन्हें कैसे देखोगी? डिप्टी साहब बाहर तो बिलकुल साहबी ठाठ-बाट में रहते हैं, किन्तु घर के भीतर वे बिलकुल पुराने ढंग के हिन्दू की ही तरह रहते हैं। तुम्हारे यहाँ की तरह उनके घर में ईसाईपन का ठिकाना नहीं है। बाबू लोग बाहर चाहे जो करें, स्त्रियाँ अपने क़ायदे पर रहें तो कोई हानि नहीं है। उनके यहाँ की स्त्रियाँ पालकी छोड़ कर क्या कभी एक पग भी चलती हैं? ख़ैर, यह सब जाने दो, इस समय मैं जो कह रही थी वह यह है कि उनके घर में एक दुर्घटना हो गई है।"

चान्त ने एक छोटे से सन्दूकचे से एक पान निकाला और डिबिया से चूना निकाल कर उस पर लगाया। तब पान को लपेट कर मुँह में डाल लिया और फिर कहने लगी—डिप्टी साहब के भाई विलायत गये हैं। जानती हो न? शायद कुछ पढ़ने गये हैं। और उनकी जो स्त्री है वह इतनी सुन्दरी है कि उसकी तारीफ़ करते नहीं बनता। ऐसी सुन्दरता तो मैंने कभी देखी ही नहीं। मानो वह साक्षात् स्वर्ग की देवी है। विवाह के बाद उसका स्वामी उसे छोड़ कर जब विदेश गया है तब वह छोटी ही थी, परन्तु अब काफ़ी बड़ी हो गई है। उसका नाम है ज्योत्स्ना। ज्योत्स्ना की तरह दिव्य उसका चेहरा भी है।

लीला ने कहा—लोगों के घर का हाल तू इतना कैसे जानती है? क्या संसार भर की ख़बरें तेरे पास आती हैं?

"वाह, मैं कैसे न जानूँ! शहर भर में कौन सा ऐसा घर है जहाँ का हाल मुझे नहीं मालूम है? और उनके यहाँ तो मेरी बहन काम ही करती है। एक दिन मैं अपनी बहन से मिलने गई थी तब उस बहू को भी देख आई थी। हाय, उस सुन्दरता के ही कारण उस बेचारी की ऐसी दुर्दशा हुई। मेरी बहन उसे बहुत चाहती थी। अब वह रो रो कर मर रही है।

लीला ने व्यग्र होकर पूछा—क्यों? उसे क्या हुआ है?

उत्साह के साथ हाथ हिलाकर चान्त ने कहा—हुआ है मेरा सिर। एक दिन बात ऐसी हुई कि लड़कों ने चन्दा करके शहर में सरस्वती-पूजा की। उसी दिन प्रतिमा के सामने उन लोगों ने एक थिएटर भी किया। शहर भर में जितनी भी बड़े बड़े घरानों की स्त्रियाँ थीं, वे सभी वहाँ गई थीं। डिप्टी साहब की स्त्री भी अपनी देवरानी को लेकर थिएटर देखने गई थीं। उस समय क्या किसी को ख़ास पता था कि ऐसी भी घटना हो सकेगी? अन्यथा इस अभागे थिएटर को देखने ही कौन दौड़ा जाता! इसी लिए लोग अब कह रहे हैं कि वहाँ क्यों गई? न गई होती तो ऐसा न होता। मैं कहती हूँ कि मरो। पहले से क्या कोई ब्रह्मा का कोप बाँचता रहता है? भावी का तो कोई पार नहीं पा सकता। इतनी स्त्रियाँ गई थीं, और तो किसी को कुछ नहीं हुआ, सारी आफ़त इसी के भाग्य में थी।

लीला ने अधीर भाव से कहा—क्या हुआ, पहले यही क्यों नहीं बतला देती। तुझसे तो मैं हैरान हो गई हूँ। जहाँ एक बात में सारा मामला तय हो सकता है, वहाँ क्यों इस तरह बक बक करके प्राण देती है? उस बहू को हुआ क्या?

"वही बात तो इतनी देर से बता रही हूँ भाई। परन्तु तुम सुनोगी क्या ख़ाक। सभी बातों में तो तुम्हें

उतावली पड़ी रहती है। मानो सदा ही घोड़े पर ज़ीन कसे सवार रहती हो। चार बातें मिला कर न कहूँगी तो भला समझोगी क्या? यही तो कहती हूँ कि सब लोग थिएटर देखने गये थे। समाप्त होते होते बिलकुल सवेरा हो गया। तब स्त्रियाँ अपनी अपनी गाड़ी पर सवार होने लगीं। उस भीड़ में ही न जाने कहाँ का एक लुच्चा खड़े खड़े सब स्त्रियों का मुँह देख रहा था। पड़ते पड़ते उस मुँहजले की दृष्टि एकाएक पड़ी ज्योत्स्ना के ऊपर। मेरी बहन उन लोगों के साथ ही थी। वह कह रही थी कि उस बदमाश की आँखें बाघ की सी थीं। उस स्त्री को वह इस तरह घूर घूर कर ताक रहा था, कि मानों खा जायगा। बेचारी का क्या हाल होगा, इसी चिन्ता में मैं रो रो कर मर रही हूँ। बामा के तो रात-दिन आँसू ही नहीं बन्द होते। डिप्टी साहब के भाई विलायत से लौटने पर न जाने कैसी आपदा खड़ी करें? मेरा तो अभी से हृदय काँप रहा है।

"व्यर्थ की बातें बक बक कर मर रही है। परन्तु हुआ क्या, यह अभी तक न सुनने में आया। केवल बातें बना रही है और एक झूठी कहानी गढ़ रही है।"

बहुत ही उत्तेजित होकर चान्त ने कहा—झूठी कहानी तो गढ़ ही रही हूँ। छोटी महरिन झूठ बोलने-वाली स्त्री नहीं है। मैं यदि झूठ बोल रही हूँ तो भगवान् मेरे ऊपर वज्र छोड़ दें। सारे शहर में इस बात का ढिंढोरा पिट गया है और मैं तुम्हारे सामने झूठ बोल रही हूँ। अच्छा सुनो उन लोगों की गाड़ी के पीछे पीछे जाकर वह बदमाश डिप्टी साहब का घर देख आया था। कुछ दिन के बाद भोजन करके ज्योत्स्ना अपने कमरे में सोई थी। द्वार बन्द था। इसी तरह वह रोज़ सोया करती थी। दिन में सोने की उसकी आदत थी। उस दिन साँझ हो गई, फिर भी द्वार नहीं खुला। तब बड़ी चिल्ल-पों मची, परन्तु भीतर से कोई आहट नहीं मिली। दरवाज़ा तोड़ कर लोगों ने जब देखा तब कमरा खाली पड़ा था, वहाँ ज्योत्स्ना नहीं थी। खिड़की तोड़ कर कोई उसे निकाल ले गया था। खिड़की के सींखचे कटे हुए थे। देखो, कैसी गज़ब की बात हो गई।

लीला अभी तक साँस बन्द करके यह कहानी सुन रही थी। अन्त में उसने अत्यन्त उत्कण्ठित होकर पूछा—वह गई कहाँ? कौन उसे ले गया?

चान्त ने गम्भीरभाव से कहा—यह बात किसी को नहीं मालूम है। केवल मैं और मेरी बहन जानती है। वही आदमी उसे लेकर भागा है।

"तुम लोगों को यह बात कैसे मालूम हुई?"

"इसमें बहुत सी बातें हैं। तार का एक चपरासी है। वह रोज़ एक लाल रंग की साइकिल पर सवार होकर बहुत दूर तक तार बाँटने जाया करता है। उसी से उसका पता चला है। बाज़ार में बरगद का एक पेड़ है न। उसी के नीचे लेटे लेटे मेरी बहन एक दिन धूप ले रही थी। वहीं एक दूकानदार रहता है। वह तार का चपरासी उसी दूकानदार का भाञ्जा है। वे ही दोनों डर डर कर चुपके चुपके बातें कर रहे थे। यह बात यदि डिप्टी साहब के कान में पहुँची तो झंझट खड़ा हो सकता है न। यहाँ से बड़ी दूरी पर आराम-बाग़ नाम की एक जगह है। वह आदमी वहीं का ज़मींदार है। उसके नाम का एक तार था। चपरासी वहीं देने जब गया था तब ज्योत्स्ना को भी देख आया था। दरवाज़े के सामने वह खड़ी थी। शरीर पर उसके बहुत से जड़ाऊ गहने थे और एक बहुत क़ीमती रेशमी साड़ी थी। उस समय देखने में वह अप्सरा को भी मात कर रही थी।"

लीला ने बहुत ही चिन्तित होकर कहा—यह तो बहुत बुरी घटना हुई चान्त। वह स्त्री बेचारी ऐसे दुष्ट आदमी के चंगुल में पड़ गई है। मेरे विचार से उसकी बड़ी दुर्दशा होगी।

"दुर्दशा तो होगी ही। लौट कर आने पर उसके स्वामी को जब सारी बातें मालूम होंगी तब वह उस स्त्री और पुरुष दोनों की हत्या कर डालेगा। इसके अतिरिक्त लोग कहते हैं कि वह आदमी भी बड़ा पाजी है। उसके अत्याचार के कारण उसकी स्त्री ने विष खाकर आत्महत्या कर ली है।"

"आत्महत्या उसने कब की है?"

"उसको तो दो महीने हो गये। परन्तु तुम्हारा शरीर अच्छा न होने के कारण इतने दिनों से मैं कहीं आ-जा तो सकी नहीं, इसी से कोई समाचार नहीं पा सकी। मेरी बहन आज-कल वहीं है। ज्योत्स्ना का पता लगते ही वह उसके पास पहुँच गई। एक तरह से वह आदमी अच्छा भी मालूम पड़ता है। बामा को उसके पास रहने देने में उसने ज़रा भी आपत्ति नहीं की। बामा आज शहर में कुछ चीज़ें ख़रीदने आई थी। उसी से मैंने ये सारी बातें सुनी हैं।"

अपनी सारी बातें भूलकर लीला एकाग्रचित्त से ज्योत्स्ना की ही परिस्थिति पर विचार करने लगी। बेचारी ज्योत्स्ना! बिलकुल ही अबोध है। वह जीवन की कठोरता को ज़रा भी नहीं जानती। सम्भव है कि वह उस आदमी पर ही अगाध विश्वास रखकर निश्चिन्त बैठी रहे। अब वह उस विश्वास की रक्षा करके चले तभी अच्छा है। अन्यथा उस अभागी स्त्री को न जाने कितनी दुर्दशा भोगनी पड़ेगी। सोचते-सोचते वह कहने लगी—अच्छा चान्त, तेरी बहन तो वहाँ रहती है। वह उस आदमी के सम्बन्ध में क्या कहती है? ज्योत्स्ना को क्या वह सचमुच चाहता है? उसका वह समुचित आदर-सत्कार तो करता है?

अपने काले काले ओठों को उलट कर चान्त ने अवज्ञा के साथ कहा—हाय रे अभाग्य! यह सब आदमी और प्रेम! झाड़ू मारना चाहिए ऐसे प्रेम को। तुम लोग तो ये सब बातें जानती नहीं हो बिटिया रानी। ज़्यादा से ज़्यादा दस बीस पुस्तकें पढ़ी हैं। संसार के रंग-ढंग देखते मस्तक के बाल पक गये। ऐसे आदमी क्या कभी किसी से प्रेम कर सकते हैं? ऐसे लोगों के दो दिन के आमोद-प्रमोद दो ही दिन में समाप्त हो जाते हैं। बाद को फिर उनका हाल और ही हो जाता है। फिर सुनती हूँ कि वह आदमी तो यहाँ का है भी नहीं। वह बंगाल का रहनेवाला है। वहाँ का वह बहुत बड़ा ज़मींदार है। यहाँ भी उसका मकान और कुछ सम्पत्ति है। कभी-कभी आकर थोड़े दिनों तक रहता है और फिर चला जाता है। नामा ने उसके नौकरों से उसका सारा भेद ले लिया है। अभी थोड़े ही दिन हुए वह यहाँ आया है और आते ही यह कीर्ति भी ले ली। चार दिन के बाद फिर लौट जायगा और लड़की बेचारी सड़क के किनारे पड़ी रह जायगी। इसके अतिरिक्त और क्या होगा? ऐसे काम का फल तो अन्त में इसी तरह का हुआ करता है न।

लीला ने कहा—परन्तु यह बात जब मेरे कान में पड़ गई है तब कोई ऐसी व्यवस्था अवश्य कर दूँगी, जिससे उस लड़की को कोई क्लेश न हो। तेरी बहन तो वहीं रहती है। उससे कह दे कि यदि उस लड़की को कोई क्लेश हो तो वह पहले-पहल आकर तुझे सूचना दे दिया करे।

चान्त ने मन ही मन प्रसन्न होकर कहा—सूचना तो वह दे जाया करेगी। बेचारी लड़की का कोई सहारा हो जाता तो उसके जी में जी आता। उसकी दुर्दशा की बात सोच सोच कर वह रात-दिन रोते-रोते मरी जा रही है। इस बार जब वह इधर आवेगी तब मैं उससे कह दूँगी।

किरण से अनबन हो जाने के कारण लीला फिर मन ही मन बहुत दुखी रहने लगी। उसका सखा, सहायक और स्नेही किरण ही था। सभी कामों और सभी बातों में वह छोटे से बच्चे की तरह सदा किरण के ही सबल आश्रय पर निर्भर रहा करती थी। आज ज्योत्स्ना के लिए लीला के हृदय में जो चिन्ता हो रही थी, उससे निवृत्त होने के लिए कौन सत्परामर्श दे सकता था? जिसके अभाव में उसके जीवन का एक भी दिन नहीं व्यतीत होता उसका परित्याग कर देने पर सारा जीवन कैसे व्यतीत होगा? बहुत कुछ सोच-विचार करने पर भी लीला किसी किनारे पर नहीं लग सकी।

(१८)

अरुण को समय काटने के लिए लीला जो उपाय निर्दिष्ट कर आई थी उसके अनुसार वह बड़े आग्रह के साथ कार्य करने लगा। जो व्यक्ति अनन्त सागर में ग़ोते खा रहा हो वह साधारण से अवलम्बन को भी अपनी समस्त शक्ति से जकड़ रखने का प्रयत्न करता है,

ठीक वही अवस्था उस समय अरुण की भी थी। अरुण के पास समय की कमी थी नहीं। पहले वह कुछ दिन तक केवल अन्दाज़ा लगा लगा कर ही लिखने का अभ्यास करता रहा, किन्तु उसकी एकाग्र चेष्टा—अध्यवसाय के कारण लिखने में उसका हाथ बराबर बैठता गया। उसके टेबिल पर लिखने की सारी सामग्री किरण ने ख़ूब सजा कर रख दी थी। अरुण उसी टेबिल के पास बैठकर समान उत्साह से घंटों बैठा लिखता रहता। उसके चेहरे पर कभी श्रान्ति या अवसाद का चिह्न तक न दिखाई पड़ता।

अरुण को जब लिखने का अभ्यास हो गया तब उसने रचना की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया। इन दिनों वह बाह्यजगत् के अन्य समस्त विषयों को हृदय से निकाल कर केवल लिखने और कल्पना में ही तन्मय रहा था। उसे यह भी विश्वास हो गया कि इस प्रकार उसे बड़ी सान्त्वना मिली है। कल्पना की बदौलत वह सदा ही अपने को किसी और ही संसार में देखा करता। वह संसार सत्य था और वहाँ उसकी कल्पना से उत्पन्न हुए सजीव नर-नारी सदा ही विराजमान रहा करते थे। उनके सुख-दुख तथा आशा-आकांक्षा के फेर में पड़ कर वह बाह्यजगत् के अस्तित्व को एक प्रकार से भूल ही जाया करता था। अपनी निज की सृष्टि के आनन्द में कल्लोल करते-करते उसका सारा समय किस प्रकार कट जाया करता, यह अरुण स्वयं भी न समझ पाता। अपने अन्धकारमय जीवन तथा उसकी वेदना को वह उत्तरोत्तर भूलता जा रहा था।

लीला बीच-बीच में आकर संशोधन के लिए अरुण की रचनायें पढ़कर सुनाया करती और उसकी लिखने की अद्भुत शक्ति तथा भाषा-सम्बन्धी निपुणता देखकर मुग्ध हो जाया करती। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि किसी दिन जनता इस अन्धे लेखक की प्रतिभा पर मुग्ध और चमत्कृत हो उठेगी। वह अरुण से कहा करती कि तुम्हारे अन्दर अभी तक कितनी शक्ति छिपी हुई थी। ये सब रचनायें जिस दिन प्रकाशित होंगी उस दिन लोग बिलकुल अवाक् हो जायँगे। वे समझेंगे कि तुममें यह ईश्वर की दी हुई प्रतिभा थी। वह नेत्रों के नष्ट हो जाने पर भी नष्ट नहीं हुई। जिस दिन तुम्हारी पुस्तक प्रकाशित होगी, उस दिन की कल्पना करके मेरा हृदय आनन्द के मारे उछल रहा है।

लीला के हृदय में आनन्द का जो उच्छ्वास आता उसके कारण अरुण भी हँसा करता। उसका हँसना तृप्ति और शान्ति का हँसना होता था। वह कहता—तुम न होती तो मैं कुछ भी न कर सकता। मेरी सब कुछ तुम्हीं हो। चाहे शक्ति समझो या भरोसा समझो, तुम सब कुछ हो।

लीला के प्रेम और स्नेह के कारण शरीर उत्तरोत्तर स्वस्थ होता गया, साथ ही चित्त की प्रसन्नता भी बढ़ती गई। उसकी अवस्था में बड़े वेग से परिवर्तन हो रहा था। उसकी मुखाकृति पर से निराशा और वेदना का चिह्न लुप्त होगया और उसका स्थान नवजीवन के आनन्द तथा आग्रह ने दख़ल कर लिया। दूसरे के प्रति प्रेम करने तथा उसका प्रेम प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को जो सुख और तृप्ति हुआ करती है, उसी की आभा अरुण के मुख-मण्डल पर विशेष रूप से उदित हो उठी थी। लीला के प्रेम, सुख और आशा से उसका हृदय परिपूर्ण था। उसका सुख मानो सदा के लिए स्थायी हो गया था और उसका जीवन अब निरर्थक नहीं रह गया।

आनन्द के उच्छ्वास से परिपूर्ण होकर उसका हृदय कभी-कभी खिल कर प्रकाशित हो उठना चाहता था। उस आनन्द के दुर्जय वेग को अब मन में ही रोक रखने में वह असमर्थ हो रही थी।

अरुण ने एक दिन किरण से कहा कि हम लोगों की बातचीत में तुम क्यों नहीं सम्मिलित हुआ करते? सचमुच वह कौन है, किस तरह मैं उसका वर्णन करूँ और किन शब्दों में उसकी ठीक-ठीक प्रशंसा की जा सकती है, यह मैं समझ ही नहीं पाता। ऐसा तेजस्वी और स्वाधीन मन है। प्रेम और करुणा से भरा हुआ उसका हृदय है। इसके अतिरिक्त उसकी शिक्षा भी कितनी उच्च है। सभी बातों में वह ठीक हमारे ही समान है या यों कहिए कि बातचीत करने और कल्पना करने की शक्ति उसमें हमारी अपेक्षा भी अधिक है। उस शक्ति का परिचय

शब्दों के द्वारा नहीं दिया जा सकता। इसी से मैं समझता हूँ कि यदि तुम भी रहो तो बड़ा आनन्द आवे। उस दशा में हम तीनों बड़े आनन्द से समय काट सकेंगे।

किरण के हताश हृदय की तीव्र ज्वाला ने मानो उसके मुँह पर स्याही डाल दी। उसने बड़े अनुत्साह के साथ उत्तर दिया कि मुझे तो समय नहीं मिलता भाई। तुम्हें तो मालूम ही है कि प्रातःकाल कितने काम रहते हैं। इसके बाद उसने साहस करके कहा—क्या तुम्हें पहले की अपेक्षा इन कुछ महीनों में वीणा में कोई परिवर्तन मालूम पड़ रहा है?

किरण को यह जानने का बड़ा कौतूहल हो रहा था कि लीला में वीणा की अपेक्षा कहाँ और क्या अन्तर है, अरुण यह समझ सका है या नहीं। इसी मतलब से उसने यह बात भी पूछी थी। इसके उत्तर में अरुण ने उच्छ्वासित होकर कहा—ओह, बड़ा परिवर्तन हुआ है। कहता तो हूँ। वह क्या है, यह कहकर मैं नहीं समझा सकता। पहले-पहल हम दोनों ही शायद बाहरी सुन्दरता और एक उदास प्रेम में ही विह्वल हो गये थे, अन्तःकरण का परिचय प्राप्त करने या देने का उस समय क्या किसी को अवसर था? परन्तु अब? शायद तुम्हें आश्चर्य होगा, वीणा इतनी सुन्दर है कि मैं उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त उसकी अनुपम सुन्दरता का यदि एक अंश भी न रह जाय तो अब मेरी कोई हानि न होगी। अब मैं उसके हृदय का परिचय पा गया हूँ। वह हृदय सुन्दर से भी सुन्दर है। लाखगुना सुन्दर है, वह क्या है, यह मेरा हृदय ही जानता है।

किरण को ऐसा जान पड़ने लगा, मानो कलेजे को कोई कुन्द छुरी से काट रहा है। मर्मान्तक वेदना के मारे दाँत पीसता हुआ वह खिड़की से बाहर निकल गया। अरुण उस समय एक नीला चश्मा रूमाल से पोंछ रहा था। वह कहने लगा कि यहाँ आने से पहले ही यह चश्मा यहाँ भेज देने को मैं लिख आया था। आज इतने दिन के बाद यह मिला है। मेरी धारणा है कि इस चश्मे से मुझे लाभ हो सकेगा। प्रकाश से टकराने पर दोनों नेत्रों में बड़ी पीड़ा होती है।

"प्रकाश से टकराने पर?"—अपनी व्यथा भूल कर किरण ने विस्मितभाव से मुँह फेर लिया। उसने कहा—मेरी तो धारणा थी कि तुम बिलकुल ही नहीं देख पाते हो।

"पहले ऐसा ही मालूम पड़ता था। किन्तु इधर कुछ दिनों से सवेरा होने पर नेत्रों पर से गाढ़ अन्धकार का पर्दा हट जाता है और नेत्रों में कुछ पीड़ा होने लगती है। यह लक्षण कुछ अच्छा सा मालूम पड़ रहा है। जान पड़ता है कि इतने दिन के बाद हमारे पंगु स्नायुओं में फिर से सजीवता आ गई है। बम्बईवाले अस्पताल के डाक्टर ने मुझसे क्या कहा था, जानते हो?

किरण को इस विषय में कोई भी बात नहीं मालूम थी। बात यह थी कि अरुण पहले इतना गम्भीर और उदास रहा करता था कि अपने सम्बन्ध में वह कभी किसी तरह की बात ही नहीं करता था। अतएव उसकी यह बात सुनकर किरण ने कहा—क्यों, क्या कहा था? तुमने तो मुझसे कभी कुछ बतलाया नहीं।

अरुण ने प्रसन्नमुख से कहा—वे लोग कह रहे थे कि तुम्हारे नेत्रों के तारों में कोई ख़राबी नहीं आई है। केवल दृष्टि के स्नायु में धक्का लग जाने के कारण तुम अन्धे हुए हो। तुम्हारा शरीर यदि स्वस्थ और सबल रह सका, साथ ही चित्त भी ख़ूब प्रसन्न रहा, तो समय पाकर ये स्नायु फिर भी सबल हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा था कि यह आशा इतनी साधारण है कि इसके बल पर तुमसे कुछ कह नहीं सकता। किन्तु मन यदि स्वस्थ रहा और उसमें स्फूर्ति बनी रही तो तुम्हारी दृष्टि का फिर से लौट आना असम्भव नहीं है। दुख, संशय, व्यथा तथा स्नायविक दुर्बलता आदि हमारी दृष्टि के फिर से लौट आने में बड़े बाधक हैं। नेत्रों के आरोग्य हो जाने पर भी जीवन में यदि ये सब बाधक फिर से आ पड़ें तो नेत्रों के स्नायु फिर पंगु हो जायँगे और मैं सदा के लिए अन्धा हो जाऊँगा। ये बातें कहते-कहते अरुण अपनी बातों से स्वयं ही भयभीत होकर काँप उठा।

किरण ने मन ही मन ज़रा सी शान्ति और आनन्द का अनुभव किया। वह सचमुच ही अरुण से स्नेह करता

था। उसकी इस शोचनीय अवस्था से किरण के हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा था। किन्तु उसकी दृष्टि के फिर से लौट आने की आशा है, यह जानकर उसने कहा—आज यह बात सुनकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, यह मैं कैसे व्यक्त करूँ? तुमने तो आज तक इस सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं था। यह बात समाप्त करके किरण ज़रा देर तक चुप रहा, बाद को अपने आप ही कहने लगा—और किसी को, अर्थात् उन्हें भी यह बात बतलाई है या नहीं? अब अरुण के सामने लीला का नाम किरण स्वाभाविक रूप में नहीं ले सकता था।

चश्मे को अच्छी तरह से पोंछ कर अरुण ने अपनी आँखों पर लगा लिया और दो-एक बार इधर-उधर आँख घुमाकर वह कहने लगा—नेत्रों को अब कुछ आराम मिल रहा है। कितनी पीड़ा हो रही थी! इसके बाद उसने किरण से कहा—वीणा के सम्बन्ध में कह रहे हो? नहीं, मैंने उससे कुछ नहीं कहा। झूठी आशा देने में लाभ क्या है भाई? यदि किसी दिन मेरे भाग्य से असम्भव भी सम्भव हो जायगा तब तो सभी को मालूम हो जायगा। परन्तु इस समय तो मैं इसकी कल्पना तक नहीं कर सकता हूँ। क्या सचमुच कभी ऐसा दिन आवेगा जब मैं उसका वही सुन्दर मुँह फिर से देख सकूँगा! इतना कष्ट कर मैं रोज़ रोज़ जो तमाम लिखता जा रहा हूँ, यह सब और लोगों की तरह मैं भी कभी देख कर पढ़ सकूँगा? क्या यह कभी सम्भव होगा! मन में तो ऐसी आशा करते डर लगता है।

किरण मन ही मन व्यथित होकर अरुण के आशा और निराशा से कातर तथा उद्वेग से चञ्चल मुँह की ओर ताकता हुआ मस्ट मारे बैठा रहा। वह स्वयं भी अरुण की इस बात पर पूर्णरूप से विश्वास नहीं कर पाता था। जो नेत्र इतने दिनों तक चिकित्सा तथा तरह तरह के अन्य उपाय करने पर भी दृष्टिहीन हो गये वे फिर अपने आप ही स्वस्थ होकर कार्यक्षम हो जायँगे, यह बात तो उस समय विश्वास के योग्य मालूम नहीं पड़ रही थी। तो भी वह सोचने लगा कि यदि चिकित्सा-विज्ञान के विद्वानों ने कहा है तो ऐसा हो जाना भी कठिन नहीं है। किन्तु प्रयत्न करने पर भी सान्त्वना की कोई बात उसे नहीं मिल सकी। हृदय को व्यथा से परिपूर्ण करके वह चुपचाप बैठा रहा।

थोड़ी देर के बाद ज़रा सा शान्त होकर अरुण अपने आप ही कहने लगा—इसी से कहता हूँ कि इधर कई दिनों से मानो थोड़ा-थोड़ा प्रकाश का आभास मिलता है। इसका यदि कुछ अच्छा परिणाम हुआ तो उसका भी श्रेय वीणा को ही होगा। उसी ने मेरे निर्जीव शरीर में प्राणों का सञ्चार किया है। निराशा दुख और मानसिक वेदना के मारे, मैं तो चलने पर ही उतारू हो गया था। मेरे शरीर के सभी स्नायु अशक्त होकर मर चुके थे। यह जो मैं नवीन जीवन प्राप्त कर सका हूँ वह केवल स्नायुओं की अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्यकरी शक्ति है। मुझमें इस तरह की शक्ति का सञ्चार किसने किया है? उसी ने न? दृष्टि लौटा सका तो बहुत अच्छा है, यदि न लौटा सका तो भी मुझे कोई विशेष दुःख नहीं है। अब मैंने जीवन की एक नवीन दिशा प्राप्त कर ली है। वीणा ने कई बिलकुल नये ढंग की पुस्तकें ला रक्खी हैं, हम दोनों साथ-साथ पढ़ेंगे और साथ-साथ पुस्तकें लिखेंगे। मैं जो कुछ लिख रखता हूँ उसे वह आने पर शुद्ध कर देती है। आगे चल कर मैं बोल दिया करूँगा, वह लिख लेगी। रात-दिन वह मेरे पास ही पास रहा करेगी। इन सारे सुखों की कल्पना से मेरा हृदय बहुत हलका हो गया है भाई, उसे पाकर मैं बिलकुल एक नया आदमी हो गया हूँ।

लीला की बातें कहते-कहते आनन्द के उच्छ्वास और सुख के मारे अरुण एक-दम से विह्वल हो गया, उसे किसी बात की ख़बर न रह गई।

"किरण, तुम्हीं मेरे, एक-मात्र प्रिय मित्र हो। इतने दुख में पड़ कर भी मैंने जो ऐसी शान्ति प्राप्त की है, इससे तुम्हें भी ख़ूब सुख मिला है न? कष्ट सहे बिना दुर्लभ वस्तु नहीं प्राप्त की जा सकती भाई! कभी-कभी मैं यही सोचता हूँ कि दृष्टि से यदि न वञ्चित होता तो शायद उसे इस रूप में मैं न प्राप्त कर सकता। पहले जिस रूप में उसे पाता, वह पाना तो स्त्री-पुरुष के साधारण

मिलन के समान निर्जीव होता। इधर यह मिलन क्या है, इसका सुख मैं तुम्हें कैसे बताऊँ? इसके कारण तुम भी सुखी हुए हो न भाई?

"अवश्य" अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता के ही साथ किरण ने यह वाक्य कहने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके कण्ठ से वह स्वर न निकल सका। अरुण के पास से उठकर वह अपने कमरे में चला आया और खिड़की के पास खड़ा हो गया। आज वह कहीं किसी काम पर न जा सका।

कुछ दिनों से किरण अपने में एक अतृप्ति, एक अपूर्णता का अनुभव कर रहा था। किसी प्रकार भी, कोई काम-काज करके या लिखने-पढ़ने में चित्त लगा कर उस अपूर्णता को वह दूर नहीं कर पाता था। इस दिशा में किरण को जो असफलता हो रही थी, उसके कारण उसका हृदय सदा ही दुखी रहता। वह कोई भी काम करता या अपना चित्त बहला रखने के लिए कितना भी प्रयत्न करता, किन्तु अन्तस्तल की निराशा दूर न होती। वह सदा ही अनुत्साहित और आनन्दहीन बना रहता।

शरीर से किरण सदा से ही हृष्ट-पुष्ट रहता आया है, साथ ही चित्त भी उसका सदा प्रफुल्लित रहा करता था। उसकी जो भी आवश्यकतायें होतीं उन्हें पूर्ण करने की उसमें यथेष्ट शक्ति थी। आज तक किसी बात के लिए किसी और से उसे सहायता लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। अतः स्वभावतः वह किसी भी विषय में आसक्त नहीं रहता था। सबसे वह बेखटके मिलता, खेलता-कूदता और आमोद-प्रमोद की बातों में भाग लेता, किन्तु किसी भी विषय में वह कभी घनिष्ट भाव से नहीं प्रवेश करता था। उसके इस निर्विकार अटल-अचल-भाव में कोई परिवर्तन नहीं कर सका।

लीला ने ही पहले-पहल किरण के प्रशान्त हृदय में भावों की तरङ्गें उत्पन्न की थीं। जिस प्रकार वसन्त-ऋतु की हवा लगते ही मुरझाई वनस्थली लहलहा उठती है और वृक्ष फल-फूलों से लद जाते हैं, ठीक वैसे ही लीला के संसार में पड़ कर किरण की स्वाभाविक गम्भीरता भी हवा हो गई और वह एकाएक आनन्द और उमङ्ग के कारण चञ्चल होकर बोल उठा। उसका शरीर और अन्तःकरण मानो एक अनिर्वचनीय नये रस से अभिषिक्त हो उठा।

इस नये भाव की तरङ्गों में पड़ कर किरण ने तीन महीने वहाँ और किस प्रकार काट दिये, इसका कोई हिसाब नहीं था। लीला के साथ उसकी इस तरह बढ़ती हुई घनिष्ठता देखकर समाज में सभी लोगों ने तरह-तरह की कानाफूसी की है। घर में माता से लीला को इसके लिए काफ़ी फटकार सुननी पड़ी है, किन्तु इन सब बातों से उन दोनों को कोई हानि नहीं हुई। वे दोनों ही कभी किसी की बात पर कर्णपात न करके अपनी रुचि के अनुसार चलते आये हैं। उन लोगों ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा कि हम दोनों का यह सम्बन्ध साधारण स्त्री-पुरुष का सा है, जैसा कि सदा से चला आ रहा है या इसमें पवित्रता होने पर भी लोग बदनाम कर सकते हैं। लीला के सम्बन्ध में किरण की वास्तविक धारणा क्या थी, इसको स्वयं किरण भी नहीं जानता था। न तो कभी उसने इस सम्बन्ध में विचार किया था और न विचार करने का उसके पास समय था। ठीक यही हाल लीला का भी था। वे केवल इतना ही जानते थे कि हम दोनों परस्पर एक दूसरे के मित्र हैं। इसके अतिरिक्त आज तक उनके मन में कभी और कोई बात नहीं आई।

प्रातःकाल सोकर उठते ही किरण के मन में यह बात आती कि लीला के साथ घूमने जाना है। उतावली के साथ आवश्यक कामों से निवृत्त होकर वह कपड़े पहनता और फिर घूमने के लिए निकल पड़ता। उसे बराबर यह चिन्ता लगी रहती कि कहीं विलम्ब न हो जाय। दोपहर को घर लौटने पर वह भोजन करके विश्राम भी बड़ी कठिनाई से करता, ज़रा सा दिन झुकते ही फिर लीला के यहाँ के लिए रवाना हो जाता। दोपहरी में जितनी भी देर वह घर में रहता, उतनी देर तक का समय उसे पर्वत-सा मालूम पड़ता। साँझ को दोनों क्लब में जाते और खेल-कूद तथा गाना-बजाना समाप्त होने पर घर लौटते। नौ बजते-बजते किरण लीला को उसके घर पहुँचाकर तब अपने घर जाता। रात को जब तक उसे नींद न

आती तब तक का समय केवल दूसरे दिन का कार्यक्रम तैयार करने में ही काटता था। इस प्रकार आत्मविस्मृति में निमग्न होकर चलते-चलते एकाएक एक बहुत करारी ठोकर खाकर किरण लौट पड़ा और दृष्टि फेरकर देखा।

वह लीला के साथ किरण की जान-पहचान का पहला दिन था। उस दिन की बातें उसके हृदय में मानो अग्नि के स्फुलिंगों से खुदी हुई थीं।

वह बात सुनकर उसका न्यायनिष्ठ हृदय लीला की वञ्चना और प्रतारणा के कारण घृणा और क्रोध के मारे जल उठा था। बाद को उसके मन में यह बात आई कि उसका इतने दिनों का सञ्चित किया हुआ अपना निजी धन अनजान में ही बड़ी आसानी से दूसरे के हाथ में चला गया। किरण चकित और भयभीत हो उठा।

जिस तरह भटका हुआ पथिक रास्ते में चलते-चलते कोई अकस्मात् कठोर बाधा पाकर ठमक कर खड़ा हो जाता है, ठीक वैसे ही यह आघात पाने के बाद किरण भी इतने दिनों की स्वप्नमयी निद्रा से सचेत होकर अपने हृदय को परखने की चेष्टा करने लगा। तब उसे मालूम हुआ कि मेरे चित्त पर लीला का ही अधिकार है। इन कुछ ही महीनों में मुझे पूर्ण रूप से तृप्त करके अखण्ड प्रताप से लीला राज्य कर रही है। यह देख कर किरण चकित हो गया। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या वह अभी तक सोया था?

किरण ने लीला को समझाया, तरह-तरह की युक्तियाँ प्रदर्शित करके उसके कार्य की असारता दिखलाई, साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया कि उसका यह व्यवहार न्याय के विरुद्ध है। परन्तु लीला ने किसी प्रकार भी अपने मत का परिवर्तन नहीं किया। तब क्रोध और ईर्ष्या के मारे किरण अधीर होगया, उसने लीला के साथ अपना सारा सम्बन्ध त्याग दिया।

आज एक सप्ताह से किरण ने लीला के यहाँ का आना-जाना बन्द कर रक्खा था। तब से उसने क्लब में जाना भी बन्द कर रक्खा था। प्रातःकाल लीला जब अरुण के पास आती थी तब उसके आने के पहले ही किरण घर से निकलने के लिए उतावला हो जाता और उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही निकल जाया करता था। लीला जब तक वहाँ से जाती नहीं थी, तब तक लौट कर वह घर नहीं आया करता था। परन्तु इतना सावधान रहने पर भी फल क्या हुआ? बाहर से लीला से वह बचता अवश्य रहा, किन्तु इस एक सप्ताह में किरण क्या कभी क्षण भर के लिए भी उसे अपने हृदय से पृथक् कर सका है? उसकी अन्तरात्मा इतने दिनों में ही कितनी तृषित और बुभुक्षित हो उठी थी, इसे मुँह से न स्वीकार करने पर भी हृदय से अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं था। परन्तु लीला तो बड़ी आसानी से ही उसे त्याग कर दूसरे की हो गई तब किरण के लिए उपाय ही क्या था?

खिड़की के पास खड़ा होकर किरण शून्य हृदय से बग़ीचे के ऊँचे-ऊँचे नारियल के पेड़ों की ओर ताक रहा था। लीला अतिथि के रूप में अपने आप ही उसके हृदय के द्वार पर आई थी। दो दिन हँस-खेलकर और उसे आनन्दित करके फिर वापस चली गई तो इसमें किरण का क्या हानि-लाभ था? जिस तरह पहले उसके पास कोई साथी-संगी नहीं था, वह अकेला था, ठीक वैसे ही आज भी अकेला रह गया था। तो इसमें उसके हृदय के इस तरह शून्य और व्याकुल होने की क्या बात थी? कौन सी ऐसी बात थी जिसके कारण वह अपने पहले के ही जीवन में नहीं लौट जा पाता था। उसके पहले जो अवस्था थी वह अब भी तो ज्यों की त्यों बनी थी। उसके काम-काज, मित्रमण्डली, शिकार, खेल-कूद सभी तो वही थे। परन्तु उसमें यह शुष्कता और शून्यता कैसे आगई थी? क्या लीला के लिए? परन्तु वह तो उसका परित्याग करके आनन्द से ही अपना दिन व्यतीत कर रही थी?

किरण इस सोच-विचार में पड़ा ही था कि धीरे-धीरे उसके हृदय में लीला की उस दिन की वही लज्जा और भय से कातर मुखच्छवि उदित हो उठी। वही शक्ति, दर्प और तेज से भरा हुआ मुँह था। वह मुख उस दिन उसकी विरक्ति की आशङ्का से कितना कातर और कुण्ठित हो उठा था? उस दिन उसने किरण के प्रति कितनी नम्रता प्रकट की थी। एक एक करके

सारी बातें उसके हृदय में आकर छुरी के समान उसे बेधने लगीं। क्रोधान्ध होकर उसने लीला को कैसी कैसी बातें कही थीं। उसे स्वेच्छाचारिणी आदि कहकर गाली भी दी थी। तो भी वह किरण के सामने कितनी नम्र, कितनी कुण्ठित बनी रही! लीला की उस दिन की अभिमान और व्यथा से भरी हुई सजल दृष्टि याद आकर किरण को व्याकुल करने लगी।

"लीला!" "मेरी लीला।" वह अपने आप ही अस्फुट स्वर से अपने इस प्रिय नाम का उच्चारण करके मन्त्र के समान बार-बार दोहराने लगा। "मैं भला तुझे कभी कष्ट दे सकता हूँ?"

किरण का हृदय व्यग्र हो उठा। उसी समय उसके जी में आया कि दौड़कर लीला के पास जाऊँ। किन्तु हाय, लीला तो अरुण की है। अरुण लीला का है! बीच में पड़नेवाला वह कौन है। एक दिन जो सर्वस्व का अधिकारी था, वह क्या आज केवल मित्रता की सान्त्वना से ही खड़े खड़े स्वयं अपना सर्वनाश देख सकता है? लीला के पास जाने से अब फल क्या होगा?

किरण और नहीं स्थिर रह सका। अधीर तथा व्याकुल होकर वह कमरे में टहलने लगा। वह क्या कर सकता है? बे-समझे-बूझे केवल दया के वश में होकर लीला जो काम कर बैठी है उसका अन्तिम परिणाम होगा अरुण के साथ विवाह। हृदय की ज्वाला से अधीर होकर किरण एक बार अन्तिम प्रयत्न करने के लिए नीणा के पास गया था। वही यदि लौट कर रास्ते पर आजाती, तो सारा काम बन जाता। परन्तु उसके पास से भी तो किरण को असफल ही लौटना पड़ा है! अब और कोई उपाय रहा नहीं! न जाने किस अशुभ मुहूर्त में वसन्तपुर आकर अरुण उसका अतिथि हुआ है। वही उसके सारे दुख और निराश का कारण है! किरण फिर स्थिर होकर खड़ा हुआ। अहा असहाय, अन्धा दुखिया अरुण! जो एक दिन किरण का अभिन्न-हृदय मित्र था वह आज उसके प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी है। साथ ही वह इस बात को जानता भी नहीं। उसके इस उभड़े हुए प्रेम की कहानी किरण के हृदय में कैसा दावानल धधका रही थी।

किरण सोचने लगा कि जिस दिन मैंने लीला को नीच, धोखेबाज़ आदि कह कर गालियाँ दी थीं उस दिन लीला ने यही युक्ति उपस्थित की थी कि मेरे इस कार्य का उद्देश केवल अन्ध अरुण के हृदय में फिर से आनन्द की आशा उत्पन्न करके उनकी जीवन-रक्षा करना है। मुझे धोखा देने की उसकी इच्छा नहीं थी। उसके इस उद्देश में कितनी सफलता हुई है यह तो अरुण के चेहरे और शरीर से ही मालूम हो जाता है। आज-कल प्रसन्नता के मारे कैसा उसका चेहरा खिला रहता है। लीला ने उसके जीवन की गति परिवर्तित कर दी है। ऐसी उसमें अद्भुत शक्ति है! ऐसा प्रबल उसका व्यक्तित्व है! इस अतुलित प्रतिभा और शक्तिशालिनी लीला को तुच्छ समझ कर मैंने गालियाँ दी हैं!

लीला ने जो कुछ कहा था उसे कार्यरूप में परिणत करके दिखा दिया। वह यह भी कह चुकी थी कि मैं अन्त तक जाने को तैयार हूँ। ऐसा करेगी भी वह। किरण आदि से अन्त तक इस मामले को सोचता रहा। लीला की आशा वह अन्त तक त्याग नहीं सकता था, इधर उसे प्राप्त करने का किरण की दृष्टि में कोई उपाय भी नहीं था। उसका समस्त हृदय निराशा और वेदना के कारण क्षुब्ध और पीड़ित होने लगा। प्रतीकार का कोई भी मार्ग न देखकर वह किं कर्तव्यमूढ़ होने लगा।

जो लीला किरण को प्राणों से भी अधिक प्रिय थी, वही आज अपनी इच्छा से दूसरे को वरण करके उससे दूर हो गई है! साथ ही जो किरण के प्रेम का प्रतिद्वन्द्वी था, जिसने उसके जीवन की सारी सुख-शान्ति अपहरण कर ली थी, वह उसी का परम प्रिय मित्र, बिलकुल असहाय, अन्धा अरुण था। ख़ास किरण के घर में ही उसकी आँखों के ही सामने उसके मित्र की यह प्रेमलीला चल रही थी। इस सम्बन्ध में वह केवल श्रोता भर रह गया था, प्रतीकार का कोई उपाय नहीं था। उसे धैर्यपूर्वक यह कहानी सुननी पड़ रही थी।

[क्रमशः

—ठाकुरदत्त मिश्र
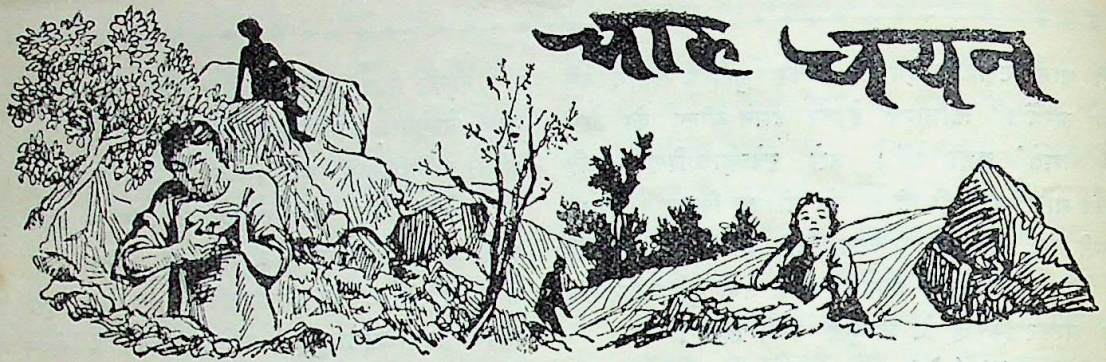
१—शान्ति

(१)

"प्रेम की प्रतिमा परम पवित्र।
त्याग की तनया तप का मित्र।
आत्म-विस्मृति की सुरा विचित्र।
रचे कवि कैसे तेरा चित्र ?
व्याप्त तू है जग में, पर शान्ति !
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति ?"

(२)

कामना सदा योगियों की।
वासना विषय-भोगियों की।
यातना चिर-वियोगियों की।
चिकित्सा जीर्ण रोगियों की।
प्रकृति की सुखद, सुमञ्जुल कान्ति।
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति ?

(३)

किये तेरे हित यत्न अनेक।
हुए सब व्यर्थ विचार-विवेक।
मार्ग बाक़ी अब रहा न एक।
खोज में मर भी मिटे अनेक।
मिली तू ; मिली किन्तु बन क्लान्ति।
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति ?

(४)

दुर्लभे !' तेरा किञ्चित् लेश
कहीं यदि पा सकते अखिलेश;
छोड़कर क्षीर-सिन्धु-सा देश,
न करते जग-सर्जन का क्लेश;
व्याप्त हो जिसमें रही अशान्ति
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति ?

(५)

नहीं तत्त्वों की अवगति में।
नहीं तू उन्नति-अवनति में।
नहीं है तू जग की गति में।
छिपी है कहाँ लाज-प्रतिमे ?
शान्ति ! अयि विश्वमोहिनी शान्ति !
तुझे मैं शान्ति कहूँ या भ्रान्ति ?

—शिवनाथ मिश्र

२—मुफ़्त की सवारी

'उतरा' 'उतरा' का शोर गाँव भर में मच गया। मर्द, औरत, बच्चे, बुड्ढे सभी हवाई जहाज़ को उतरते देखकर दौड़ पड़े। जो हल जोत रहा था वह हल-बैल छोड़कर दौड़ा, जो तम्बाकू पी रहा था वह अपना नारियल लिये हुए दौड़ा जो घास काट रही थी वह अपनी खुरपी लिये हुए दौड़ी, जो बच्चे को दूध पिला रही थी वह बच्चे को रोता छोड़कर भागी चली आई। मतलब यह कि हवाई-जहाज गाँव में गड़गड़ाता हुआ आसमान से उतरा क्या, मानो गाँव में प्रसन्नता व कौतूहल मूसलाधार बरसने लगा। इसी कुतूहल में एक दस वर्ष का लड़का अपनी कापी-पेन्सिल लिये दौड़ता-हाँफता हवाई जहाज

के पास आया। उसने पाठशाला में ज्यों ही सुना कि उसके गाँव में हवाई जहाज़ उतरा है, वहाँ से सीधा दौड़ पड़ा, जहाज़ के पास जाकर वह खड़ा हो गया। मन में सोचने लगा कि इस विमान में बैठनेवालों को वैकुण्ठ का सुख मिलता है। वह बड़े कुतूहल से जहाज़ के चारों ओर घूम घूमकर उसे देखने लगा। एक बार मन में आया, कूदकर चढ़ जाऊँ तो कैसा मजा हो। यह सोचकर वह उदास हो गया और फिर जहाज़ के चारों ओर घूमने लगा।

हवाई जहाज़ के यात्री इधर-उधर लोगों की भीड़ को टहल-टहलकर देख रहे थे। मेकैनिक जहाज़ को दुरुस्त करने में भिड़ा था। अतएव उस लड़के को मौक़ा मिल गया। वह चुपचाप तेज़ी के साथ केबिन में कूद गया। उसने देखा, केबिन ख़ाली है। इससे उसे बड़ी ख़ुशी हुई। इतने में उसके मन में यह विचार आया कि यात्री लोग यहाँ आकर बैठेंगे, वह हवाई जहाज़ के पिछले भाग की ओर चला गया। उसके इस भाग में बैग आदि भरे थे। भाग्य उसके साथ था, भावी उसे मदद कर रही थी। वह चुपके से उन्हीं बैगों के बीच में अपने को छिपा-कर बैठ गया, मानो वह बड़ा ख़ुशी था। जहाज़ के चलने में जितनी ही देर हो रही थी उसका हृदय उसी प्रकार धड़कने लगा। एक बार तो हड़बड़ा-कर वह उठ खड़ा हुआ और सोचा कि निकल कर भाग जाऊँ। परन्तु तुरन्त ही इस विचार के आने से कि विमान छोड़कर अब कहाँ जाओगे, वह फिर अपने स्थान पर जमकर बैठ गया। उसने झुककर सुना और हँस पड़ा। पाइलट यात्रियों को अपनी अपनी जगह पर बैठने का आदेश कर रहा था। उसका हृदय उछला पड़ता था। मालूम होता था कि जीवन का आनन्द आज ही मिला है। वह स्वप्न—वह हृदय की आकांक्षा जिसको सोच-सोचकर वह आनन्द में मग्न हो जाया करता था, आज वास्त-विक रूप में उसको मिलनेवाला था। मिलनेवाला ही नहीं था, मिल ही गया। भाग्य ने उसका साथ दिया। हवाई जहाज़ दुरुस्त हो गया। इंजन की भर्र भर्र की आवाज़ सुनाई देने लगी। उसी के साथ साथ उस लड़के का हृदय भी कूदने लगा। चुपके से झाँककर देखा। यात्री अपनी अपनी जगह पर बैठ गये थे। उसके जी में जी आया। उसने परमात्मा की ओर हाथ उठाकर कहा—धन्य हो भगवान् कि वे लोग इधर नहीं आये। इंजन भरभराकर ऊपर को ओर उड़ा। लड़के को ऐसा मालूम हुआ कि अब वह वैकुण्ठ की ओर जा रहा है। वह इधर-उधर देखने लगा कि कहीं कोई खिड़की आदि हो तो उससे नीचे प्रकृति का आनन्द लिया जाय। परन्तु कुछ न मिला। अन्त में उसे दो-तीन छेद दिखाई दिये, जो शायद हवा आने-जाने के लिए थे। उसने बड़ी उत्सुकता से उसमें उँगुली डालकर चाहा कि उन्हें बढ़ा दे, परन्तु वे बढ़ न सके। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। कभी सोचता कि वह कैसा भाग्यवान् है जो जहाज़ पर चढ़ा है। कभी सोचता कि अब कैसे इस पर से उतरूँगा। वह यह सोच ही रहा था कि किसी ने गरज कर कहा—ख़बरदार! अगर कोई यात्री हिला तो मेरी गोली का निशाना बन जायगा।

लड़के ने केबिन की ओर झाँक कर देखा। यात्रियों में से एक मनुष्य—एक हट्टा कट्टा जवान—पिस्तौल हाथ में लिये यात्रियों को धमका रहा था। पहले तो वह काँप उठा। फिर यह विचारकर कि हवा में डकैती हो रही है, उसके मन में कुतूहल पैदा हो गया और वह उत्सुकता से उन लोगों को देखने लगा। डाकू पाइलट की ओर बढ़ रहा था और सब यात्री भय, अचम्भे व घबराहट के कारण सन्नाटे में आ गये थे, वे चुपचाप मूर्ति के समान बैठे थे। "चुपचाप बैठे रहो मैं इंजिन चलाऊँगा अगर चुपचाप बैठे रहोगे तो जान बच जायगी नहीं तो........."। लड़के ने देखा कि डाकू यात्रियों को धमका रहा था।

डाकू इंजिन के पास चला गया। उसने जाकर पाइलट को एक घूसा ज़ोर से मारा और उससे इंजिन चलानेवाला पहिया अपने हाथ में ले लिया। अब जहाज़ एक-दम घूमकर दूसरी ओर चलने लगा। लड़का समझ गया कि डाकू हवाई जहाज़ को अपने स्थान की ओर लिये भागा जाता है। उसको यह विचारकर बड़ा ही आनन्द आया कि जब वह पहले-पहल जहाज़ पर चढ़ा तब उसे ऐसी अनोखी घटना—हवा में डकैती—के देखने का अवसर प्राप्त हुआ। जब वह इस प्रकार की कल्पना कर रहा था तब उसके चित्त में एक-दम एक नया विचार प्रकट हुआ और वह उस विचार के आते ही मारे ख़ुशी के उछल पड़ा। वह अपने हाथ से अपनी पीठ ठोकने लगा, मानो वह अपने इस नूतन विचार के लिए अपने आप को शाबासी देने लगा।

उसने जेब से अपनी कापी निकालकर उस पर कुछ लिखा और उस पृष्ठ को फाड़ लिया। फिर उसको लपेटकर एक पुल्ली सी बनाकर उसने उसे छेद से बाहर गिरा दिया। उसने फिर अपनी कापी के दूसरे पृष्ठ पर कुछ लिखा, और उसे भी पहले की तरह पुल्ली बनाकर बाहर डाल दिया। यह कार्रवाई वह बराबर करता रहा। यहाँ तक कि वह कापी ख़त्म होगई।

हवाई जहाज़ बड़े शान के साथ आगे को बढ़ता चला जा रहा था। डाकू मिनट-मिनट पर अपना तमंचा यात्रियों की ओर करके कह रहा था कि ज़रा हिले तो जान गई। बेचारे यात्री इस विचार से कि देखो भाग्य उन्हें कहाँ ले जाता है, उनकी क्या गति होती है, अधमरे से चुप बैठे थे। इधर यात्रियों की यह दशा थी, उधर वह लड़का अपनी कार्रवाई में लगा था।

कापी के ख़त्म हो जाने पर वह लड़का सोचने लगा कि अब क्या करे। उसका चित्त ऊबने लगा। उसको उड़ने का आनन्द नहीं मिल रहा था। उसके चित्त में रह-रहकर यह बात उठने लगी कि देखें जहाज़ पृथ्वी पर उतरता कैसे है और ये यात्री कैसे लूटे जाते हैं। तुरन्त ही यह विचार हुआ कि जब डाकू यात्रियों को लूटना शुरू करेगा तब वह मुझे भी ढूँढ़ लेगा। मुझे पाने के बाद डाकू मुझे भी शायद मारे। परन्तु मुझे डाकू मारेगा क्यों? मैंने उसका क्या बिगाड़ा है? यदि कोई कुछ कह सकता है तो पाइलट कह सकता है। पर वह ख़ुद ही बन्दी है। वह मेरा क्या करेगा? इस तरह के तर्क-वितर्क से लड़के को कुछ ढाढ़स हुआ। अब उसके मन में प्रकट हो जाने का विचार उठा। परन्तु शीघ्र ही उसने यह सोचा कि इन झंझटों में क्यों पड़ूँ। जो भाग्य में होगा, होगा।

× × ×

लड़का फिर चौकन्ना हो उठा, मानो झपकी से जाग पड़ा हो। उसने झाँककर देखा। यात्रियों में खलबली मची हुई थी। डाकू घूमकर उन यात्रियों को घूर घूरकर देख रहा था। डाकू ने हवाई जहाज़ को पूरी गति पर छोड़ दिया था।

यात्रियों में से एक चिल्ला उठा—डाकू अब तू क्या कर सकता है? देखता नहीं, दो हवाई जहाज़ तेरा पीछा किये दौड़े आ रहे हैं।

जैसे ही यात्रियों को दो हवाई जहाज़ों की झलक देख पड़ी उनमें नया जीवन-सा आ गया।

डाकू ने घुड़ककर यात्रियों से कहा—घबराओ नहीं। ये बेचारे क्या जान सकते हैं कि कोई डाकू जहाज़ लिये भागा जाता है। तुम लोगों की ख़बर स्थान पर पहुँचने पर अच्छी तरह ली जायगी।

वह लड़का उन दोनों जहाज़ों के देखने के लिए उतावला हो रहा था, परन्तु उन छेदों से उसको कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उसका दिल बाहर जाने के लिए उछला पड़ता था, परन्तु किसी कारण-वश वह बाहर न गया।

कुछ और मिनट बीत गये। यह समय ऐसा घटनामय था कि यात्रियों की अवस्था का अन्दाज़ा उनके देखने से लग सकता था। उन लोगों की

आशा थी, परन्तु वह आशा क्या थी यह वे निश्चित न कर सकते थे। डाकू विचलित होकर इंजन को पूरी गति से चला रहा था। लड़के के चित्त में कुतूहल छलाँगें मार रहा था।

एकाएक लड़के को एक धक्का लगा। मालूम हुआ, मानो इंजन में ब्रेक लगा दिया गया है। फिर उसे मालूम हुआ, मानो जहाज़ ज़मीन की ओर उतर रहा है। कुछ ही पल में हवाई जहाज़ एक बड़े मैदान में उतरा। डाकू के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, यात्री लोग प्रसन्न थे, परन्तु उन्हें यह न मालूम था कि बचानेवाला उनका हितैषी है या उनका दुश्मन है।

कुछ ही देर में पुलिसमैन ने दरवाज़ा खोलकर पूछा—कौन काग़ज़ फेंक रहा था?

एक-दम सन्नाटा छा गया, किसी ने कुछ नहीं कहा। कुछ देर के बाद डाकू ने कड़ककर कहा कि तुम लोगों को मेरे जहाज़ को रोकने का क्या अधिकार है?

इतने में चारों ओर से पुलिसमैन डाकू पर टूट पड़े और उसे पकड़ लिया। डाकू ने सोचा कि अब बचाव करना व्यर्थ है, वह चुपचाप क़ैद हो गया।

पुलिसमैन ने कुल हाल सुनने के बाद कहा कि जो तुम लोग कह रहे हो मैं जानता हूँ। परन्तु यह बताओ कि वह कौन आदमी है जिसने काग़ज़ गिराये हैं। सब लोग चुप थे। वे लोग चाहते थे कि वे अपने रक्षक को धन्यवाद दें। परन्तु धन्यवाद लेनेवाले का पता तक न था।

"मैं इस हवाई जहाज़ की तलाशी लूँगा"—एक पुलिसमैन ने कहा। इसके पहले कि कोई तलाशी ली जाय वह लड़का मुस्कराता हुआ बाहर चला आया। उसे शायद मालूम था कि उसने अपनी कार्रवाई से कितने लोगों को अपना आभारी बनाया। उसी ने अपनी कापी को फाड़ कर यह लिख कर नीचे गिराया था कि जिस हवाई जहाज़ पर हम उड़ रहे हैं उसे एक डाकू लिये भागा जाता है। दौड़ो। बचाओ।

— कन्हैयालाल

३—महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री भारत के उन कृती-सन्तानों में थे जिनकी टक्कर के विद्वान् संसार में विरले ही हैं। जैसे वे एक आदर्श और उत्तम श्रेणी के अध्यापक थे, वैसे ही परम-पटु साहित्यकार और सत्समालोचक भी थे। इतिहास और पुरातत्त्व के क्षेत्र में तो उन्होंने इतना अधिक और महत्त्व का काम किया है कि अपनी असाधारण प्रतिभा तथा एकान्त साधना की बदौलत उन्होंने भारत की अतीत स्मृति को विस्मृति के अगाध सागर से समुद्रोन्मथित रत्न के समान जन-साधारण के समक्ष लाकर रख दिया है। वास्तव में इतिहास और पुरातत्त्व की आलोचना तथा अनुसन्धान के लिए भारत में जिस नवीन वैज्ञानिक प्रथा का प्रचलन हुआ है, पण्डित हरप्रसाद शास्त्री थे उसके प्रधान प्रवर्तक। क्या साहित्य, क्या इतिहास, क्या पुरातत्त्व, क्या दर्शन और क्या समाज-विज्ञान, सभी विषयों के अध्ययन और अनुशीलन के लिए शास्त्री महोदय ने नये-नये और सुविधापूर्ण मार्गों का अनुसन्धान किया है, जिनका अनुसरण करके सुधी-समाज कृत-कृत्य हो रहा है।

शास्त्री जी का जन्म ६ दिसम्बर सन् १८५३ ईसवी को बंगाल के एक सुप्रसिद्ध ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। अपनी विद्वत्ता तथा धर्मपरायणता के लिए वह परिवार बङ्गाल में सदा से ही प्रसिद्ध था और उस परिवार के पूर्व-पुरुषों से शिक्षा-ग्रहण करके तथा धार्मिक दीक्षा लेकर उस प्रान्त के कितने ही लोगों ने अपना जीवन सार्थक किया था। पूर्वजों को इस मर्यादा की रक्षा करने में हरप्रसाद शास्त्री ने ज़रा भी नहीं उठा रक्खा। वर्तमान समय में बङ्गाल में जितने भी संस्कृताध्यापक तथा पुरातत्त्ववेत्ता हैं, प्रायः उन सबसे शास्त्री महोदय का तो

शिष्य-प्रशिष्य का सम्बन्ध है ही, साथ ही भारत के अन्यान्य प्रान्तों में भी उनके शिष्यों का अभाव नहीं है।

शास्त्रीजी आरम्भ से ही बड़े विद्या-व्यसनी, कष्टसहिष्णु तथा अध्यवसायशील थे। संसार का कोई कष्ट उन्हें अपने नियमित स्वाध्याय से विरत करने में समर्थ नहीं हो सकता था। उनका यह स्वाध्याय जीवन के अन्त तक बराबर जारी रहा, यही कारण था कि उनके समान अगाध पण्डित, विशेषत: संस्कृत जैसे विशाल साहित्य के भिन्न भिन्न विभागों के ज्ञाता उनके जैसे विरले ही हुए हैं।

शास्त्रीजी के विद्यार्थी-जीवन में अर्थाभाव के कारण बड़ा क्लेश सहना पड़ा था। उनकी प्रखर बुद्धि तथा अदम्य उत्साह से मुग्ध होकर पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उनकी बड़ी सहायता की थी। कालेज की शिक्षा समाप्त करके भी शास्त्री महोदय आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा नहीं पा सके।

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री ने पहले-पहल एक साधारण स्कूल मास्टर के रूप में कर्म-क्षेत्र में पदार्पण किया था। इस पद से उन्नति कर वे शीघ्र ही कलकत्ता-संस्कृत-कालेज के प्रिंसिपल के पद पर पहुँच गये थे। परन्तु इस पद पर पहुँचकर भी उनकी ज्ञान-पिपासा निवृत्त नहीं हुई, वे पढ़ने में एक साधारण विद्यार्थी के ही समान लगे रहते थे।

शास्त्रीजी की पढ़ाने की शैली बड़ी सुन्दर और आकर्षक थी। संस्कृत-कालेज में वे विशेषरूप से साहित्य ही पढ़ाया करते थे। अँगरेज़ी-साहित्य की वैज्ञानिक शैली के ही अनुसार वे संस्कृत-साहित्य की आलोचना भी बड़े सुन्दर ढङ्ग से किया करते थे। पढ़ाते समय कठिन से कठिन विषय की विवेचना वे ऐसे आकर्षक ढङ्ग से किया करते थे कि वह विद्यार्थियों के हृदय में अनायास ही बैठ जाता था। विद्यार्थियों के प्रति उनकी ममता भी असाधारण थी।

पण्डित हरप्रसाद शास्त्री की विशेष प्रसिद्धि का कारण है बँगला तथा संस्कृत के कितने ही दुष्प्राप्य तथा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसन्धान तथा सम्पादन। इन दोनों भाषाओं के हज़ारों हस्त-लिखित दुर्लभ पुस्तकों का अनुसन्धान कर उन्होंने उनका अध्ययन किया था। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता राजा राजेन्द्रलाल मित्र के साथ उन्होंने पहले-पहल प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धान का कार्य आरम्भ किया था। मित्र महो-

[स्वर्गीय महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री]

दय की मृत्यु के बाद प्राचीन पुस्तकों के अनुसन्धान के काम में सरकार ने उन्हीं को नियुक्त किया। इस सिलसिले में उनको नैपाल-दरबार के विशाल ग्रन्थागार का निरीक्षण करने का अवसर मिला था, जहाँ उन्हें संस्कृत तथा बँगला के अतिरिक्त अन्यान्य प्रान्तीय भाषाओं के भी बहुत से ग्रन्थ मिले। इस कार्य में शास्त्रीजी ने जिस अनन्त ज्ञान की उप-

लब्धि की थी उसका थोड़ा-बहुत परिचय एशियाटिक सोसाइटी से प्रकाशित 'डिस्क्रिप्टिव कैटालाग आफ़ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट, को भूमिका से मिलता है। इस ग्रन्थ के छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। खेद का विषय है कि अपना यह ग्रन्थ वे समाप्त नहीं कर सके, अन्यथा इसकी भूमिका से संस्कृत-साहित्य का एक विस्तृत इतिहास तैयार हो जाता।

कार्य की इस प्रकार अधिकता होने पर भी शास्त्री जी अपनी मातृ-भाषा बँगला के प्रति उदासीन नहीं हो सके। अपनी आकर्षक तथा सरस रचना-शैली में लिखकर उन्होंने जिन अमूल्य ग्रन्थ-रत्नों से मातृ-भाषा के साहित्य-भाण्डार की पूर्ति करने का उद्योग किया है उसके लिए बँगला-भाषी सदा गौरव के साथ उनका स्मरण करेंगे।

शास्त्रीजी की विद्वत्ता तथा साहित्य-सेवा पर मुग्ध होकर सरकार ने उन्हें महामहोपाध्याय तथा सी० आई० ई० की उपाधि दी थी और ढाका-विश्व-विद्यालय ने डी० लिट की। वे दो वर्ष तक बङ्गाल की एशियायटिक सोसाइटी के सभापति तथा कई वर्ष तक उपसभापति रह चुके थे। बङ्गाल-साहित्य-परिषद् के तो वे प्रधान स्तम्भ ही थे। विलायत की रायल एशियायटिक सोसायटी ने भी उनको अपने सम्मानित सदस्यों की सूची में स्थान दिया था। शास्त्रीजी की कीर्ति देश-विदेश में सर्वत्र समान थी।

स्वभाव के बड़े ही सरल और उदार थे। छोटे-बड़े सब से वे समानरूप से मिला करते थे और जिसके प्रति उनका जैसा मनोभाव होता उसे वे स्पष्ट कह दिया करते थे। कोई बात मन में छिपा रखने का अभ्यास उनको नहीं था। खेद है कि गत १७ नवम्बर को ७८ वर्ष की अवस्था में उनका देहावसान हो गया। शास्त्रीजी की मृत्यु से देश की विद्वन्मण्डली में जो स्थान सूना हुआ है उसकी पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नहीं। ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे।

—ठाकुरदत्त मिश्र

४—साईप्रसवालों की स्वराज्यकांक्षा

भूमध्य-सागर के पूर्वी भाग में, सीरिया के पश्चिमी किनारे के पास, साईप्रस नाम का एक छोटा सा द्वीप है। इसकी बड़ी से बड़ी लम्बाई १४० मील और अधिक से अधिक चौड़ाई ४० मील है। इसका क्षेत्रफल साढ़े तीन हज़ार वर्ग मील और आबादी लगभग ३ लाख ४४ हज़ार है। यहाँ के निवासी प्रधानतया ग्रीक जाति के हैं, पर कोई ६४ हज़ार अर्थात् एक पञ्चमांश मुसलमान भी यहाँ रहते हैं।

पहले यह टापू रोम-सम्राट् के अधिकार में था। जब इँग्लेंड का राजा प्रथम रिचर्ड शूली की लड़ाई (क्रूसेड) के लिए जेरूसलेम गया तब उसने इस पर क़ब्ज़ा कर लिया, किन्तु बाद में यहाँ का शासन-सूत्र जेरूसलेम के राजा के हाथ में दे दिया गया। कुछ समय के पश्चात् यह फिर रोम-साम्राज्य के पूर्वी भाग में सम्मिलित कर लिया गया। सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक (१५७१ से १८७८ तक) यह तुर्कों की अधीनता में रहा और अब पिछले पचास वर्षों से यहाँ ग्रेटब्रिटेन की सत्ता स्थापित है। इस प्रकार समय समय पर भिन्न भिन्न जाति के शासकों के अधिकार में रहने के कारण यहाँ के लोगों को ख़ूब धक्के खाने पड़े हैं और बड़े बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा है। तीन सौ वर्ष के तुर्की शासन में तो इनकी पूरी दुर्दशा ही हो गई। कृषिप्रधान देश होते हुए भी साईप्रस को चावल, चीनी, पिसान इत्यादि आवश्यक वस्तुएँ काफ़ी मात्रा में बाहर से मँगानी पड़ती हैं।

जब साईप्रस में अँगरेज़ों का प्रभुत्व स्थापित हो गया तब यहाँ के ग्रीकनिवासियों को (सहधर्मी होने के कारण) उनसे स्वभावतः बड़ी आशा बँध गई। उन्होंने शीघ्र ही स्वायत्त शासन के लिए आन्दोलन करना शुरू कर दिया। नतीजा यह हुआ कि सन् १८८२ ईसवी में वहाँ एक व्यवस्थापिका सभा स्थापित कर दी गई। इसमें कुल १८ सदस्य

रक्खे गये, छः सरकारी और बारह ग़ैरसरकारी जो जनता के द्वारा चुने जाते थे। इन निर्वाचित सदस्यों में से एक चौथाई अर्थात् तीन तो मुसलमानों की ओर से चुने जाते थे और शेष नौ सदस्य ग़ैर-मुस्लिम लोगों के प्रतिनिधि होते थे।

अब यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि यह द्वीप अँगरेज़ों के अधिकार में कैसे आ गया। जब १८७८ ईसवी में रूस-तुर्की-युद्ध की समाप्ति हुई तब सैन स्टीफ़ेनो की सन्धि के अनुसार तुर्कों को विवश होकर अरमेनिया का एक बड़ा भाग रूस को समर्पित कर देना पड़ा। उस समय रूस का रुख़ आगे बढ़ने की ओर देखकर तुर्की के सुलतान ने अपने राज्य की रक्षा के ख़याल से अँगरेज़ों के साथ मैत्री कर ली और एक शर्त्तनामे पर हस्ताक्षर कर दिया जिसके अनुसार अँगरेज़ों ने तो यह प्रतिज्ञा की कि यदि रूस एशिया में आगे बढ़कर तुर्की के अधीन किसी भू-भाग को हड़प लेने की चेष्टा करेगा तो हम सेना लेकर उसकी मदद के लिए चढ़ आवेंगे और रूस को रोकेंगे, तथा सुलतान ने अँगरेज़ों को अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकने का सुभीता देने के इरादे से साईप्रस-द्वीप का शासन उनके सिपुर्द कर दिया।

यद्यपि इस सन्धि के अनुसार वहाँ का शासन पूरी तौर से अँगरेज़ों के हाथ में आ गया था, फिर भी कहने के लिए तुर्की का सुलतान तब भी साईप्रस का अधिपति माना जाता था, किन्तु सन् १९१४ के बाद यह बात भी नहीं रह गई। महायुद्ध का प्रारंभ होने पर जब तुर्की ने मित्र-राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की तब ब्रिटेन खुल्लमखुल्ला इस द्वीप का मालिक बन बैठा और उसने इसे बाक़ायदा अपने साम्राज्य में मिला लिया।

अँगरेज़ लोग पक्के राजनीतिज्ञ तो होते ही हैं, उनका कोई भी कार्य स्वार्थनीति के प्रतिकूल नहीं हो सकता, इसी से यद्यपि साईप्रस के ग्रीक अधिवासियों को सन्तुष्ट करने के लिए १८८२ में उन्होंने वहाँ एक व्यवस्थापिका सभा स्थापित कर दी थी और सन् १९०९ में भी शासन-व्यवस्था में कुछ परिवर्तन किये थे, तथापि यह स्पष्ट है कि उनकी आन्तरिक इच्छा उसे स्वराज्य देने की नहीं थी; हाँ, यदि परिस्थिति-विशेष के कारण उन्हें ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ता तो बात दूसरी थी।

महायुद्ध के समय उन्होंने देखा कि यदि ग्रीस शत्रु-पक्ष की ओर न जाकर हमारे पक्ष में आ जाय और शत्रुओं से लड़ाई की घोषणा कर दे तो हमारा बड़ा काम निकले, हमें तुर्की को परास्त करने में विशेष सुभीता हो जाय। इसी ख़याल से उन्होंने ग्रीस को यह प्रलोभन दिया कि यदि तुम हमारी ओर से युद्ध में शामिल हो जाओ तो हम साईप्रस-द्वीप तुम्हारे सिपुर्द कर देंगे, किन्तु जब १९१६ में उन्हें विदित हुआ कि ऐसा करने से फ़्रांस असन्तुष्ट हो जायगा तब उन्होंने अपना वादा पूरा करने से इनकार कर दिया। युद्ध समाप्त होते ही साईप्रस-वालों ने फिर आन्दोलन शुरू किया। उन्हें शान्त करने के लिए अब लायड जार्ज ने यह चाल चली कि थ्रेस और स्मरना पर कब्ज़ा करने के प्रयत्न में ग्रीस के सर्वप्रधान नेता वेनेज़िलास का समर्थन करना शुरू किया, किन्तु इससे भी साईप्रसवालों का सन्तोष नहीं हुआ। सन् १९२१ में वहाँ की अधिकांश जनता ने व्यवस्थापिका सभा के चुनाव का बहिष्कार किया। जिन थोड़े से लोगों ने चुनाव में भाग लिया अथवा जो लोग चुनाव के लिए खड़े हुए उन्हें जनता ने बहुत धिक्कारा और खुले आम उनका अपमान करना शुरू किया।

ब्रिटेन की इस कूटनीति के कारण यद्यपि साईप्रसवालों का आन्दोलन बिलकुल बन्द नहीं हुआ, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उसमें कुछ शिथिलता अवश्य आ गई। किन्तु तुर्की की राष्ट्रीय सरकार द्वारा ग्रीस का पराभव होने के बाद आन्दोलन ने फिर ज़ोर पकड़ा। निदान कुछ समय के लिए उनका मुँह बन्द कर देने के ख़याल से १९२५ में ब्रिटेन ने फिर एक टुकड़ा उनके सामने फेंक दिया। अब

निठुर बालमु हमको लखोल सिनेह — विद्यापति

साईप्रस को उपनिवेश का पद दे दिया गया और वहाँ 'हाईकमिश्नर' के बजाय एक गवर्नर रहने लगा। इसके अतिरिक्त शासन-सम्बन्धी मामलों में गवर्नर की सहायता करने के लिए एक कार्य-कारिणी परिषद् नियुक्त की गई, जिसमें तीन ग़ैर-सरकारी सदस्यों को भी स्थान दिया गया। किन्तु इस प्रकार ब्रिटेन ने जो कुछ 'दान' दिया, दूसरे हाथ से मानो उसका सारा भाग छीन भी लिया। पहले जहाँ व्यवस्थापिका सभा में केवल छः सरकारी तथा बारह ग़ैरसरकारी सदस्य थे, वहाँ अब ९ सरकारी तथा १५ ग़ैरसर-कारी सदस्य रहने लगे। अर्थात् सरकारी सदस्य तो संख्या में ड्योढ़े कर दिये गये, पर ग़ैरसरकारी सदस्यों की संख्या सवाई से अधिक नहीं की गई।

सन् १९१९ में श्री राम्से मैकडानल्ड ने बर्नवाले मज़दूर-सम्मेलन में कहा था कि 'मज़दूर-दल की नीति साईप्रसवालों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में स्वयं ही निर्णय कर लेने की आज़ादी देने की होगी। वे राष्ट्रसंघ के चाहे जिस सदस्य के अंग होकर रहना पसन्द करें, उसी के होकर रह सकेंगे।' यही कारण है कि जब ब्रिटेन का शासन-सूत्र मज़दूर-दल के हाथ आया और स्वयं राम्से मैकडानल्ड ही प्रधान मन्त्री हुए तब साईप्रसवासियों को आशा बँध गई कि सम्भवतः अब हमारी आकांक्षा पूरी हो जायगी। जुलाई (१९२९) में वहाँ की व्यवस्थापिका सभा के ग्रीक सदस्यों ने इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र उपनिवेश-मन्त्री (कोलोनियल सेक्रेटरी) के पास भेजा कि हम लोग ग्रेटब्रिटेन की अधीनता से अलग होना चाहते हैं और यदि यह सम्भव न हो तो हम उत्तरदायी शासन चाहते हैं; इसके अतिरिक्त ९२,८०० पौण्ड का जो वार्षिक कर तुर्की को अभी तक दिया जाता है वह बन्द कर दिया जाय एवं १९१४ के बाद इस सम्बन्ध में जितनी रक़म दी गई हो वह हम लोगों को लौटा दी जाय। इन माँगों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के लिए और इनकी ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट कराने के ख़याल से एक प्रतिनिधि-मण्डल भी उपनिवेश-मन्त्री से मिलने के लिए लन्दन गया। किन्तु उस मज़दूर-सरकार पर भी जिसके अधिनेता श्री राम्से मैकडानल्ड थे, उनकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा।

कुछ समय के बाद, ख़ूब सोच-विचार कर, उपनिवेश-मन्त्री ने जो उत्तर दिया उससे साईप्रस-वालों को बड़ी निराशा हुई। ब्रिटेन से अलग होने का प्रश्न तो थोड़े में ही चलता कर दिया गया, और अब वह हमेशा के लिए बन्द कर दिया गया। स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में उन्हें भी वैसा ही उत्तर मिला जैसा भारतवासियों को अनेक बार मिल चुका है, अर्थात् अभी आप लोगों ने काफ़ी उन्नति नहीं की है, अतः बहुत शीघ्र आप स्वायत्त शासन के योग्य हो सकेंगे, ऐसी आशा नहीं है। ९२,८०० पौण्ड की वार्षिक रक़म के सम्बन्ध में भी उन्हें कोरा जवाब मिला। उपनिवेश-मन्त्री की ओर से कहा गया कि 'साईप्रस उत्तराधिकारी राज्य है, अतः तुर्की से पृथक् होने के समय उसका जो राष्ट्रीय ऋण था, उसके एक अंश की जिम्मेदारी साईप्रस को अपने ऊपर लेनी ही होगी। ९२,९०० पौण्ड की उक्त रक़म उसी क़र्ज़ का सूद अदा करने में लगाई जाती है। किन्तु व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का मत इससे भिन्न है। उनका कथन है कि तुर्की का शासन समाप्त होने के बाद साईप्रस ब्रिटिश-साम्राज्य में मिला लिया गया, अतः वस्तुतः ब्रिटेन ही उत्तराधिकारी राज्य है, साईप्रस नहीं और तुर्की के राष्ट्रीय ऋण के उक्त अंश की अदायगी का भार भी उसी पर पड़ना चाहिए, साईप्रस पर नहीं, अस्तु।

उपनिवेश-मन्त्री ने अपने उत्तर में एक और मज़ेदार बात कही थी। साईप्रस की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में सरकारी नीति का समर्थन करते हुए उन्होंने यह विचित्र दलील पेश की थी कि एक तो व्यवस्थापिका सभा में ग़ैर सरकारी सदस्यों की संख्या ज़्यादा है, दूसरे सिविल कर्मचारियों को बहुत कम तनख़्वाह दी जाती है, इसी से साईप्रस की आर्थिक

उन्नति करने में सरकार को विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आपने ग़रीब साईप्रस-वालों को यह बहुमूल्य सलाह देकर भी सम्मानित किया कि यदि आप लोग साईप्रस की आर्थिक अवस्था सुधारना चाहते हैं तो आप सरकार के साथ पूर्ण सहयोग कीजिए और अच्छी अच्छी तनख़्वाहें देकर अधिक योग्य अँगरेज़ कर्मचारियों को नियुक्त करना स्वीकार कीजिए, माना उस छोटे से द्वीप के लिए अपनी समूची आमदनी का ४७ प्रतिशत भाग भी केवल इन कर्मचारियों के वेतन में ख़र्च कर देना काफ़ी नहीं था!

सन् १९२९ वाली माँगों के अस्वीकृत किये जाने और उपनिवेश-मन्त्री के इस रूखे व्यवहार का ही फल है कि साईप्रस में स्वतन्त्रता के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। पिछले आक्टोबर मास में एक दिन सहसा यह समाचार आया कि साईप्रस की जनता ने खुल्लमखुल्ला बग़ावत कर दी है और कमिश्नर के बँगले तथा गवर्नमेण्ट-हाऊस तक को जला डाला। यद्यपि अत्यन्त शक्ति-शालिनी ब्रिटिश सरकार को इस छोटे से द्वीप के उपद्रवों का दमन करने में अधिक समय नहीं लगा और न कोई कठिनाई ही हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि विद्रोह की आग बिलकुल शान्त हो गई। यह तो तभी हो सकता है जब असन्तोष का मूल-कारण दूर कर दिया जाय। यद्यपि अभी कुछ ही दिन पहले क़ामन्स सभा में किये गये एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से कहा गया था कि फ़िलहाल साईप्रस की शासन-व्यवस्था में ऐसा कोई सुधार करने का विचार नहीं है जिससे वह स्वायत्त शासन के मार्ग में अग्रसर हो सके, फिर भी यह असम्भव नहीं है कि इस घटना से शिक्षा ग्रहण कर ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अपनी नीति बदल दें और साईप्रसवालों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा करें, अस्तु।*

—मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

*इस लेख की अधिकांश सामग्री 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित एक लेख से ली गई है—लेखक

५—तुर्की और रोमन-लिपि

(१)

तुर्की-भाषा एक स्वतंत्र भाषा है, पर इसके तथा अरबी व फ़ारसी के अनेक शब्द एक दूसरे में प्रचलित हैं। तुर्की-वर्ण-माला में ३३ अक्षर हैं, जिनमें से २८ अरबी, चार फ़ारसी और केवल १ तुर्की का अपना है।

लगभग १३०० वर्ष पहले तुर्क लोगों में चुग़ताई-लिपि का चलन था। मुसलमान होने पर उन्होंने अरबी-लिपि को ग्रहण कर लिया। पर पहली दिसम्बर सन् १९२८ ईसवी से तुर्कों ने अरबी-लिपि को छोड़ कर रोमन-लिपि ग्रहण की है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

अक्षर		उच्चारण	अक्षर		उच्चारण
A a	ا	(अ)	G g	گ	(गः)
B b	ب	(बः)	Ğ ĝ	غ	(ग़ः)
C c	ج	(जः)	H h	ه	(हः)
Ç ç	چ	(चः)	i	ي	(इ)
D d	د	(दः)	I	ى	(ई)
E e	ە	(ए)	J j	ژ	(ज़ः)
F f	ف	(फ़ः)	K k	ك — ڭ	(नः-कः)*
			L l	ل	(लः)

*तुर्की में काफ़ (ڭ—क) से 'न' की भी ध्वनि निकलती है और यह अक्षर तुर्की-वर्ण-माला का विशेष अक्षर है, इस कारण यह उसी प्रकार रक्खा गया है।

लेखक

M m	مه	(मः)	Ş ş	شه	(शः)
N n	نه	(नः)	T t	ته	(तः)
O o	او	(ओ)	U u	اؤ	(उ)
Ö ö	ئو	(औ)	Ü ü	أو	(ऊ)
P p	په	(पः)	V v	وه	(वः)
R r	ره	(रः)	Y y	يه	(यः)
S s	سه	(सः)	Z z ❊	زه	(ज़ः)

अब यह जानना चाहिए कि Q, W व X को क्यों नहीं लिया। क्यू (Q) वास्तव में क़ाफ़ (ق) का वाधक है, परन्तु कहा जाता है कि काफ़ के बदले प्रायः काफ़ (ك) ही बोला जाता है, इस कारण उसकी आवश्यकता न समझी गई होगी।

मुझे ऐसा भी पता लगा है कि ख़े (خ) का उच्चारण वास्तव में 'हे' से होता है। सम्भवतः इस कारण ख़े भी नहीं रक्खा गया है। प्रायः यह बात प्रसिद्ध है कि तुर्की में रोमन-लिपि का चलन हो गया है, वहाँ अब अरबी-लिपि नहीं रहीं। परन्तु उक्त अक्षरों पर तनिक ध्यान देने से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है कि तुर्की-भाषा की केवल लिपि ही नहीं बदली है, बल्कि वर्णमाला, उच्चारण-क्रम और मात्राओं में भी बड़ा परिवर्तन हुआ है।

(क) तुर्की-वर्णमाला में पहले कुल ३३ अक्षर थे। उनमें से २८ अरबी-वर्णमाला के, ४ फ़ारसी के और केवल एक तुर्की का अपना था, किन्तु अब तो कुल अक्षर केवल २९ ही रह गये हैं। कारण यह कि अरबी के अनेक अक्षर जैसे ظ-ض-ز-ذ (ज़ाल, ज़े, ज़ाद, ज़ो) में से जो एक ध्वनि देते हैं, केवल एक ज़े रक्खा गया है। इसके सिवा जो अक्षर उनके काम के थे वही रक्खे गये हैं।

(ख) जिस प्रकार उर्दू-वर्णमाला के अक्षरों का उच्चारण अलिफ़, बे आदि होता है, उसी प्रकार वहाँ भी अक्षरों के उच्चारण की ऐसी ही शैली थी। किन्तु अब वैसी शैली नहीं रही। अतः ऊपर जो उच्चारण बतलाया गया है उससे यह बात स्पष्ट ही है।

(ग) अलिफ़, बे, पे आदि का जो कर्म यहाँ है वही कर्म वहाँ भी था। पर वर्तमान लिपि के परिवर्तन में उस कर्म में भी परिवर्तन हो गया है।

(घ) अरबी, फ़ारसी व उर्दू में मात्राओं का अस्तित्व अक्षरों से पृथक् हुआ करता है। तुर्की में ज़बर, ज़ेर, पेश, दो ज़बर, दो ज़ेर, दो पेश व जज़्म कुल ७ मात्रायें और एक चिह्न तशदीद (ّ) का था। पर अब इन आठों की आवश्यकता नहीं रही। उन्हीं २९ अक्षरों से जिनका वर्णन हो चुका है, मात्राओं का काम भी चल सकेगा। अब ३३ अक्षरों व आठ मात्राओं के बदले केवल २९ अक्षर ही रह गये हैं।

(ङ) मात्रा, बिन्दी व अक्षरों के अनेक रूपों के कारण टाइप के मार्ग में जो कठिनाइयाँ थीं वे सबकी सब भी दूर होगई हैं।

तुर्कों ने रोमन-लिपि क्यों ग्रहण की, अरबी-लिपि क्यों छोड़ दी, उसमें कैसी कठिनाइयाँ थीं, इसका ख़ुलासा इस प्रकार है।

(१) अरबी-लिपि दाहने ओर से बायें ओर लिखी जाती है। परन्तु ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उसके सब अक्षरों की दशा ऐसी नहीं है, क्योंकि ح خ چ ج غ ع अक्षर बाँयें से दाहने ओर चलते हैं। उक्त अक्षरों के सिवा उसमें कुछ अक्षर गोलाईवाले भी होते हैं। अनेक अक्षर लम्बे होते हैं। अनेक

❊ उक्त सारे अक्षर एक 'सालनामः पारस' (پارس سالنامه) के आधार पर दिये गये हैं। जब मैं भ्रमणार्थ ईरान गया था तब उसकी एक प्रति मुझे वहाँ मिली थी।

अक्षरों की दशा दोनों बातों से भिन्न होती है। अतः इस प्रकार के भेद-भाव के कारण लिखने में क़लम को कभी दाहने, कभी बायें, कभी ऊपर, कभी नीचे ले जाने की अधिक आवश्यकता पड़ती है।

(२) अनेक अक्षर ऐसे हैं कि जब वे किसी शब्द के आदि, मध्य या अन्त में आते हैं तब उनका स्वरूप बहुत कुछ बदल जाता है और कुछ अक्षरों की दशा तो यह है कि आदि में ही उनकी सूरत किसी में कुछ और किसी में कुछ होती है। जैसे بکری (बकरी) بچہ (बच्चा) व بوتل [बोतल] में बे [ب—ब] अक्षर।

(३) अक्षरों की विचित्रता और टुकड़े होने की दशा में उनकी भिन्नता के कारण छापने के लिए टाइप बनाने या इसका टाइपरायटिङ्ग तैयार करने में बड़ी कठिनाई है।

(४) बहुत से अक्षरों से बननेवाले शब्द के लिए कहना ही क्या है? केवल दो अक्षर दाल और रे (د ر—द = र) से बननेवाला शब्द मात्रा न होने पर कई ढंगों से पढ़ा जा सकता है और प्रत्येक दशा में उसका अर्थ भी बदल जाता है जैसे—

دَر दर अर्थ में, बीच, दरवाज़ा

دُر दुर „ मोती

دِر दिर „ ....

फलतः डायरेक्टर ڈائرکٹر शब्द को कम से कम डायर-कटर पढ़ा जा सकता है, चाहे कोई अर्थ निकले या न निकले। इसके सिवा इस वाक्य—اچھی ہے بکری के तो अनेक पाठ हो सकते हैं, जिनमें से दो ये हैं—(१) बकरी अच्छी है। (२) बिकरी अच्छी है। इस प्रकार 'बाबा अजमेर गये' वाली समस्या उपस्थित हो सकती है।

(५) नुक़्तः (बिन्दी) का अस्तित्व ही क्या? पर वर्णमाला में इससे ग़ज़ब का हेर-फेर हो जाता है। ऊपर व नीचे का ख़याल छोड़ दिया जाय तो भी तनिक हटने से पाठ व अर्थ दोनों में भारी अन्तर हो जाता है। जैसे—

शब्द	हिन्दी-उच्चारण	अर्थ
نعت	(नात)	प्रशंसा, विशेषतः हज़रत मुहम्मद साहब की प्रशंसा
لغت	(लोग़ात)	कोश
نبی	(नबी)	ईश्वरीय दूत
بنی	(बनी)	बेटे, पुत्र

(६) ह की ध्वनि के निमित्त दो 'हे' (ह-ہ-ح) हैं। इनमें से इसे ح बड़ी हे और इसे ہ छोटी हे कहते हैं। अँगरेज़ी के हाल (Hall) शब्द का अर्थ है—बड़ा कमरा और हाईकोर्ट (High Court) का अर्थ है बड़ा न्यायालय। उक्त दोनों शब्दों में यद्यपि बड़प्पन का भाव है, पर हाल और हाईकोर्ट दोनों छोटी हे से ही लिखे जाते हैं, क्योंकि इसी में सुगमता है। इसके सिवा केवल एक ध्वनि देनेवाले अक्षरों का विवरण यह है—

स के लिए ص س ث [से, सीन, साद]

त के लिए ط ت [ते, तो]

अ के लिए ا، ع، ء [अलिफ़-ऐन-हमज़ः]

फलतः कहाँ पर कौन सा अक्षर प्रयोग में लाया जाय, इसका ध्यान रखना अथवा याद रखना कोई आसान काम नहीं है।

(७) न की ध्वनि नून (ن न) के सिवा दो ज़बर दो ज़ेर व दो पेश (ً ٍ ٌ) से भी पैदा होती है। जैसे फ़ौरन (فوراً), जबरन (جبراً) में। अतः यह बात भी गड़बड़ पैदा करती है कि कहाँ किससे काम लिया जाय, क्योंकि एक के बदले में दूसरे को लिखना अशुद्ध है।

(८) अलिफ़ लाम (ال) लिखा जाता है इनमें से अलिफ़ तो कदापि उच्चारण में नहीं आता, पर लाम कभी आता है और कभी नहीं आता। जैसे अब्दुस्समद (عبدالصمد) व अबदुलग़फ़ूर عبدالغفور में। इस प्रकार की बातों से तुर्कों ने अरबी-लिपि के बोझ को अपने सिर से उतारा है। अब उनकी

नई लिपि में जो शब्द जैसा बोला जाता है वह उसी प्रकार लिखा भी जाता है और एक ध्वनि के लिए जो कई अक्षर थे उनसे उन्होंने सरोकार ही नहीं रक्खा।

इसमें सन्देह नहीं कि तुर्की का साहित्य जो कुछ अरबी-लिपि में है वह आनेवाली सन्तानों के लिए एक विचित्र वस्तु होगी, उसका पढ़ना या समझना टेढ़ी खीर होगी। पर नई लिपि के ग्रहण करने में जो लाभ हैं उनके मुक़ाबिले में उक्त हानि का कोई अस्तित्व नहीं है। अन्त में यह भी जतला देना उचित है कि अरबी-लिपि के जो दोष ऊपर दिखाये गये हैं वे सबके सब उर्दू-लिपि पर भी लागू हैं, जिसकी आधार-शिला अरबी-लिपि ही है।

—महेशप्रसाद

६—काव्यालङ्कारों की उपयोगिता

अलङ्कारिक विद्वानों ने काव्यालङ्कारों का प्रणयन बड़ी युक्ति और ख़ूबी से किया है। इसी से कवियों ने अपने काव्य में अलङ्कारों को ऊँचा स्थान दिया है और अब भी दिया जाता है। लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि क्या अलङ्कारों के बिना काव्य नहीं हो सकता, दुनिया को काव्यालङ्कारों से क्या फ़ायदा और कवि-समुदाय काव्यालङ्कारों के पीछे क्यों व्यर्थ ही अपनी कुशाग्र बुद्धि कुण्ठित करता है उनसे उनका कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है? अलङ्कारों के विषय में ऐसे ही अनेकानेक आक्षेप किये जाते हैं। पर असल में काव्यालङ्कारों की लोक में इतनी धाक जम गई है कि बोलचाल में भी वे प्रयुक्त किये जाते हैं। चिट्ठी-पत्री भी उनसे ख़ाली नहीं रहती है। वास्तव में उनकी अपनी उपयोगिता होती है। और व्यङ्ग्य-कथन के लिए तो उनकी परख और भी आवश्यक है।

नहिं पराग नहिं मधुर रस नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही में फस्यौ आगे कौन हवाल॥

इस समासोक्ति की उपयोगिता इतिहास-सिद्ध है। यही बात बिहारी लट्ठमार भाषा में कहते तो शायद उन्हें कारागार की हवा खानी पड़ती। बिहारी कवि थे, अतएव उन्होंने अलि-कलिका की समासोक्ति से काम लिया। ऐसे मौक़े जीवन में आते ही रहते हैं जब सीधी बात घुमा-फिराकर कहनी पड़ती है ऐसे ही मौक़ों के लिए समासोक्ति अलङ्कार अपना महत्त्व प्रकट करता है।

कोऽत्र भूमिवलये जनान्
मुधा तापयन् सुचिरमेति संपदम्।
वेदयन्निति दिनेन भानुमा-
नाससाद चरमाचलं ततः॥

संसार में कोई भी मनुष्य किसी को तकलीफ़ देता हुआ सुचिर स्थिर नहीं हो सका, यह बात यथार्थ है—प्रत्यक्ष है। सूर्य-सदृश कितने ही राजा प्रजापीड़न से अस्त हो गये। सूर्य का अस्ताचल-गमन ऐसे लोगों के लिए प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करता है। जो राजा प्रजा को दुःख देता है उसको इससे शिक्षा लेनी चाहिए। उद्दण्ड प्रकृति को शान्त बनाने के लिए यह निदर्शना अमृत-वटी है। निदर्शना अलङ्कार की इससे बढ़कर और उपयोगिता क्या हो सकती है?

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा
पर्यायमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

यदि मनुष्य किसी कार्य को सन्देहयुक्त देखता है, सशङ्कित दृष्टि से देखता है तो वह यह निर्णय करने में समर्थ नहीं होता कि क्या करना चाहिए। विशेषकर उस समय जब कि किसी से राय लेने की गुञ्जायश न हो अथवा वह कार्य राय लेने में प्रकट करने के लायक़ न हो। उस समय उसकी बुद्धि कृतनिश्चय नहीं होती। वह व्यग्र हो उठता है, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है, जिस प्रकार कि राजा दुष्यन्त मूढ़धी हो गये थे।

उस वक्त—सज्जनों को सन्देह उपस्थित होने पर उनका अन्तःकरण ही प्रमाण होता है—यह अर्थान्तरन्यास अलङ्कार उसको उचित कार्य में तत्पर करता है। उस हताश को जीने की आशा हो जाती है, उन्माद-रोग से छुटकारा पा जाता है। इतना गुण इस अर्थान्तर न्यास में होते हुए हम कैसे कह सकते हैं कि अलङ्कार व्यर्थ हैं।

सौजन्याम्बु मरुस्थली सुजनता
लेख्यद्युभित्तिर्गुण-
ज्योत्स्ना कृष्णचतुर्दशी सरलता
योगश्च पुच्छच्छटा।
यैरेषाऽपि दुराशया कलियुगे
राजावली सेविता
तेषां शूलिनि भक्तिमात्र सुलभे
सेवा कियत्कौशलम्।

राज-सेवा से निर्विण्ण व्यक्ति के लिए यह रूपक है, किन्तु आजकल तो मामूली से मामूली व्यक्ति भी यदि वह रुपये-पैसे से ख़ुशहाल है या पूँजीपति है, यदि उसके दो-चार नौकर हैं तो वह उनके नाक में दम कर देता है। बेचारे ग़रीब नौकर अपने मालिक से बड़ी बड़ी आशायें करते हैं, बड़ी तत्परता से उसका काम करते हैं, यदि मालिक दिन को रात या रात को दिन कहे तो—यह जानते हुए कि मालिक का ग़लत ख़याल है—जरूर 'हाँ' कहेंगे। पर यदि मालिक से अपने पेट की कथा कहें तो अवश्य निकाल दिये जावें। ऐसे नौकरों को सहसा राजावली (धनिक) का रूपक याद आ जाता है। वह एकाएक सोचने लगता है—अरे राजावली [धनिक-समूह (ललचाया)] सौजन्य जल की मरुस्थली है। सुजनता चित्र की आकाशीय दीवाल है। गुणरूपी ज्योत्स्ना के लिए कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है, सिधाई के लिए कुत्ते की पूँछ (प्रसिद्ध है कि कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती) है। ऐसी राजावली की जिन्होंने सेवा की है उनको भला भगवान् शिव की सेवा में कौनसी कठिनाई है।

यह मालारूपक अपने रङ्गबाज़ मालिक से ऊबे हुए मनुष्य को इज़्ज़त रखता है, उसको भगवान् में विश्वास दिलाता है और ईश्वर के ऊपर निर्भर रहने के लिए कटिबद्ध करता है। क्या यह रूपक की उपयोगिता मान्य नहीं है?

वक्त्राम्भोजं सरस्वत्यधिवसति सदा शोण एवाधरस्ते।
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः॥
वाहिन्यः पार्श्वमेताः क्षणमपि भवतो नैवमुञ्चत्यभीक्ष्णम्।
स्वच्छेऽन्तर्मानसेऽस्मिन्कथमवनिपते तेऽबुपानाभिलाषः॥

श्लेषालङ्कार भी बड़ा उपयोगी है। विक्रमादित्य राजा ने पानी माँगा। पानी किसी नौकर—मामूली नौकर—से माँगा होगा न कि राज-प्रतिनिधि या किसी बड़े गवनर से। यदि श्लेषालङ्कार न होता तो उसकी हिम्मत न पड़ती कि—कथमवनिपते तेऽम्बु पानाभिलाषः—कहे।

प्रकरणार्थ से तुम्हारे मुँह में सरस्वती रहती है। तुम्हारा ओष्ठ लाल है। तुम्हारा बाहु उदार (दाता) है तथा अङ्गुलीयक-युक्त है। सेनाएँ तुम्हें घेरे रहती हैं, तुम्हारा मन स्वच्छ है। लेकिन बिना श्लिष्ट के चतुर्थ चरणार्ध की सङ्गति—तुम्हें पानी पीने की इच्छा क्यों हुई—किसी प्रकार नहीं होती; लेकिन सरस्वती नदी, सोन-नद, दक्षिण-समुद्र, मानसरोवर की स्थिति में—पानी के बड़े बड़े नद-नदी तथा समुद्र के पास होते हुए—पानी की इच्छा अवश्य आश्चर्यकारी है। अगर बड़े से बड़े को भी यदि कुछ कहना है तो शिलष्ट से कहा जा सकता है और कहनेवाले को कोई बुरा भी नहीं कह सकता; परन्तु छोटी से छोटी अप्रिय बात श्लिष्ट नहीं है तो उसका कहना अनुपयुक्त है। श्लेषालङ्कार की सृष्टि ऐसे ही मौक़ों के लिए हुई है।

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान्
वक्तुमिच्छति वचः सभान्तरे।
बद्धुमिच्छति वने मदोत्कटं
हस्तिनं कमल-नाल-तन्तुना॥

जो पुरुष व्याकरण के बिना जाने हुए सभा में बोलना चाहता है वह वन में उन्मत्त हाथी को कमल-नाल-तन्तु से बाँधना चाहता है। जिस प्रकार कमल-नाल-तन्तु से हाथी बाँधा जाता है उसी प्रकार सभा में बिना व्याकरण-ज्ञान के बोलना असंभव है। अवैयाकरण हज़ारों ग़लतियाँ करेगा, भयभीत होगा, विद्वत्समाज में उसकी हँसी होगी, इसलिए सभा में बोलने की इच्छा की भी मुमानियत है। बात बहुत सच्ची है। निदर्शनालङ्कार का उपयोग इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

यहाँ अलङ्कारों की उपयोगिता का दिग्दर्शन-मात्र कराया गया है। सभी अलङ्कारों का उपयोग दिखलाने से एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जायगी।

काव्यालङ्कार लौकिकालङ्कारों की तरह नहीं है। शब्दार्थ-ज्ञान के अतिरिक्त इनमें दार्शनिक निष्कर्ष (विशेषकर न्यायशास्त्र) का रहस्य भी भरा हुआ है। उन निष्कर्षों में साहित्यिक फेरफार भी है। इसलिए इन अलङ्कारों के जानने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। सहृदयता तथा काव्यभावना की बुद्धि परिपक्व हुए बिना पद्यों में इनकी स्थिति नहीं समझी जा सकती।

आशा है, साहित्यरसिक इनकी मार्मिकता से अवगत होकर इनके महत्त्व का अपनी रचनाओं-द्वारा प्रतिपादन कर अपने साहित्य को इनसे अलङ्कृत करेंगे।

—मुनीश्वर पाठक

७—बैंक ऑव् इँग्लैंड का इतिहास

यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि "बैंक ऑव् इँग्लैंड" जैसी अन्तर्राष्ट्रीय और विश्वस्त संस्था का सूत्रपात एक जुआरी विलियम पेटर्सन-द्वारा हुआ था।

पेटर्सन को सिवा अपने लाभ के और किसी बात की परवा न थी। इसने अपने देश स्काटलेंड को बड़ी कठिनाई में फँसा दिया था। युवावस्था में इसने पनामा-डमरूमध्य के पास जानेवाले जहाज़ों में लूटमार मचाई थी। पीछे यह स्काटलेंड लौट आया। इसका विश्वास था कि प्रयत्न करने से पनामा में बहुत धन पैदा किया जा सकता है। इसने स्काटलेंड लौटने पर एक 'स्कीम' के अनुसार काम शुरू किया। स्काटलेंड के धनी लोगों से इसने ख़ूब पैसे पैदा किये, और दलबल के साथ धनोपार्जन के लिए यह पनामा को गया। पर इसकी 'स्कीम' एक-दम असफल हुई और स्काटलेंड की आर्थिक दशा इसके फलस्वरूप बहुत बिगड़ गई।

हार खाने पर भी इसने हार न मानी और स्काटलेण्ड छोड़ इँग्लेंड में अपनी क़िस्मत आज़माने आया। यहाँ इसने जो 'स्कीम' उपस्थित की उस पर उस समय के 'चान्सेलर ऑव् दि एक्सचेकर' मान्टेगू मुग्ध हो गये।

इँग्लेंड के इतिहास में यह ज़माना बहुत ही बुरा था। १६६८ में स्टुअर्ट-वंश का अन्तिम राजा जेम्स (द्वितीय) पदच्युत कर दिया गया था, और उसने भाग कर फ़्रांस के राजा के पास शरण ली थी। और जेम्स की लड़की एनी, उसके पति विलियम, पार्लियामेंट की सलाह के मुताबिक़ शासन करते थे।

अब विलियम को चारों ओर से शत्रुओं का सामना करना पड़ा। स्टुअर्ट-वंश को स्काटलेंड-वाले चाहते थे, अतः उन लोगों ने जेम्स की तरफ़ से बलवा शुरू किया। इधर फ़्रांस का राजा चौदहवाँ लुई जिसकी शरण में जेम्स भाग गया था, इँग्लेंड के विरुद्ध खड़ा हुआ।

फ़्रांस से लड़ने के लिए विलियम को धन की आवश्यकता पड़ी। लंदन के व्यापारी क़र्ज़ तो देना चाहते थे, पर बहुत ही ऊँचे सूद की दर पर। इसी समय विलियम पेटर्सन ने अपनी 'स्कीम' पेश की। उसने कहा कि मुझे एक 'कम्पनी' खोलने की आज्ञा दी जाय, और मुझे सोना-चाँदी आदि में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने की अनुमति दी जाय, जिससे मैं सरकार को आठ पौंड सैकड़ा सूद पर रुपया क़र्ज़ दे सकूँ।

एक 'चार्टर' निकाला गया, जिससे पैटर्सन को कम्पनी खोलने का अधिकार दिया गया। पैटर्सन ने १२,००,००० पौंड की पूँजी के शेयर बेचकर जमा इकट्ठा की और युद्ध के लिए सरकार को रुपया दिया।

तीन वर्ष के बाद सुलहनामे पर हस्ताक्षर हुआ। इसमें लुई को यह स्वीकार करना पड़ा कि विलियम इँग्लेंड का राजा है।

इस सन्धि का फल यह भी हुआ कि पार्लियामेंट के द्वारा चुने हुए राजा को शक्ति स्वीकार की गई, साथ ही इससे उस कम्पनी की नींव मज़बूत हो गई और १६९४ में उसी का नाम 'बैंक आव् इँग्लेंड' पड़ा। पर इस संस्था की उन्नति राष्ट्रीय धन के व्यय आदि के सम्बन्ध में बढ़ता हुआ अधिकार बहुत लोगों को अखरता था, ख़ासकर उन पूँजीवालों को जो ऊँचे सूद की दर पर रुपया लगाया करते थे। उन लोगों ने इसका विरोध शुरू किया। पर सरकार की सहायता के कारण यह संस्था दिनोंदिन उन्नति करती गई।

फिर भी इसके जीवन के पहले पचास वर्षों में इस पर तीन बड़ी बड़ी आफ़तें आईं। १७१५ का 'स्टुअर्ट विद्रोह' सबसे प्रथम था। द्वितीय जेम्स का पुत्र स्काटलेंड आया और वहाँ लड़ाई की तैयारी शुरू की। यद्यपि यह विद्रोह बहुत ही मामूली था, फिर भी इससे लंदन में हलचल मच गई और यदि सरकार सहायता न करती तो बैंक का दिवाला निकल जाता।

दूसरी विपत्ति इससे कहीं अधिक भयङ्कर थी। १७११ में एक कम्पनी दक्षिण-अमरीका और दक्षिणी समुद्र में व्यापार करने के लिए खोली गई थी। १७२० तक इस कम्पनी को काफ़ी प्रसिद्धि हो चुकी थी। इसी समय तरह तरह की अफ़वाहें—दक्षिणी समुद्र के सम्बन्ध में सुनाई पड़ने लगीं। लोगों ने समझा कि उधर असीमित धन उपार्जन किया जा सकता है। जनता का यह अन्ध-विश्वास देखकर ढोंगी कम्पनियाँ खुलने लगीं। लोग आँख मूँद-मूँदकर ऐसी कम्पनियों में अपना रुपया लगाने लगे। यह देखकर सरकार ने ढोंगी कम्पनियों को दबाना शुरू किया और ८६ कम्पनियाँ बन्द हो गईं। लंदन भर में तहलक़ा मच गया। असली कम्पनियों से भी लोगों का विश्वास उठ गया। पर इस बार भी बैंक बड़ी चेष्टा करके सँभल गया।

तीसरी विपत्ति १७४५ में आई जब स्टुअर्ट-वंशीय कुमार चार्ली स्काटलेंडवालों की सहायता से इँग्लेंड पर चढ़ाई करने के लिए डर्बी तक बढ़ आया। लंदन में ख़लबली मच गई। फ़्रांस में युद्ध करने के लिए अँगरेज़ी सेना बाहर चली गई थी। राजा भागने के लिए तैयार बैठे थे और लोग अपना धन बैंक से निकालने के लिए व्याकुल हो रहे थे।

इस समय बैंक के डाइरेक्टरों ने बड़ी होशियारी से काम लिया। उन लोगों ने कुछ मज़बूत आदमियों को बैंक से बड़ी बड़ी रक़में निकालने के लिए नियुक्त किया। इन लोगों को छः पेंस के सिक्के दिये जाने लगे, जिससे एक आदमी को पूरी रक़म देने में ही बहुत समय लग जाय। इनके पीछे लोग व्याकुल खड़े थे, पर जहाँ चेक भुनाया जाता था वहाँ तक पहुँच नहीं पाते थे। यही हालत तीन दिन तक रही। तीसरे दिन चार्ल्स कुलोडेन में हरा दिया गया। जनता शान्त हो गई। इसके बाद से यह बैंक केवल राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था हो रहा है। इस पर अब भी बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं। गत युद्ध के समय में इस बैंक पर कई विपत्तियाँ आईं। हाल में ही संसार की आर्थिक सङ्कट के कारण और फ़्रांस और अमेरिका की आर्थिक नीति के कारण इसे एक बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा, जिसके कारण इँग्लेंड को गोल्ड स्टैंडर्ड छोड़ना पड़ा है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि बैंक आव् इँग्लेंड की नींव पर धक्का पहुँचना असम्भव है—कम से कम जब तक इँग्लेंड के साम्यवादियों की शक्ति के

कारण वर्तमान बैंक-प्रणाली ही न ध्वंस हो जाय या इँग्लेंड की स्वतन्त्रता न छिन जाय।

—लक्ष्मीकान्त झा

८—शिकार

शिकार खेलने की प्रथा बहुत प्राचीन है। जो लोग मांसाहारी नहीं हैं वे भी सिंह, बाघ और चीता आदि हिंस्र जन्तुओं के शिकार को बुरा नहीं समझते। रामायण और महाभारत आदि प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों में मृगया का उल्लेख मिलता है। आखेट में मनोरञ्जन के साथ-साथ जहाँ व्यायाम होता है, वहाँ साहसिक कार्यों के करने की शक्ति भी बढ़ती है।

कल-कारख़ानों और रेल-मोटर के प्रचार से अब सिंह, चीता, बाघ, हाथी और रीछ आदि जन्तु बस्तियों से बहुत दूर चले गये हैं। उदाहरणार्थ दिल्ली के इर्द-गिर्द पचास मील के अन्दर इस प्रकार के शिकार का मिलना कठिन है। परन्तु देशी रजवाड़ों में अभी कल-कारख़ानों का उतना प्रचार नहीं है। वहाँ मोटर और रेल की सड़कों का जाल भी कम ही फैला है। इसलिए वहाँ अब तक भी घने जङ्गल हैं और उनमें शिकार की बहुतायत है। इस समय शेर जूनागढ़-राज्य में और जङ्गली हाथी मैसूर में ही मिलते हैं। राजा और नवाब लोग अँगरेज़ अफ़सरों को प्रसन्न करने के लिए अपने यहाँ शिकार खेलाने के लिए निमन्त्रित करते हैं। इकट्ठे शिकार खेलने से तकल्लुफ़ दूर होकर घनिष्ठता बढ़ जाती है।

वन का राजा निस्सन्देह शेर ही है। यह शेर बबर से भी अधिक मक्कार और अधिक उग्र होता है। चुस्ती और मज़बूती में भी उससे कम नहीं। शेर को मारने की दो विधियाँ हैं। एक विधि तो यह है कि एक विशेष रूप से ऊँचा मचान बनाया जाता है। उसके निकट ही बकरी आदि कोई पशु बाँध दिया जाता है। रात को जब शेर उसे खाने आता है तब शिकारी मचान पर से उस पर गोली चलाता है। दूसरी विधि यह है कि लोग एक विशेष ढङ्ग से शेर को ससकारकर जङ्गल के एक खुले स्थान में ले आते हैं। वहाँ शिकारी हाथियों पर बैठे हुए दिन के समय उसे बंदूक़ का निशाना बनाते हैं।

शिकारी लोग पहली विधि को उतना पसन्द नहीं करते। यह विधि तो बस्ती के आस-पास से चीतों और बाघों के भगाने के लिए ही उपयुक्त समझी जाती है। दूसरी विधि हाथी पर से दिन के समय शेर को गोली से मारना सब प्रकार से अच्छी है। इस में शिकारी की वीरता भी देखी जाती है।

राजा लोग जब हाथी पर सवार होकर शेर का शिकार खेलने जाते हैं तब उनके साथ बहुत से सशस्त्र सिपाही और झाड़ियों को हिलाकर शेर को हाँकने वाले एक विशेष जाति के मनुष्य भी रहते हैं। ये लोग शिकारी कहलाते हैं। कई पीढ़ियों से ये यही काम करते हैं। इनको शेर के स्वभावों का पैतृक ज्ञान रहता है। शेर जब रात की मार के बाद सवेरे वापस आता है तब ये उसका ध्यान रखते हैं। इनके हाथ में लम्बी लम्बी लाठियाँ होती हैं। लाठी के सिरे पर भाला लगाने के लिए जगह बनी होती है, ताकि झाड़ियों को हिला कर शेर को आगे हाँकते समय यदि वह किसी मनुष्य पर आक्रमण कर दे तो इस भाले से रोका जा सके। शेर जब गोली खाकर भाग जाता है तब हाथी पर चढ़ कर ही उसके पास पहुँचते हैं।

शिकार के घने जङ्गल बड़े बड़े टुकड़ों में बँटे रहते हैं। इनके बीच बड़े चौड़े रास्ते बने होते हैं। एक रास्ता कोई पचास गज़ चौड़ा होता है और पर्वत के पैर से आरम्भ होकर उसकी पीठ तक चला जाता है। जङ्गल से लकड़ी और घास इन्हीं मार्गों से काट कर लाई जाती है। ये मार्ग शेरों को एक जङ्गल से हाँक कर दूसरे जङ्गल में ले जाने में भी काम देते हैं। इस मार्ग को पार करते समय ही शेर पर गोली चलाई जा सकती है। घने जङ्गल में, वृक्षों की ओट के कारण निशाना लगाना कठिन होता

है। शिकारी लोग शेर को ससकारकर इन खुले रास्तों में ले आते हैं। तब राजा लोग हाथी पर से उस पर गोली चलाते हैं। शेर को हाँकने के लिए सबसे अच्छा समय दिन का तीसरा पहर होता है।

हाथी ऐसे सधे होते हैं कि वे शेर के झुँझला-कर आक्रमण करने पर भी अपने स्थान से नहीं हिलते। प्रत्येक हाथी पर महावत के अतिरिक्त तीन चार बन्दूक़वाले मनुष्य भी रहते हैं।

रात को पेट भर खाने के बाद दिन में सोये हुए शेर को जगाने से वह क्या कुछ नहीं कर डालेगा? यह कहना कठिन है। शेर इस खुले मार्ग को पार करते समय घुड़-दौड़ के घोड़े के समान सरपट दौड़ता है। परन्तु उसको गोली की मार में लाना आवश्यक है। इसलिए इसके भाग निकलने के मार्गों को परिमित बनाने के लिए एक निराला उपाय किया जाता है।

लकड़ी के आदमी बनाकर—उनके सिर पर पगड़ी, गले में कमीज़ और नीचे पायजामा पहना-कर—इस खुले रास्ते के साथ-साथ एक पंक्ति में गाड़ दिये जाते हैं। कहते हैं, एक बार एक शेर ने, इन को सचमुच का आदमी समझ कर, इन पर आक्रमण कर दिया था। पर उनको अचल खड़ा देख कर वह डरकर पीछे भाग आया था।

शिकारी लोग इन बनावटी आदमियों को बड़े चुपके से गाड़ते हैं, क्योंकि ज़रा सी भी आहट होने पर 'धारियोंवाले जन्तु' को संदेह हो जाता है और वह चट पहाड़ के ऊपर भाग जाता है।

शिकारी लोग जब शेर को हाँकने लगते हैं तब बिगुल का एक शब्द किया जाता है। ससकारते समय अवस्थाओं के अनुसार कभी तो शिकारी बिलकुल चुपचाप रहते हैं और कभी शोर करते हैं। शेर का शिकार करते समय कभी कभी लकड़बग्घे और साँभर आदि दूसरे जन्तु भी निकल आते हैं।

शेर का सबसे कमज़ोर भाग उसके कन्धे होते हैं। यहीं गोली का घातक घाव लगता है। घायल होकर शेर कभी कभी इतने ज़ोर से आक्रमण करता है कि वह उछल कर हाथी के हौदे पर पहुँच जाता है। शेर के आक्रमण करने पर हाथी भय से चिंघाड़ने लगता है। गोली खाते ही शेर वहीं गिर नहीं पड़ता। मरकर गिरने से पहले वह पाँच पाँच गोलियाँ खाकर भी कई गज़ तक भाग जाता है।

कई लोग अहङ्कार से पैदल शेर पर गोली चलाने की डींग हाँका करते हैं। पर घने जङ्गल में पैदल शेर पर गोली चलाना पागलपन से कम नहीं है। जब तक शेर के ठीक हृदय या मस्तिष्क में गोली न लगे वह सीधा गोली चलानेवाले पर झपटता है और प्रायः बहुत अधिक हानि पहुँचा देता है। इसके दाँतों और पंजों के घाव सदा सड़ जाते हैं। वे आसानी से चङ्गे नहीं होते।

शेर और चीता बिल्ली की जाति के जन्तु हैं। वे अपना ही मारा हुआ शिकार खाते हैं। जिस बैल को शेर आज मारता है उसे वह सारा का सारा आज ही नहीं खा लेता। उसका कुछ भाग कल रात के लिए भी छोड़ देता है। इसलिए उस मारे हुए बैल के निकट किसी वृक्ष पर मचान बनाया जाता है। रात को जब शेर उस बैल के अवशिष्टांश को खाने आता है तब मचान पर से वह गोली का निशाना बनाया जाता है। इस मतलब के लिए शिकारी जङ्गल में किसी जगह एक बैल या बकरी बाँध देते हैं। जब शेर उसे खाने आता है तब वे उसका शिकार करते हैं।

कई मचान स्थायी होते हैं। वे मीनार के सदृश पत्थर के बनाये जाते हैं। पर अब ऊँचे मचान न बनाकर भूमि ही पर लोहे के मज़बूत तार के पिंजरे बनाये जाते हैं, ये झाड़ियों से ढँक दिये जाते हैं। शेर को फँसाने के लिए बाँधे हुए बैल के ऊपर मध्यम सा प्रकाश लटका दिया जाता है। जब तक यह प्रकाश बहुत ही तेज़ न हो ये मांसाहारी जन्तु उसकी कुछ परवा नहीं करते। एक बार खाना शुरू कर देने पर फिर चाहे उस बिजली के प्रकाश को—यदि यह

बिजली का प्रकाश हो—कितना भी तेज़ कर दो, ये जन्तु डरते नहीं। इस प्रकाश की सहायता से निशान बाँधने में बड़ी आसानी रहती है।

बिल्ली की जाति के जन्तुओं की सँघने की शक्ति उतनी तेज़ नहीं होती, परन्तु इनको सुनने की शक्ति आश्चर्यजनक है। तनिक सी आहट, खाँसी, या काना-फूसी से ही शेर या चीता दूर भाग जाता है और फिर सारी रात वहाँ नहीं आता। ये हिंस्र जन्तु बड़े चुपके से अपने शिकार के इर्द-गिर्द रेंगते हैं। फिर धीरे-धीरे पीछे से जाकर उस पर झपटते और एक ही बार पञ्जा मारकर उसका काम तमाम कर देते हैं। पशु को मार डालने के बाद बाघ (panther) लौट आता है और फिर किसी दूसरे समय उसे खाने जाता है। इस समय यदि बाघ शिकारी की गोली से घायल हो जाय, तो शिकारी को दिन चढ़ने से पहले अपने मचान या पिंजरे को छोड़ने का साहस नहीं करना चाहिए। जिस समय घायल बाघ निकट ही खुला फिर रहा हो, उस समय अँधेरे में मचान से नीचे उतर कर जङ्गल में चलना मानो मृत्यु का आह्वान करना है।

एक बार एक शेर घायल होकर एक पेड़ पर चढ़ गया था और वहाँ से उसने मचान में बैठे हुए शिकारी को नीचे घसीटकर मार डाला था। घायल चीता कभी-कभी पिंजरे पर भी चढ़ जाता है और गोली चलाने के सूराख़ों में पञ्जे डाल कर शिकारी पर आक्रमण करता है। फिर भी पिंजरा मचान से अच्छा है।

अन्धकारमय निस्तब्ध वन में चुपचाप बैठकर इन भीषण जन्तुओं के आने की प्रतीक्षा करना बड़ा रोमाञ्चकारी होता है। पिंजरे में बन्द बाघ एक लम्बा चौड़ा जन्तु देख पड़ता है। पर जङ्गल में उसके पीले और काले धब्बे उसके इर्द-गिर्द की चीज़ों के साथ पूर्णरूप से मिल जाते हैं। वृक्षों के घने पत्तों में से छनकर पड़नेवाले सूर्य के प्रकाश के कारण उसका पहचानना और भी कठिन हो जाता है।

अब एक दूसरे प्रकार के शिकार का हाल सुनिए। मगर भारत की नदियों में बहुत पाया जाता है। जो भी जन्तु या मनुष्य इसके पञ्जे में फँस जाय यह उसे घसीटकर पानी में ले जाता है। प्रतिवर्ष बीसियों स्त्रियाँ और बच्चे, नदियों में नहाते हुए, बड़े बड़े घड़ियालों का ग्रास बनते हैं। यह हिंस्र जन्तु अपनी मज़बूत पूँछ की लपेट से अपने आखेट को पानी में गिरा देता है। फिर उसका हाथ या पैर पकड़कर उसे पानी के नीचे घसीट ले जाता है। जब वह डूब-कर मर जाता है तब यह उसे फ़ुर्सत के वक्त निगल जाता है।

मगर दोपहर के समय नदी से निकलकर किनारे की रेत पर धूप तापने आता है। तब शिकारी हाथ में बन्दूक़ लिये चुपचाप रेंगता हुआ, सावधानी के साथ, पानी के किनारे पर जा पहुँचता है और जहाँ मगर का सिर धड़ से मिलता है वहाँ ताककर गोली मारता है। मगर की यही जगह सबसे कमज़ोर होती है।

गोली खाकर मगर अनेक बार नदी में भाग जाता है। फिर इसका पकड़ना कठिन होता है। नदियों के किनारे एक विशेष जाति के लोग रहते हैं। वे मगरों से बिलकुल नहीं डरते। वे लङ्गोटी पहन कर, हाथ में बाँस लिये, घड़ियालों से भरी हुई नदी में घुस जाते हैं, और जहाँ पानी में से ऊपर को लहू निकलता दीखता है वहाँ बाँस से टटोलकर डुबकी लगाते हैं और घायल जन्तु को किनारे पर घसीट लाते हैं। कहते हैं, इन लोगों के शरीर से एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। इससे मगर इनको नहीं खाता।

जङ्गली सूअर बड़ा भयानक जन्तु है। घायल हो जाने पर यह शिकारी पर बहुत बुरी तरह से आक्र-मण करता है। यह सवार के घोड़े की टाँगों को अपने मज़बूत और तीक्ष्ण दाँतों से चीरकर उसे गिरा देता है। तब शिकारी का बचना कठिन हो जाता है। इस समय शिकारी के लिए प्राण-रक्षा

का एक ही उपाय रह जाता है। वह यह कि वह निश्चल पड़ा रहे। उसके ज़रा-सा हिलने-डुलने पर सूअर तीर की तरह उस पर झपटता है और एक सेकंड में उसको चीर डालता है। दूसरे सवार साथ हों तो भालों और बर्छियों से सूअर को परे हटा भी ले जा सकते हैं, पर साथियों को सहायता के लिए शिकारी के पास पहुँचने में जितनी देर लगती है उतने में सूअर मनुष्य का काम तमाम कर देता है। इस-लिए रक्षा की आशा चुपचाप पड़े रहने ही में है।

पञ्जाब में एक विशेष जाति के लोग जाल लगा-कर डण्डों से ही सूअर को मार डालते हैं। कुछ वर्ष हुए रावी-नदी के किनारे इन लोगों को सूअर का शिकार करते देखने का अवसर लेखक को भी मिला था। सूअर के जाल में फँसते ही उन लोगों ने इसे कौली भरकर गिरा दिया और डण्डे मार-मार कर मार डाला। इस कुश्ती में एक आदमी का हाथ सूअर के दाँतों से घायल भी हो गया था।

ख़रगोश और हिरण के शिकार में बाज़ों, शिकरों और कुत्तों से सहायता ली जाती है। एक समय एक शिकारी दल में सम्मिलित होने का मुझे भी मौक़ा मिला था। वहाँ एक ख़रगोश कुत्तों से बचकर छिप गया। परन्तु ऊपर उड़ते हुए बाज़ ने उसे देख लिया। वह उस पर झपटा और कानों को पकड़ कर उसे आकाश में ले उड़ा। जब तक कुत्ते वहाँ न पहुँच गये वह उसे आकाश में ही उठाये रहा। उनके पहुँच जाने पर उसने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और कुत्तों ने उसे दबोच लिया।

—सन्तराम

९—स्वप्न या अभिशाप

(१)

पुत्र ने कहा—अगर किसानी का काम कराना था तो आपने मुझे अँगरेज़ी क्यों पढ़ाई ?

पिता ने जवाब दिया—जिससे तुम कृषि-कार्य की देख-भाल भली-भाँति कर सको। मुझे विश्वास है कि इस कर्म से तुमको अन्न-वस्त्र का कष्ट कभी उठाना नहीं पड़ेगा।

उद्दण्ड लड़का धृष्टता से बोला—परन्तु इस काम में मान-सम्भ्रम क्या है ? भविष्य में उन्नति की क्या आशा है ?

पुत्र अपने हठ पर डटा रहा। उसने पिता का निषेध नहीं माना। एक दिन नौकरी करने के लिए वह गाँव छोड़कर अन्य स्थान को चला गया।

(२)

वेदराम किसान का लड़का था। उसका पिता ५० बीघा ज़मीन का मालिक था; कृषि-वृत्ति से ही संसार-यात्रा निर्वाह करता था। बहुत व्यय करके, नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करके, उसने अपने लड़के को अँगरेज़ी स्कूल में पढ़ाया था। लड़का भी बहुत उद्योग और परिश्रम से हाईस्कूल की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था। पिता को उसे और अधिक अँगरेज़ी पढ़ाने की प्रबल इच्छा थी। परन्तु लड़के के विवाह-बन्धन में फँस जाने के कारण उसके विद्योन्नति-मार्ग में कठिन अड़चन पड़ गई। दुलारे लड़के को आगे पढ़ने के लिए पिता ने भी विशेष आग्रह नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लड़के के दिमाग़ में स्वतन्त्रता के विचार चक्कर मारने लगे और वह अपने को बहुत कुछ समझने लगा। कहना अनावश्यक है कि ग्राम्य-जीवन अब उसको नितान्त नीरस मालूम होने लगा, यद्यपि वेदराम आबाल्य गाँव का रहनेवाला था।

आज तक उस खेतिहर गाँव में किसी ने हाई-स्कूल की परीक्षा पास नहीं की थी। इससे उस गाँव में वेदराम का बड़ा सम्मान था। बाप की खेती को देखने-भालने के लिए एक अलग नौकर नियत हुआ; क्योंकि उसके 'शिक्षित' और 'बाबू' लड़के को कृषि-कार्य की देख-रेख के काम से घृणा थी और वह स्वयं वृद्धावस्था के कारण सब काम अपनी आँखों से देखने में लाचार था। लड़का पास होने के बाद अधिक समय गाँव के मुखिया के यहाँ आवारा लड़कों के

साथ चौसर-फ्लास खेलकर अपना अमूल्य समय नष्ट किया करता था।

ऐसी दशा में एक दिन पिता ने पुत्र को अपने पास बुलाकर कहा—हम अब वृद्ध हो चुके हैं, बेटा; अब तुम हमसे सब काम-धन्धा समझ लो। इसके बाद पिता और पुत्र में जो बातचीत हुई थी उसका वर्णन पहले हो चुका है।

(३)

जब से परीक्षा का नतीजा निकला था तब से वेदराम की छाती पर साँप लोट रहा था। आज गँवार पिता का गँवारू प्रस्ताव सुन कर उसके दिल में भरा हुआ गुबार निकल पड़ा। उसके जवाब से व्यथित होकर और उसका रुख़ देखकर वृद्ध चुप हो गया। लेकिन नौकरी के लिए तरसने से होता क्या है? ख़ैर कुछ दिन तक इधर-उधर अर्ज़ी भेजने और भटकने के बाद सौभाग्यवश वेदराम को कासगञ्ज के म्युनिसिपल आफ़िस में एक नौकरी मिल गई। पहले उसकी यह इच्छा थी कि प्रत्येक सप्ताह में एक बार घर जायगा; किन्तु ऐसा करने से ख़र्च बढ़ ही जायगा, साथ ही चेरमैन साहब भी नाराज़ होंगे। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि एक छोटा सा किराये का मकान लेकर स्त्री के साथ रहेगा। जब नौकरी का नियुक्ति-पत्र मिल गया तब वह स्त्री को यह आश्वासन देकर कि मकान का प्रबन्ध शीघ्र ही करके तुमको ले जाऊँगा, वह कासगंज को रवाना हुआ।

(४)

रात्रि के नौ बजे वेदराम कासगञ्ज पहुँचा। अभी तक वह कहीं मकान ठीक नहीं कर सका था। यहाँ पर उसकी जान-पहचान का कोई आदमी भी नहीं था। अतः बाध्य होकर उसको एक अपरिचित होटल की शरण लेनी पड़ी। रेलगाड़ी में तीसरे दर्जे का दरवाज़ा खुला हुआ मिलने से उसमें प्रवेश करने के लिए उसके सामने मुसाफ़िरों का जिस प्रकार ताँता लगा रहता है, उसी प्रकार चिन्ता-राशि ने उसके अपरिपक मस्तिष्क के अन्दर भीड़ लगा दी। विस्तर का पुलिन्दा बिना खोले होटल के बरामदे के एक प्रान्त में उसने आश्रय लिया। क्षण भर में शान्तिमयी निद्रादेवी ने उसके भ्रमण-क्लान्त शरीर का सस्नेह आलिङ्गन किया।

(५)

रात्रि के बारह बज चुके थे। होटल के बाबू लोग एक एक करके सब-के-सब अपने-अपने 'रूम' में सो गये थे। शहर का कोलाहल क़रीब क़रीब बन्द हो गया था। कभी कभी दो-एक मोटर की भों-भों आवाज़ या कुत्तों के भौंक के सिवा और कोई शब्द कर्णगोचर नहीं होता था। होटल के सामने सरकारी सड़क पर रोशनी टिम-टिमा रही थी। सड़क पर लोगों का चलना-फिरना बिलकुल बन्द हो गया था। केवल होटल के रसोइया मिश्र महाराज दिन भर का काम समाप्त करके अपनी लालटेन के क्षीण प्रकाश में गा-गाकर रामायण पढ़ रहे थे और बीच बीच में आँसू बहा रहे थे।

(६)

सहस्रों चिन्ताओं के बीच उस दिन की घर की घटना वेदराम के दिल में विशेषरूप से प्रकट हुई—

बिदाई के दिन वह मुझसे कितनी विनती करके बोली कि हमें कृपाकर साथ ले चलो। उस वक़्त मैं किसी तरह नहीं सोच सका कि आख़िरकार ऐसा मामला होगा। तब मैंने उसे समझाया था कि वहाँ जाकर बहुत जल्दी एक मकान किराये पर लूँगा और तुमको ले जाऊँगा। लेकिन अब देखता हूँ कि मेरी कामना के पूरी होने में कितनी रुकावटें हैं! कहाँ भीखमपुर और कहाँ कासगञ्ज! मेरी तनख़्वाह सिर्फ़ २०) है। उसको यहाँ लाकर रक्खूँगा कहाँ? मुझे तो फ़िलहाल किसी तरह इस होटल में जगह मिली है। जब तक कोई सुविधा नहीं होती तब तक मेरा क्या बस है!

(७)

वेदराम को नवाब मोहल्ले के होटल में आये दस दिन हो गये। यह होटल सड़क के किनारे

था। उस सड़क से हो भीखमपुर जाने की 'लारी' आया-जाया करती थी। 'लारी' को देख कर वह सोचने लगता, आज चला जाऊँ। किन्तु थोड़ी देर बाद यह आशङ्का होती कि यह मेरी नई नौकरी है; इसे भी खो बैठूँगा तो मेरी सारी आशायें धूल में मिल जायँगी और मैं कहीं का नहीं रहूँगा।

एक दिन वेदराम को अकस्मात् बुख़ार आ गया। रात को १२ बजे तक बुख़ार की तेज़ी के कारण वह बहुत ही बेचैन रहा; उसने करवट पर करवट बदलीं, पर नींद के नाम पलक तक न झपके; आख़िर एक बार आँखें लग ही गईं। उस दशा में उसको मालूम हुआ मानो किसी ने उसकी शय्या के बग़ल में बैठकर सुकोमल हस्त के स्पर्श से धीरे-धीरे उसके वेदना-व्यथित चरणों को अपने अङ्क पर खींच लिया है।

"तुम कौन ?"

यह बात सुनते ही नवागन्तुक के सारे मुखमण्डल पर घोर लालिमा छा गई; वेदराम को मालूम हुआ, मानो उसके मुखमण्डल पर ज्योति के समान प्रकाश की एक मनोहर रेखा विकसित हो उठी है।

उसने सिर नीचा करके मृदुस्वर में उत्तर दिया—मैं सरबतिया।

"तुम ? अरे यहाँ—होटल में क्यों ?"

"तुम तो मुझे ले नहीं आये। लेकिन मेरा हृदय व्याकुल हो उठा, चञ्चल हो उठा, लालायित हो उठा। इसी लिए दौड़कर आई हूँ। अब देखूँ, किस तरह तुम मुझे दूर रख सकते हो।"

"ऐं—यह क्या किया ? माताजी क्या सोचती होंगी ? पिताजी को अकेले कैसे छोड़ आई ?"

उसके होठों पर मुसकराहट की हल्की सी रेखा झलक गई और उसने अपना लज्जारुण मुख केवल नीचा कर लिया।

वेदराम मुग्ध-नेत्रों से उसके चेहरे की तरफ़ ताकने लगा। आह! क्या ही मनोहर छवि है! क्या ही अनुपम सौन्दर्य है! क्षुद्र ललाट पर घन-कृष्ण, कुञ्चित कुन्तलराशि असंलग्न अवस्था में इधर-उधर तितर-बितर हो रही थी। ठीक उसी के ऊपर शुभ्र वसनाञ्चल के नीचे ही, उसकी माँग के बीच, वेदराम ने देखा कि दो साल पहले के एक मिलन-मुखर वैशाख के उजियाले सन्ध्याकाल में उसी से अङ्कित की हुई सेंदुर की रेखा उतर आई है। उस रेखा को तो वह आजीवन नहीं भूल सकता। उसकी लाल किनारीवाली खद्दर की साड़ी, उसके महावर से रञ्जित चरण-युगल, उसके कङ्कण-शोभित दो हाथ, उसके स्वेद-विन्दु सिञ्चित गुलाबी कपोल, उसके रक्ताभ अधरों पर कुन्द-कुसुम-निन्दित दन्त-पंक्ति, उसी के बीच मनोरम भावराज्य की सरल और मृदु-मधुर मुसकान ने वेदराम को एक-दम विचलित कर दिया।

वेदराम उसकी चम्पक-कली सदृश उँगुलियों से शोभायमान, लोहिताभ, रुई से कोमल दोनों हाथों को बड़े आवेग से अपने हाथों में खींचकर धीरे धीरे हिलाने लगा। वह मानो उसके हाथों की क्रीड़नक थी। वह मन-ही-मन सोचने लगा, वे हमारे खिलौने अवश्य हैं। जिस प्रकार हम खिलाते हैं, उसी प्रकार वे खेलते हैं—अपनी ही जान पर खेल जाते हैं। खेलते-खेलते भ्रान्ति के वश में आकर उन खिलौनों को पछाड़कर हम स्वयं तोड़ डालते हैं, उनका सदुपयोग करना नहीं जानते—न सीखते हैं, फल यह होता है कि जीवन भर 'हाय' 'हाय' करना पड़ता है।

(८)

कुछ समय इसो प्रकार सुखद स्वप्न में अतिवाहित होने के बाद हठात् किसी की कर्कश पुकार से स्वप्न, तन्द्रा, नींद सब के सब बिदा हो गये और उसके साथ ही वेदराम की प्रिया चिर काल के लिए उसके नयनों से ओझल हो गई।

बाहर के आदमी की पुकार से हक्का-बक्का होकर वेदराम उठ बैठा। उसका शरीर आज बहुत ही दुर्बल था और मन दुर्भावनाओं से विकल था; इसलिए उस आदमी की बात की वह सम्यक् उपलब्धि न कर

सका और आँखें मलते हुए कम्पित-स्वर से कहा, अरे, तुम कौन हो ? क्या चाहते हो ?

वह बोला—मैं चिट्ठी-रसा हूँ ! आपकी एक चिट्ठी है।

वेदराम चौंक पड़ा, क्योंकि आज बहुत ही विलम्ब हो गया था, मकान के चारों ओर सूर्य की रोशनी भर गई थी।

चिट्ठी-रसा बिस्तर पर चिट्ठी डालकर चला गया था। पत्र घर से आया था। शीघ्रता से लिफ़ाफ़ा खोलते हुए उसके हाथ काँप रहे थे। उसके मुख पर एक रङ्ग आया, एक चला गया। लिफ़ाफ़ा खोलकर वेदराम ने पढ़ा—उसका सर्वनाश हो गया है। वह चिन्ता-सागर में डूब गया। उसकी चिन्ता का सारांश यह था—उसके समान कुटिल, निर्मम हृदयहीन को सारा जीवन जलाकर खाक करने के लिए विधाता ने उसके सिर पर कराल कुठार मारा है।

वेदराम की मा ने लिखा था—"प्यारे वेदराम, बहू कल रात १२ बजे मेरे वक्षःस्थल पर दारुण शैलाघात करके हैज़े की बीमारी से सतीधाम को चली गई है। उसकी अन्तिम वाणी यह थी—मैं पतिदेव की सेवा करने जा रही हूँ।"

वेदराम का सिर चकरा गया और पैर डगमगा गये; वह मौन होकर बिस्तर पर बैठ गया। उसके चित्त में अनुताप और अनुशोचना की ज्वाला सुलग रही थी; उसके रोग-क्लिष्ट मुख पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। घटना-पट का यह परिवर्तन देखकर उसका चित्त डाँवाडोल हो गया। अन्त में उसका पत्थर से जड़ा हुआ दिल पसीज कर आँखों से आँसू बनकर निकल पड़ा। थोड़ी देर बाद होटल के रहनेवाले बाबू लोगों ने उसके कमरे में आकर देखा कि वेदराम के अश्रु-सिन्धु में उसकी जीवन-लीला को अन्तिम यवनिका गिर गई है।

—कालीचरण चटर्जी

१०—रेशम का व्यवसाय

भारत को इसकी आवश्यकता है।

रेशम के व्यवसाय की आवश्यकता हिन्दुस्तान जैसे ग़रीब देश में, जहाँ के अधिकांश वासी मुश्किल से एक शाम भोजन पा सकते हैं, अत्यन्त अधिक है। कारण; (१) यह उद्यम कृषि से सम्बन्ध रखता है जो देश का प्रधान धन्धा है; (२) यह प्रत्येक अवस्था में गृह-व्यवसाय है; (३) प्रति एकड़ ज़मीन स प्रथम स्टेज अर्थात् कोश की फ़सल (Cocoon production) की कम से कम आमदनी औसत गन्ने की फ़सल से अधिक है, और अधिक से अधिक आय अच्छे गन्ने की फ़सल से चार गुनी अधिक हो सकती है; (४) यह गन्ने की खेती से आसान है और घर में ही की जा सकती है; (५) एक फ़सल करने में ६ सप्ताह से अधिक नहीं लगते, और स्त्रियाँ भी इस काम को बड़ी आसानी से कर सकती हैं; (६) भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जहाँ रेशम की ६ फ़सलें हो सकती हैं—जब कि इटली और फ़्रांस में सिर्फ़ एक फ़सल, और चीन और जापान में केवल तीन फ़सलें होती हैं; (७) भारतवर्ष में इस काम को बड़े पैमाने पर करने के सभी साधन उपस्थित हैं; (क), पर्याप्त बृहत् भूमि; (ख), सस्ती मज़दूरी; (ग), उपयुक्त जलवायु; (८) यदि हिन्दुस्तान आज इतना रेशम तयार कर सके जिससे देश की वर्तमान माँग भी पूरी हो जाय, तो इससे १५ लाख परिवारों को हमेशा के लिए एक अच्छी आमदनी का धन्धा मिल सकता है। और यदि इस व्यवसाय की ओर भी वृद्धि की जा सके, तो इसकी बदौलत करोड़ों परिवारों की रोटी चलाई जा सकती है।

तीसरे कारण को सिद्ध करने के लिए कुछ व्याख्या आवश्यक है:—(१) मैसूर-रेशम-विभाग के हाल की रिपोर्ट में लिखा है कि, "आज-कल मैसूर का एक साधारण किसान आध एकड़ ज़मीन में

तूत की खेती करता है जिससे साल में रेशम की ६ फ़सलें उपजाकर, सब ख़र्च निकालने के बाद, कम से कम १००) रुपये पैदा कर लेता है। यद्यपि बीज की ख़राबी और विषय की जानकारी की कमी के कारण उसकी दो फ़सलें ख़राब हो जाती हैं" (२) जापान में १३ लाख एकड़ ज़मीन का औसत पैदावार प्रति एकड़ १० मन कोश (Cocoons) हर फ़सल में होती है। और यदि हम जापान के कीड़ा पालने को उत्तम रीतियों का अपने यहाँ उपयोग कर सकें, तो हमारी आमदनी १२००) रुपये सालाना प्रति एकड़ से भी अधिक हो सकती है। जापान की पैदावार को औसत वहाँ के दस साल की उपज से निकाली गई है जिसका पूरा ब्योरा जापान की रिपोर्ट में देख सकते हैं। (३) जापान, इटली और फ्रांस, जहाँ की मज़दूरी बहुत अधिक है, के लोग भी इस काम को बड़े लाभ और चाव से करते हैं।

हिन्दुस्तान के रेशम के व्यवसाय की दशा पहले कैसी थी, और अब क्या से क्या हो गई इसका दिग्दर्शन तो नीचे लिखी बातों से हो जायगा:—

(१) जहाँ १८३१ ई० में सिर्फ़ बङ्गाल से इँग्लेंड को रेशम का निर्यात ९,००,००० पाउंड था, वहीं १९१४ ई० में कुल ५०,००० पाउंड रह गया। आज हिन्दुस्तान भर के रेशम का निर्यात प्रायः दो लाख पाउंड है। जिसमें एक लाख पाउंड से अधिक माल केवल काश्मीर से ही जाता है, और बाक़ी एक लाख से कुछ कम ही मैसूर, मद्रास और बङ्गाल-तीनों से मिलाकर जाता है। उसमें भी मैसूर और मद्रास का हिस्सा बङ्गाल से कहीं अधिक है। इस तरह से बङ्गाल का भाग नहीं के बराबर रह जाता है। (२) पहले तूत की खेती के लिए ८०,००० एकड़ ज़मीन सिर्फ़ मैसूर में थी, और यह घटते-घटते २५,००० एकड़ तक चली आई थी। परन्तु अब वहाँ की सरकार के प्रयत्न और प्रोत्साहन के फल-स्वरूप यह फिर बढ़कर ५०,००० एकड़ तक पहुँच गई है। बङ्गाल में ११ ज़िले के लोग यह व्यवसाय करते थे। उस समय कितने एकड़ खेत में तूत की खेती होती थी इसका हिसाब नहीं मिलता। इसकी गणना केवल एक बार १९१३ ई० में की गई थी जिससे मालूम हुआ था कि, ऊपर के ११ ज़िलों में से तीन का व्यवसाय तो सर्वथा नष्ट हो गया था, ५ का क़रीब क़रीब नष्ट होने के बराबर था; और बाक़ी ४ ज़िलों में जहाँ यह व्यवसाय अभी कुछ बच रहा था, वहाँ भी इतनी तेज़ी से घट रहा था कि इसका अनुमान केवल इस बात से लग सकता है कि, जहाँ १९०८ ई० में भी मुर्शिदाबाद में ५,००० एकड़ से अधिक तूत की खेती होती थी, १९१३ ई० में यह घटकर केवल ३,००० एकड़ रह गई। बिहार प्रान्त में जहाँ भागलपुर और पटने में मुर्शिदाबाद से यह काम किसी तरह भी कम न था, अब बिलकुल लुप्त हो गया। इस व्यवसाय के पतन के तीन मुख्य कारण ये हैं:—(१) किसी ऐसी अवस्था का अभाव जो रेशम के व्यवसायियों को उचित सहायता तथा प्रोत्साहन देती। (२) रेशम के व्यवसायियों में विषय की जानकारी की कमी तथा परस्पर सहयोग का अभाव। (३) तागा निकालने का प्रचलित भद्दा और ख़राब तरीक़ा। यदि इन तीनों अवगुणों का सुधार हो सके, तो हमारा रेशम का व्यापार दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगेगा। मालदह का रेशमकार (Rearer) इस कला को सर्वथा भूल गया है। परिणाम यह होता है कि उसको फ़सल या तो एक-दम मारी पड़ती है, या बचते बचते प्रायः चौथाई रह जाती है। इसके प्रतिकूल जापान की पैदावार ९० प्रतिसैकड़ा तक हो जाती है। फलतः जहाँ मालदह में ५।६ फ़सल करने के बाद रेशमकार कुल ४ मन कोश प्रति एकड़ पैदा करता है, उसका जापानी भाई साल में कुल ३ फ़सल कर के उतनी ही ज़मीन से ३६ मन कोश पैदा कर लेता है।

तागा निकालने के जो तरीक़े बङ्गाल में प्रचलित हैं वे ऐसे हैं कि उनसे तैयार किया हुआ सूत बहुत

घटिया और बेनाप होता है। फल यह होता है कि साधारणतः सब जुलाहे इसका उपयोग नहीं करते। भागलपुर के जुलाहे तो इसके लच्छे को खोल तक नहीं सकते। मालदह और मुर्शिदाबाद के जुलाहे इससे काम कर लेते हैं परन्तु कठिनाई से।

भारत में रेशम का व्यवसाय आदि-काल से है। वेद में भी इसका विवरण मिलता है। लेकिन शोक है कि, वही व्यवसाय, जो मुसलमान राजाओं के समय में भी लाखों परिवारों का पालन करता था, आज इस तरह नष्ट होता जा रहा है। इसके विपरीत जापान जैसा देश, जहाँ यह व्यवसाय सन १०५ ई० तक नाम को भी नहीं था, आज संसार भर की माँग का ६४ प्रतिशत पूरा कर रहा है। उसी साल जापान की सरकार ने कुछ देशभक्त सरकारी अफ़सरों की सलाह से थोड़े से कुशल रेशमकारों को चीन से बुलाकर देश के भिन्न-भिन्न केन्द्रों में काम करने की आज्ञा दी थी। तब से अनेक असुविधाओं से लड़ते हुए भी उन देश-प्रेमी कर्मचारियों के अदम्य उत्साह की बदौलत आज जापान का स्थान इस व्यवसाय में सवप्रथम है। उनके परिश्रम की अधिकता का अनुमान सिर्फ़ इसी बात से लग जाता है कि जापान जैसे छोटे देश, जो हमारे एक प्रान्त के बराबर भी नहीं है, में कम से कम ४२१ स्कूल और कालेज हैं जहाँ कौशेय विज्ञान (Sericulture) पढ़ाया जाता है। इन स्कूलों से पढ़कर प्रतिवर्ष १३ लाख लड़के निकलते हैं। राष्ट्र के लिए इस रेशम के व्यवसाय का प्रश्न कितना विचारणीय है इसका कुछ ज्ञान प्रतिवर्ष के भारी आयात के कुछ अङ्कों से हो जायगा:—

रेशम का आयात

सन्		१९२६	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०
Reeled silk (खेवा)	...	९,६३३	१,१३,७७१	१४,५३२	१२,३३१	१२,३१२
Waste silk (गूदड़)	...	६	८०	८	२	...
Noilsa Warps	..	३,५३६	६,३१३	५,६४५	८,५६१	७,१८२
Mixed silk cloth (फेंट)	...	२,४५९	३,०८९	३,५२१	४,०२२	३,४७६
Pure silk cloth (शुद्ध रेशम)	...	२१,१०२	२४,२९६	२५,८०६	२४,४३१	२२,२५९
Sewing thread (सिलाई के सूत)	...	२२९	२४५	२२१	१७५	१६९
भिन्न प्रकार	...	४३७	५६३	५४३	५१५	४४८
जोड़	...	२८,०२९	३४,५०९	३६,०३७	३७,७०७	३३,०३०

कृत्रिम रेशम का आयात

सन्		१९२६	१९२७	१९२८	१९२९	१९३०
सूत	...	७,४७१	१०,२६४	१४,९२०	१३,५३०	९,९१०
कपड़ा	...	१३,७८२	३०,८७४	३८,६४२	३३,०५२	३१,४९८
अन्य प्रकार	...	६२०	९३४	१,३१८	१,१३४	१,७९२
जोड़	...	२१,८७४	४२,१७३	५४,८८२	४७,७०७	४३,२०१

F. 21

ऊपर के अङ्क हज़ार रुपयों में हैं।

जब मैं इटली में था उस समय मैंने इस व्यवसाय को अत्यन्त उन्नत अवस्था में देखा। सौभाग्य से वहाँ मैसूर के एक विद्वान् से मेरी भेंट हो गई। उन्होंने मुझे बताया कि इस व्यवसाय के सुधार में मैसूर ने कैसे-कैसे उपाय किये और किन कारणों से उत्तर-भारत में इसका नाश हो रहा है। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इस व्यवसाय से क्या लाभ है, और राष्ट्र का इसके प्रति क्या कर्त्तव्य होना उचित है। उसी समय मैंने भारत में रेशम के व्यवसाय के पुनरुत्थान के निमित्त प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया। ज्यों ही मैं घर लौटा, मैंने अपने लड़के को कौशेय विज्ञान अध्ययन करने के लिए भेजा। जब वह इस विज्ञान में पूरे जानकार होकर लौट आये, तब मैं उनके साथ इस व्यवसाय की वर्तमान दशा का अवलोकन करने तथा उसके सुधार के उपायों को सोच निकालने के लिए बाहर निकला। इस सिलसिले में मैंने रेशम के प्रायः सब केन्द्रों का निरीक्षण किया। बहुत कठिन अन्वेषण के बाद जो युक्तियाँ मैंने ढूँढ़ निकालीं उनको कार्य रूप में परिणत करने के लिए मुझे एक कापरेटिव सिल्क गाइड की स्थापना करने की आवश्यकता जान पड़ी। जो रेशम के व्यवसाय-विभाग का प्रत्येक कार्य वैज्ञानिक रीति से करे। साथ ही लोगों को समझावे कि इस काम से आर्थिक लाभ क्या है, और यह कैसे किया जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक प्रचार-द्वारा लोगों को उत्साहित करे कि वे इस काम को स्वयं करने लगें। इस तरह क्रमशः एक सहयोगिक संस्था बन जावे जिसमें हर एक काम को अलग-अलग करते हुए भी इसके सदस्य परस्पर प्रेम और सहयोग के बन्धन में बँधे हों।

मैंने यह स्कीम बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसादजी के सत्परामर्श के हेतु उनके सम्मुख उपस्थित की। उन्होंने इस युक्ति के महत्त्व का अनुभव किया और इसे पसन्द किया। अतएव मैंने भागलपुर में आकर यह कार्य आरम्भ किया है। यहाँ कोश उपजाना (Cocoon production), तागा बनाना, कपड़ा बिनना आदि सभी काम किये जाते हैं। इसके मुख्य अङ्ग का नाम शुद्ध रेशमी खादी-भण्डार रखा गया है जिसका उद्घाटन बाबू राजेन्द्रप्रसादजी ने स्वयं किया है। आशा है, जनता इससे लाभ उठावेगी।

—बी० एन० बंसीकर

११—मयङ्क

(१)

चुपके-से नभ में आकर,
तुम किसे लखा करते हो?
नीरव भाषा में अपनी,
विधु! किससे क्या कहते हो?

(२)

इस नूतन जग को लखकर,
क्या विस्मय-सा होता है?
जो अपलक देखा करते,
दृग बन्द नहीं होता है!!

(३)

तुम तारों की कौड़ी से,
विधु! कौन खेल हो करते?
जिसको अपलक आँखों से,
प्रति रजनी देखा करते!

(४)

जब ताप-तप्त-सा होकर,
है सारा जग घबराता।
तब शीतल किरणें शशि! क्या,
बरसाने को तू आता?

(५)

तेरी छाती पर यह है,
कैसा कलङ्क का टीका?

जिसने सौन्दर्य तुम्हारा,
कर दिया इन्दु ! है फीका ?

(६)

क्या तूने सार हृदय का,
तारों को बाँट दिया है ?
जिससे काला-सा तेरा,
लख पड़ता आज हिया है ?

(७)

कितनी पङ्कज-कलिका को,
कर से असमय मुरझाया !
क्या तेरी छाती पर है,
यह उसी पाप की छाया ?

(८)

या निशा-सुन्दरी सोई,
है तव छाती पर सिर रख ?
उसके ही काले-काले—
क्या लख पड़ते हैं ये कच ?

(९)

यह प्रकृति आह-सी भरती—
है घूम रही मँडराती !
क्या उसकी ही आहों से,
जल गई तुम्हारी छाती ?

(१०)

किसलिए छीजते जाते,
प्रतिनिश तुम थोड़ा-थोड़ा ।
किस दुखने कान्त कलेवर—
तेरा, यों मींज मरोड़ा ?

(११)

है कौन वेदना ऐसी,
चुप रहते, जरा न कहते !
क्या ओस-रूप से प्रतिनिश,
तेरे ही आँसू बहते ?

(१२)

क्या जग की आहों से ही,
तव तन जल जल गिरता है ?
फिर पा निसर्ग से औषध,
धीरे-धीरे बढ़ता है ?

(१३)

या पति-प्राणा कोई को—
मुरझी लख, जब चल पड़ते !
आँसू ढलका तब दृग से,
दुख प्रकट इन्दु ! तुम करते ?

(१४)

यों शोकाकुल होने से,
तुम छीज-छीज उठते हो !
विरही सुधांशु ! तुम अपना—
तन मिट्टी कर देते हो !

(१५)

तव उर में रूप निरख कर,
अपना-सा काला-काला !
विधु ! अतः घेर क्या लखती—
है तुम्हें कभी घन-माला ?

(१६)

या विकल वेदना से हो,
जलधर को स्वयं बुलाते ?
कुछ देर उसी के उर में—
रह अपनी आग बुझाते ?

—महन्त धनराजपुरी

रामचरितमानस के घाट

रामायण की प्रशंसा सुनते-सुनते न जाने कितने दिन बीत गये पर लोगों का जी उससे कुछ भी न भरा। यदि जी भरने ही की बात होती तो हम भी उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते फिरते और लोगों की तन्मयता को व्यग्र करने के अपराध से बच भी जाते। पर यहाँ की बात ही कुछ निराली है। मानव-जीवन में भावुकता और रसिकता ही सब कुछ नहीं है। उसमें बुद्धि और विवेक को भी स्थान मिलता है। अन्य कवियों की तो हम नहीं कहते पर महात्मा तुलसीदास की कविता में जो रसधारा बही है वह बुद्धि और विवेक के आधार पर ही मुक्त रहने का साहस कर सकी है। उसका ध्येय अनन्त सागर में निमग्न होने का नहीं है। वह तो कण-कण को सरस करने में ही व्यस्त है। हाँ, यह बात अवश्य ही है कि महात्माजी ने संस्कारवश अथवा किसी भी कारण से, अपने 'रामरसायन' को, अपनी 'रसधारा' को, कुछ अधिकारियों के लिए सीमित कर दिया है। यही वह सीमा है जो असीम का भान कराती है। जहाँ तक हम समझ सके हैं, इसी अधिकारी-भेद के कारण गोस्वामीजी ने रामचरित को 'मानस' की उपाधि दी है, सागर या सिंधु की नहीं।

खेद का विषय तो यह है कि साहित्य-संसार ने महात्मा तुलसीदास के आदर-सत्कार में अपने को यहाँ तक मग्न कर दिया कि उनकी रचनाओं में अपना रङ्ग चढ़ा कर उनको भ्रष्ट कर दिया। रामचरितमानस को ही लीजिए। गोस्वामीजी ने रामायण के स्थान पर अपने ग्रंथ का नाम रामचरितमानस रक्खा। यही नहीं उन्होंने सांग रूपक-द्वारा अपने नामकरण को उचित सिद्ध भी कर दिया। उन्होंने यह भी कहा—"रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ उमा सन भाखा ॥ तातें रामचरितमानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर ॥" परन्तु उनकी बातों पर कान ही किसने दिया। सब लोगों ने रामायण कहना आरम्भ कर दिया। फल यह हुआ कि गोस्वामीजी के प्रयत्न पर पानी फिर गया। राम-महिमा तो रह गई पर रामरसायन चला गया।

हिन्दी-साहित्य में विद्वानों की भरमार है। यदि अभाव है तो विद्यार्थियों का। यही कारण है कि हिन्दी-भाषा के प्रचार के साथ ही साथ हिन्दी-साहित्य बढ़ने में असमर्थ हो रहा है। हिन्दी में भी किस प्रकार के अध्ययन की आवश्यकता है, उसकी भी कोई संस्कृति या इतिहास है? आदि ऐसे प्रश्न हैं जो उठने ही नहीं पाते। ऐसी परिस्थिति में कुछ कह बैठने का साहस करना धृष्टता नहीं तो क्या है?

तुलसीदासजी अपने मानस के विषय में स्वयं कहते हैं—"सुठि सुन्दर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि। तेहि एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर

चारि।" किन्तु हिन्दी के धुरन्धर समालोचक इसका कुछ विलक्षण ही अर्थ लगा लेते हैं। उनको समझ में इसकी उपयोगिता यही है कि तुलसीदास 'पिंगल' के पंजे से इन्हीं संवादों के कारण बच सके।

भारत की साहित्य-परम्परा से जो परिचित हैं वे यह भली भाँति जानते हैं कि संवाद ऋग्वेद में भी पाये जाते हैं। बहुत से विद्वानों ने तो इन्हीं संवादों से नाटक की उत्पत्ति मानी है। संवाद आदि-कवि की रामायण में भी है, पर 'मानस' के संवाद में कुछ विशेषता है। रामचरितमानस में चार घाट हैं। पुराणों तथा गीता के संवादों से भी इसकी यही विशेषता है।

हिन्दी के कतिपय विद्वानों, विशेष कर मानस के भक्तों ने, इन घाटों पर विचार भी किया है। जहाँ तक हम समझ सके हैं ये घाट ही रामचरितमानस के मर्म हैं। अतः इन पर सूक्ष्म विवेचन अभीष्ट है।

मुंशी सुखदेवलाल, मैनपुरी ने बहुत ही परिश्रम के साथ घाटों का जो विवरण दिया है वह हमारी दृष्टि से किसी काम का नहीं है। वे तो 'सतपंच चौपाई' के फेर में पड़ गये हैं। कुछ भी हो, उनका परिश्रम सराहनीय है। हिन्दी के अन्य विद्वानों ने इन संवादों को कुछ विशेष महत्त्व नहीं दिया है। काशी के प्रसिद्ध रामायणी 'भूषणजी' का कथन है कि इन संवादों में ज्ञान, कर्म, उपासना तथा दैन्यकांड का विवेचन है। हिन्दी-साहित्य में सामान्यतः यह कहा जाता है कि शङ्कर-पार्वती ज्ञानकांड, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज कर्मकांड, काग-भुशुण्डि-गरुड़ उपासनाकांड तथा तुलसीदास दैन्यकांड का प्रतिपादन अपने अपने घाटों पर कर रहे हैं।

आज से कुछ दिन पहले, जब हम रामायण का पाठ किया करते थे, तब हमारी भी यही धारणा थी। किन्तु एक बार तुलसीदास के मानस का अध्ययन करने के उपरान्त हमारी धारणा कुछ और ही हो गई। यदि सत्य कहना गर्हित नहीं है तो हम इतना कहने का साहस तो अवश्य ही कर सकते हैं कि इस कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है। 'भूषणजी' कथा कहते समय पद्यांशों तक में घाट-परिवर्तन कर देते हैं। यदि इसका कारण जनता की रुचि अथवा मनोरञ्जन हो तो कोई बात नहीं; किन्तु, यदि यह उनका विचार हो तो उस पर उचित ध्यान देना चाहिए।

हमने अपने 'रघुवर' नामक लेख में कुछ इस ओर संकेत कर दिया था। हमें आशा थी कि हिन्दी के विद्वान् इस पर ध्यान देंगे। पर यह हमारा भ्रम था। हिन्दी के विद्वानों का काम तो कुछ और ही है। वे इन बातों पर कब विचार कर सकते हैं?

रामचरितमानस में केवल तुलसीदास का घाट ही ऐसा है जो आदि से अन्त तक सभी सोपानों में है। 'मानस' में एक भी सोपान अथवा कांड ऐसा नहीं है जिसमें तुलसीदास का नाम न आया हो। शङ्कर और पार्वती का संवाद द्वितीय सोपान अथवा अयोध्याकांड को छोड़ कर सभी सोपानों में है। याज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज का संवाद केवल प्रथम सोपान अथवा बालकांड में है। भुशुण्डि तथा गरुड़ का संवाद प्रथम तथा द्वितीय सोपान अथवा बाल तथा अयोध्याकांड को छोड़ शेष सभी कांडों में है।

उपर्युक्त विवरण में जो सबसे आश्चर्य की बात है वह यह है कि द्वितीय सोपान अथवा अयोध्याकांड में केवल तुलसीदास ही हैं अन्य 'श्रोता-वक्ता-गण' नहीं। मानस में यह परिस्थिति 'रामजन्म' प्रथम सोपान ही से आरम्भ हो जाती है। मानस का यह बहुत ही विवादग्रस्त प्रश्न है। इसी के आधार पर मुन्शी सुखदेवलाल मैनपुरी ने यह निश्चित किया था कि सम्पूर्ण मानस की रचना क्रम से एक ही बार नहीं हुई थी। हम इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश 'रघुवर' नामक लेख में डाल चुके हैं। अस्तु उसको यहीं छोड़ देते हैं।

रामचरितमानस को हम पुष्पिका की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम खण्ड में प्रथम और द्वितीय सोपान तथा द्वितीय में शेष सोपान हैं। आकार की दृष्टि से हम विभाजन नहीं कर

रहे हैं। हम यह नहीं कहना चाहते हैं कि प्रथम तथा द्वितीय सोपान विस्तार में आधे से अधिक हैं। हमारा कथन तो यह है कि उनकी पुष्पिका में केवल "श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने" ही लिखा है। शेष सोपानों में यह बात नहीं है। उनमें क्रमशः 'विमल वैराग्य', 'विशुद्ध संतोष', 'ज्ञान', 'विमल विज्ञान', 'अविरल हरिभक्ति संम्पादनो' का समावेश है।

मानस की पुष्पिका के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानस के प्रथम तथा द्वितीय सोपान प्रस्तुत विषय के परिचायक हैं। उनको एक प्रकार से भूमिका कह सकते हैं। प्रतीत यह होता है कि मानस का ध्येय 'अविरल हरिभक्तिसम्पादन' ही है। उस भक्ति की प्राप्ति के लिए क्रमशः विमल वैराग्य, विशुद्ध संतोष, ज्ञान तथा विमल विज्ञान का होना परम आवश्यक है। 'मानस' के विमल जीवन में निमज्जन के लिए उक्त सोपानों से अवतरित होना अनिवार्य है। यही मानस का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रसङ्गवश हम तुलसी के 'स्वान्तःसुखाय' पर भी कुछ प्रकाश डालना उचित समझते हैं। इस स्वान्तः-सुखाय' को लेकर हिन्दी-साहित्य में मनमाना सुधार क्रान्ति का पल्ला पकड़ रहा है और बहुत से विद्वान् तुलसीदास को स्वार्थी सिद्ध करते हैं। मानस के अन्त में स्वान्तस्तमः-शान्तये' का प्रयोग तुलसीदास ने किया है। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास् अन्तःकरण के तम अथवा कलिकलुष से दुखी थे। वे कहते भी हैं बरनौं रघुबर बिसद जस, सुनि कलि-कलुष नसाय।" कलि के ताप से संतप्त जीवों के लिए ही रामचरित-मानस का निर्माण हुआ है। उन्होंने कहा भी है—"श्रीमद्रामचरितमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः"।

हम ऊपर कह ही चुके हैं कि भारतीय साहित्य-परम्परा में संवाद की प्रथा प्राचीन है। पर इतने ही से यह व्यक्त नहीं हो पाता कि तुलसीदास ने अपने 'मानस' में संवादों का जमघट क्यों लगा दिया और उसमें बार बार 'सोइ राम, सोइ राम' की रट क्या लगा दी। जो लोग सन्त-संप्रदाय अथवा निर्गुण उपासकों के आन्दोलन से अपरिचित हैं वे कुछ भी कहते रहें, उनकी बातें अब अधिक दिनों तक हिन्दी-साहित्य में मान्य नहीं हो सकतीं। सच बात तो यह है कि तुलसीदास इस अभारतीय पद्धति से चिढ़ते थे। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया था कि—"सब ही साखी दोहरा, कहि कहनो उपखान। भगत निरूपहिं भगति कलि, निन्दहिं वेदपुरान" यह तो कहना व्यर्थ ही होगा कि इसी वेद पुराण की रक्षा के लिए, सगुण भक्ति-प्रतिपादन के लिए ही उन्होंने मानस की रचना की। "नानापुराणनिगमागमसम्मतं" तथा 'लोक-वेद' की बारम्बार की प्रतिध्वनि हमारे कथन के प्रमाण हैं। यही क्यों! कबीर ने कहा था "दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना। रामनाम का मरम है आना।" इस प्रकार एक दाशरथि राम और एक सत्यलोक के राम स्थापित हो चले थे। मानस की रचना इसी के विरोध को लेकर, दाशरथि राम को ही परब्रह्म प्रतिपादन करने की दृष्टि से हुई है।

तुलसीदास के घाट को छोड़ कर अन्य घाटों पर विचार करने से यह स्पष्ट अवगत हो जाता है कि प्रत्येक श्रोता को यही भ्रम है कि राम परब्रह्म कैसे हो सकते हैं। मानस में सबसे प्रथम इस भ्रम में भरद्वाज जी पड़ते हैं। उनका प्रश्न—"प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाइ जपत त्रिपुरारि। सत्यधाम सर्वज्ञ तुम्ह कहहु विवेक विचारि।" वस्तुतः यह प्रश्न विशेष गम्भीर नहीं है। याज्ञवल्क्यजी ने कहा भी था—"चाहहुँ सुनै रामगुन गूढ़ा। कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा।" स्पष्टही है कि तुलसीदासजी इस संवाद को विशेष स्थान देना उपयुक्त नहीं समझते हैं। वास्तव में यह प्रश्न नहीं, मुनियों का मनोविनोद है। हमारी समझ में यही कारण है कि यह संवाद कुछ ही काल में समाप्त हो गया है।

भरद्वाज के प्रश्न में त्रिपुरारि दो आये हैं। पर पार्वतीजी का प्रश्न भरद्वाज के प्रश्न से गम्भीर और जटिल है। इसमें त्रिपुरारि ही को वक्ता बनना पड़ता है। पार्वती भी इस प्रश्न को मनोविनोद अथवा समय काटने के लिए नहीं करती हैं। वे इस मोह के फंदे में फँस कर अपना एक जीवन ही नष्ट कर चुकी हैं। अतः वे शङ्करजी से उचित समय पाकर प्रश्न करती हैं—"जौं नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारिविरहमति भोरि। देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि।" यही नहीं, वे यहाँ तक आग्रह करती हैं—"तव कर अस विमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं ॥...जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी। गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥"

गरुड़ का मोह भी कुछ इसी ढंग का है, किन्तु वह इतना गहन नहीं है। मोह के विचार से उनका स्थान भरद्वाज तथा पार्वती के मध्य में पड़ता है। उनका विषाद है—"व्यापक ब्रह्म विरज वागीसा। माया-मोह-पार परमीसा ॥ सो अवतार सुनेउ जग-माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं।" तथ्य की बात तो यह है कि गरुड़ को इस बात का अभिमान हो गया था कि वे राम को बन्धन से मुक्त कर सकते थे—अथवा उन्होंने किया था। इस अभिमान का पता उस समय चलता है जब शंकरजी कहते हैं—"ता तें उमा न मैं समुझावा। रघुपतिकृपा मरमु मैं पावा ॥ होइहि कबहुँ कीन्ह अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खग ही कर भाखा ॥" शंकरजी के कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने खगपति (राजा) को काग (प्रजा) के पास इसी लिए भेजा था कि उसके हृदय से यह तुच्छ भावना निकल जाय कि छोटों अथवा नीचों की कुछ उपयोगिता ही नहीं है।

उपर्युक्त विवेचना से यह तो व्यक्त ही है कि रामचरितमानस के श्रोता एक ही श्रेणी के नहीं हैं। एक मुनि हैं, एक स्त्री है, एक पक्षी है तो एक मन अथवा सामान्य जन। उनके प्रश्नों की विभिन्नता का कारण यही श्रेणी-भेद है। मानस के वक्ताओं में भी यही विभिन्नता काम कर रही है। प्रश्नों का समाधान भी वे भिन्न-भिन्न आधार पर करते हैं। याज्ञवल्क्यजी शिवचरित्र-कथन के उपरान्त कहते हैं—"तदपि जथाश्रुत कहौं बखानी।" शंकरजी का कथन है—"तदपि जथाश्रुति जसि मति मोरी। कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी।" भुशुंडिजी गरुड़ से कहते हैं—"नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।" इस प्रकार हम देखते हैं कि याज्ञवल्क्यजी 'यथाश्रुत' कहते हैं तो कागजी 'यथामति' और शंकरजी 'यथाश्रुत' एवं 'यथामति'। हमारे कहने का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सर्वत्र इसी नियम का पालन हुआ है। कागजी स्वयं कहते हैं—"वेद पुराण संत मत भाषा" उसका आशय तो केवल यही है कि इन घाटों में प्रधानता कुछ इसी ढंग की है। शंकर तथा भुशुंडिजी अपने अनुभव पर अधिक विश्वास दिलाते हैं, पर याज्ञवल्क्यजी नहीं।

जो कुछ कहा गया है उससे हमारी समझ में यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि 'मानस' के घाटों की विशेषता ज्ञानादिकांडों के प्रतिपादन में नहीं है। मानस में शायद ही कोई स्थल ऐसा मिले जिससे यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि उसका प्रतिपाद्य विषय ज्ञान, कर्म, उपासना तथा दैन्य है। यही क्यों, उसमें तो एक प्रकार से ज्ञान तथा कर्म को नीचा दिखाया गया है। रामचरितमानस के शंकर राम के कैसे भक्त हैं—"बिनु अघ तजी सती अस नारी"। फिर उनको ज्ञानकांड का उपदेशक कैसे मान लिया जाय? याज्ञवल्क्य स्वयं कहते हैं—"चाहहु सुनै रामगुन गूढ़ा" फिर इन्हें कर्मकांड का विधायक कैसे समझ लिया जाय? सभी तो भक्ति ही का जाप करते हैं।

रही दैन्यकांड की बात, मानस से परिचित संसार यह भली भाँति जानता है कि तुलसीदास स्वयं कहते हैं—"जेहि सुमिरत भयो भाँग ते तुलसी तुलसीदास"। यह ठीक है कि कथा आरम्भ के पूर्व, भूमिका में, वे

अपनी दीनता दिखाते हैं पर वही यह भी तो कहते हैं—"जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बालकवि करहीं। सच बात तो यह है कि तुलसीदास दृढ़ता के साथ अपने मत 'हरिभक्ति' का प्रतिपादन करते हैं और अन्य लोगों से अनुरोध करते हैं कि स्वर्ग आदि की कामना को तिलांजलि देकर 'रामनाममणि' का संचय करो—"राम जपत मंगल दिसि दसहूँ"। तुलसी की दीनता 'विनयपत्रिका तथा अन्य-ग्रन्थों में इस कारण से है कि वे उनमें राम के सम्मुख हैं, लोक-भावना से बहुत कुछ मुक्त हैं। अस्तु, मानस में तुलसी का घाट दैन्य घाट नहीं है।

हम एक बार फिर यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि रामचरितमानस का प्रतिपाद्य विषय हरिभक्ति ही है, ज्ञान, कर्म या योग नहीं। तुलसीदासजी ने तो स्वयं ही स्पष्ट कह दिया है—"भगति निरूपन विविध विधाना"। मानस के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कलि के निस्तार के लिए केवल हरिभक्ति ही है, ज्ञान, जप, योग आदि नहीं। घाटों की विभिन्नता तथा परस्पर की विशेषता का निदर्शन करते समय हमने यह संकेत किया था कि पार्वती ने शंकर से स्पष्ट कहा था—"जदपि जोषिता नहिं अधिकारी"। सनातन-धर्म-परम्परा में यह चला आता था कि शूद्र और स्त्रियों को वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। पर रामानन्द ने एक सामान्य भक्तिभाव का ऐसा प्रचार किया कि स्त्रियाँ और शूद्र भी भक्त होने लगे। सम्भव है कि महात्मा तुलसीदास ने प्रकारान्तर से संवादों में इसका भी विधान किया हो। वैसे तो भुशुंडिजी भी काग ही हैं, पर भक्ति के प्रभाव से खगपति को 'नाथ' कह कह कर सुभा रहे हैं। हमें विश्वास है कि यदि संवादों पर दृष्टि रखकर मानस का अवगाहन किया जाय तो बहुत से प्रवाद, मुख्य कर स्त्रियों की निन्दा के विषय में, जो चल पड़े हैं, हवा हो जायँ।

मानस के घाटों को विशेष महत्त्व देने का कारण यह है कि महात्मा तुलसीदास स्वयं उनको 'विरचे बुद्धि विचार' कहते हैं। जब महात्माजी स्वयं मानस के घाटों को बुद्धि का प्रसव मानते हैं तब हमें कोई अधिकार नहीं है कि हम उनको उपेक्षा की दृष्टि से देखें। यथाशक्य हमने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि महात्माजी का मन्तव्य क्या था। हमने यह भी कहा है कि महात्मा तुलसीदास का भी एक घाट है। 'हेतुवाद' के जो लोग उपासक हैं, विवेक ही जिनका बल है, वे हमारी बातों से तब तक सहमत नहीं हो सकते जब तक हम यह सिद्ध न कर दें कि उनका भी एक घाट है। कारण, उनका श्रोता है कौन? श्रोता के अभाव में 'संवाद' की कल्पना कैसे की जा सकती है? हमने उपर्युक्त विवेचन में प्रस्तुत घाट का श्रोता एक प्रकार से 'मन' अथवा 'जन' को माना है। न्याय की दृष्टि से मन को श्रोता मानना कुछ लोगों को अवश्य खटकता होगा। किन्तु करें क्या? हम भी हैरान हैं। हमारी समझ में तो यही उचित है। कारण, तुलसीदास स्वयं कहते हैं—"श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल। संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल।" अस्तु, वस्तुतः मानस में, उसके घाटों पर तीन ही श्रोता जमे हैं। चौथा श्रोता, यदि कहा जा सकता है तो, हम आप अथवा तुलसीदास का मन है।

'श्रोता त्रिविध' के रहस्य से कुछ परिचित होने का प्रयत्न हम पहले ही कर चुके हैं। यहाँ पर केवल हम यही कहना उचित समझते हैं कि इन श्रोताओं में भी कुछ भेद है। भरद्वाज का प्रश्न सामान्य है। उनकी दृष्टि में अवतार सम्भव है। उनको, लोगों के मुख से सुनकर कुछ सन्देह हो गया है। दाशरथि राम ही परब्रह्म के अवतार हैं अथवा अन्य राम? यही तो उनका प्रश्न है? इसको संत-सम्प्रदाय, विशेषतः कबीर का प्रश्न समझना चाहिए। आजकल के इतिहासवादी भी इसी विभाग में काम करते हैं।

पार्वती का प्रश्न कुछ और भी प्राचीन अथवा आधुनिक है। उसे पवताकार ही समझना चाहिए। उनको अवतारवाद ही तथ्यहीन जान पड़ता था।

जीवन यौवन सफल करि मानल

उनकी समझ में अवतार एक प्रकार से असम्भव ही था। आज-कल का शिक्षित-समुदाय प्रायः इस प्रश्न पर विवाद किया करता है। तुलसीदास के समय में सम्भवतः नास्तिक कम थे।

खगपति का विषाद कुछ भिन्न है। वे अवतार को मानते हैं। उनकी समझ में अवतार में सब कुछ करने की शक्ति होती है। वे यही नहीं समझ पाते कि राम इस शक्ति की उपेक्षा क्यों करते हैं? राम की नर-लीला उन्हें पसन्द नहीं। वे शक्ति के उपासक हैं। उनके संमुख यह प्रश्न उपस्थित है कि परब्रह्म अवतार लेकर आता तो सही है; पर वह पृथिवी को स्वर्ग क्यों नहीं बना देता? वह अपने भक्तों को बड़ाई क्यों देता है? यह आज-कल का बहुत ही प्रचलित प्रश्न है।

यह तो उन श्रोताओं की परिस्थिति है जो हम लोगों से कहीं बढ़े हैं। हम लोगों के सम्मुख तो कलिकाल मुँह फाड़े उपस्थित है। उसके पंजे से किसी प्रकार बच जाने का उपाय ही क्या? हमें तो परमात्मा की सत्ता में सन्देह हो चला है, अवतार की बात ही क्या? हम तो कलि के तापों से सन्तप्त हैं; हमको शरण कहाँ? तुलसीदास कहते हैं कि यदि श्रद्धा के साथ मानस में अवगाहन करोगे तो सब कुछ ठीक हो जायगा, गति होगी, उन्हीं के शब्दों को स्मरण रखिए—

"पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥"

कहिए अवगाहन करेंगे?

—चन्द्रबली पाँडेय

(२) फलित ज्योतिष

(१)

त्रिकालदर्शी महर्षियों के निर्माण किये हुए सभी शास्त्र सत्य, ससत्व फलदायी, उपयोगी और महत्त्वसम्पन्न हैं। उनका समझना और उपयोग में लाना कई एकों को कठिन और कई एकों को सरल है। भारतीय आधुनिक मानव-समाज श्रम सहने में इतना शिथिल होगया है कि सरल की श्रेष्ठता और कठिन की बुराई में उसे सङ्कोच नहीं होता।

आज-कल के अधिकांश आदमी अति तुच्छ बात के लिए फलित-ज्योतिष पर भी लाञ्छन लगा देते हैं। वे इसका विचार नहीं करते कि बलाबल और चेष्टामात्र जानने में भी कितना परिश्रम किया जाता है। ग्रह निर्बल है या षड्बल-सम्पन्न, वह पाश-बद्ध है या सभा-प्रविष्ट—हँसता है या खिन्न-मनस्क—और धूमावेष्टित है या सुवर्ण-संयुक्त—इत्यादि बातें जानने के लिए एक ऐसा गणित किया जाता है जिसमें ज्योतिषियों को श्रम-भ्रम और विलम्ब बहुत होता है।

ज्योतिष के गणित-विभाग की कठिनता प्रकट है किन्तु फलित की प्रच्छन्न कठिनता को बहुत कम जानते हैं। केवल कुंडली देखकर भविष्य फल बतला दिया जाय, यह बात नहीं है। भविष्य वक्ता के लिए जातक का समय, ग्रहों की परिस्थिति, पञ्चाङ्गादि की समीचीनता, गणितागत ग्रहों की शुद्धि, देश, काल और पात्रादि का विचार, शास्त्र-ज्ञान की नवीनता, ऊहापोह की चतुराई, उपासना की सिद्धि, और प्रकृति की अनुकूलता आदि होने से ही कुछ कहा जा सकता है।

इन दिनों पञ्चाङ्गों के गणित में कितनी शिथिलता और भ्रान्ति बढ़ गई है, जातक ग्रन्थों का पठन-पाठन समझना और मिलना कितना कठिन हो गया है, स्वार्थत्याग और परमार्थ साधक तपस्वी ब्राह्मण कितने कम रह गये हैं, पूछनेवालों के कार्य-बाहुल्य, कृपणता और प्रलोभ कितने बढ़ गये हैं और इसी देश के विद्यार्थों के किसी एक अंश को भव्य बनाकर विदेशी विद्वान् यहाँ वालों को अपने घर से कितने विरक्त बना रहे हैं, इन सबका विचार भी बहुत आवश्यक है।

(२)

विशेषज्ञ व्यक्ति इस बात को जानते हैं कि धर्म-कर्म और उपासना आदि में मनुष्यों की धारणा द्विधा विभक्त है। वे एक ओर से उनमें संलग्न और दूसरी ओर से विरक्त होते हैं। विशेषकर अँगरेज़ और अँगरेज़ी पढ़े हुए तथा उनका अनुकरण करनेवाले अग्रगण्य हैं।

जिस प्रकार इस देश के कुछ सम्प्रदायी मूर्ति-पूजा करते हुए भी उसका खण्डन करते हैं, उसी प्रकार कुछ अँगरेज़ भी हिन्दूशास्त्रों को मानते जानते और शिक्षा ग्रहण करते हुए भी उनको बुरे बतलाते हैं। उनका प्रभाव अनुवादकों पर भी पड़ता है और वे भी एतद्देशीय शास्त्रों पर लाञ्छन लगा देते हैं। एक ओर से वे फलित-ज्योतिष की खुले मुँह बुराई कर रहे हैं और दूसरी ओर से वे ही फलित-ज्योतिष की सत्यता प्रकट करने के लिए 'ग्रीनिच' आदि को दौड़े जा रहे हैं और वहाँ जाकर जन्मपत्रियाँ और पञ्चांग बना रहे हैं।

ग्रीनिच में ज्योतिष के गणित और फलित-सम्बन्धी दुर्लभ, बहुमूल्य और उपयोगी अनेक यन्त्र और साधन हैं। वहाँ इँग्लेंड, अमेरिका और जर्मनी आदि के बड़े बड़े विद्वान् गणित और फलित के जटिल सिद्धान्तों को समझने-सुलझाने और समीचीनता जानने को जाया करते हैं। वहाँ से दैनिक, मासिक और वार्षिक ट्रैक्ट पञ्चांग और भविष्य-फल भी प्रकाशित होते हैं और तद्देशीय ग्रामीणों तक की जन्मपत्रियाँ भी बनाई जाती हैं।

प्रत्येक गृहस्थ को ग्रीनिच से परिलेख फ़ार्म और इष्टबोधक घड़ी दी जाती है और फलित-ज्योतिष के प्रति उनका अनुराग बढ़ाया जाता है। भारत के साधारण ज्योतिषी सिर्फ़ बारह लग्नों से फल निकालते हैं किन्तु ग्रीनिच में उनके तीन सौ साठ अंशों तक का फल निकाला जाता है। ऐसी दशा में वही अँगरेज़ फलित-ज्योतिष को बुरा बतलावें, यह उनकी द्विधाविभक्त मनः प्रवृत्ति का द्योतक है। वे उस काम को करते भी हैं और बुरा भी बतलाते हैं। बड़ा अद्भुत तमाशा है।

हिन्दूशास्त्र इतने सरल नहीं जो सहज ही समझ में आ जावें या कोई भी उनका पारङ्गत हो जावे। उदाहरण के लिए आयुर्वेद का निदान-विभाग और ज्योतिष का फलित विभाग द्रष्टव्य है। इनके जानने के साधन और अङ्ग इतने कठिन हैं कि परम्परा से अनुशीलन करते आनेवाले विद्वान् भी अनेक बार अकुला जाते हैं। यही कारण है कि विलायती विद्वान् इन पर लाञ्छन लगाते हैं।

(३)

आकाश में लाखों कोस ऊँचे रहनेवाले ग्रह-नक्षत्र या तारों का पृथ्वी के प्राणी पदार्थ या प्रकृति पर क्यों और किस प्रकार असर पड़ता है? इसके जानने के लिए तत्वज्ञ महर्षियों ने त्रिष्कन्ध ज्योतिष के होरा और संहिता विभागों में बहुत-कुछ लिखा है। कई कारणों से होराशास्त्र के उत्कृष्ट ग्रन्थ और अठारहों संहिताएँ अस्तव्यस्त, नष्टप्राय या विलुप्त हो गई हैं। कुछ मिलती हैं, उनमें मेरठ की भृगु-संहिता जैसी ग्लानि उत्पन्न करती हैं। कुछ व्याप्त आश्रय और कुछ प्रसिद्ध सिद्धान्त शेष हैं जिनसे कहा जा सकता है कि पृथ्वी के प्राणी और पदार्थों का सूर्य और चन्द्रादि के उदय अथवा प्रकाश से पोषण और अपोषण दोनों होते हैं और साथ में प्रकृति की विकृति भी बनती है।

हम देखते हैं कि विविध प्रकार के वृक्ष-वेलि वनौषधियाँ, पौधे, अन्न और घास आदि में कई ऐसे हैं जो (१) लाखों कोस ऊँचे रहनेवाले अकेले 'सूर्य' से ही उगते, खिलते या पुष्ट और पक होते हैं। (२) कई ऐसे हैं जो अकेले 'चन्द्रमा' से ही विकसित, अङ्कुरित या पल्लवित होते हैं। (३) कई ऐसे हैं जो 'सूर्य और चन्द्र' दोनों से उत्पन्न या उन्नत होते हैं। (४) कई ऐसे हैं जो 'सूर्य और शशि' दोनों से ही नष्ट हो जाते हैं। (५) और कई ऐसे हैं जो केवल 'अन्य तारों' के दर्शन से ही प्रकट, प्रफुल्लित और फलदायी

बनते हैं। (६) कुछ ऐसे भी हैं जो इन सबको छिपा-कर 'अभ्राच्छन्न आकाश' होने से ही उत्पन्न होते हैं और (७) कुछ ऐसे भी हैं जो केवल 'घनगर्जन' के श्रवण से, 'बिजली' के प्रकाश से और 'इन्द्रधनुष' के स्पर्श से उत्पन्न होते हैं। प्रतीति के लिए कुछ का दिग्दर्शन करा देना यहाँ आवश्यक है।

(१) 'सहजरणा' और 'सिरस' सूर्य से सुखी और प्रफुल्लित होते हैं। सूर्यातप के शान्त होते ही उनके अवयव मुर्झा जाते हैं। (२) 'सूर्यमुखी' एक फूल होता है। वह प्रातःकाल से सायङ्काल तक सूर्य को देखता हुआ घूमा करता है और रात्रि में अधोमुख हो जाता है। (३) 'कमल' सूर्य से और (४) 'कुमो-दिनी' चन्द्र से खिलते हैं, यह प्रसिद्ध है। (५) 'सौरभ संयुक्त सभी कुसुम और कोमल कलिकाओं के सभी वृन्त' चन्द्रमा से प्रफुल्लित होते हैं। (६) 'अनन्त मूल', जिसके पेंदे में अगणित जड़ें होती हैं, केवल तारा-गणों के प्रकाश से बढ़ता है। (७) 'खर्बूज़ा, ककड़ी, तरोई और कूष्मांड आदि की बेलें' अँधेरी रात में कई अङ्गुल बढ़ती हैं। (८) 'मिर्चाई कन्द' जैसे अलभ्य पौधे ऐसे भी हैं जो सूर्य-चन्द्र और तारागण किसी से राज़ी नहीं। वे बन्द कोठरी के गहरे अँधेरे में अधर लटका देने से खूब बढ़ते और फलते हैं। (९) 'बुढली', 'छत्रक' और 'भूफोट' केवल घनगर्जन से प्रकट होते हैं। (१०) 'विषकण्टक' इन्द्रधनुष के स्पर्श से बन जाता है। कूँचे, खैरी और खेजड़े के काँटों से इन्द्रधनुष का स्पर्श होते ही वे विषकण्टक बन जाते हैं। और (११) 'कुमारी कन्द' तथा 'राम-बाँस' जैसे कुछ पौधे ऐसे धृष्ट और निष्ठुर भी होते हैं जो धूप, छाँह, अँधेरा, सर्दी, गर्मी या वर्षा अथवा सूर्य, चन्द्र और तारागण इनकी कोई परवा नहीं करते। उनको छाया में, वर्षा में या कड़ी धूप में, अँधेरे, उँजियाले कहीं पटक दीजिए बड़े प्रसन्न और स्वस्थ रहते हैं और स्वतः बढ़ते हैं। यही बात पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादि में भी होती है।

(४)

कई पक्षी दिन में ही उत्पन्न होते हैं। कई एकों का रात्रि में प्रसव होता है। कई शुक्लपक्ष में प्रसन्न होते हैं। और कई कृष्णपक्ष में पोख पाते हैं। (१) 'बागल', 'उलूक' और 'चमगादड़' सूर्य को एक आँख से भी नहीं देखते। उनके लिए अँधेरी रात ही पथभ्रष्ट को बचानेवाली है। (२) 'चक्रवाक' को चन्द्रमा से बड़ा सुख मिलता है। (३) 'मेंढक', 'मयूर' और 'वीरबहूटी' घनगर्जन और वर्षा से सजीव और प्रहृष्ट होते हैं। (४) 'चातक' स्वातिबिन्दु को चाट कर ही सन्तुष्ट होता है। (५) 'गधा' और 'गोधा' सूर्य की कड़ी धूप से उत्तेजित होते हैं। (६) 'ऊँट', 'महिष' और 'हाथियों' को पौष का चन्द्रमा उन्मत्त बनानेवाला होता है। (७) 'बिल्लियों' के लिए गहरा अँधेरा अनुकूल है और (८) 'कुत्ते' सूर्य, चन्द्र तथा तारागण किसी से नाराज नहीं। इनके अतिरिक्त वन्य तथा ग्राम्य और भी अनेकों पशु-पक्षी ऐसे हैं जिन पर सूर्यादिकों का असर पड़ता है।

मनुष्यों पर वह प्रभाव दो प्रकार से पड़ता है। एक तो अन्य पदार्थों की तरह सीधा उन पर आता है और दूसरे जितने प्रकार के प्राणी-पदार्थ, अन्न, औषध, जल, दूध और फल, पुष्प आदि ये खाते-पीते, पहनते या किसी भी प्रकार से उपयोग में लाते हैं उनके द्वारा आता है। अतः अन्य पदार्थों की अपेक्षा इन पर अधिक पड़ता है। सीधा आने में देश-भेद से, मनुष्यों को आकृति-प्रकृति और सङ्घटन आदि में जितने प्रकार की भिन्नता या भेद पाया जाता है वह सूर्यादिकों के प्रभाव का ही फल है। काले-गोरे, ठिगने, निमूँछे, सुन्दर, विकृताङ्ग और सम-विषम या न्यूनाधिक अङ्ग उपाङ्गोंवाले मनुष्य उसी प्रभाव से बनते हैं।

(१) स्वास्थ्य, भाग्य और प्रवीणता के लिए अरु-णोदय और तत्कालीन उपासना में सूर्य का प्रभाव पड़ता है। (२) गर्भ के अर्भक को विकृताङ्ग बनाने में सूर्यग्रहण का देखना प्रधान होता है। (३) पित्त के

उपद्रव शान्त करने में शशि की शीतलता काम देती है। (४) शरत्पूर्णिमा के निशीथ में चन्द्र-किरणों के प्रपात से मनुष्यों के हित की गम्भीर ओषधियाँ तैयार की जाती हैं। (५) भौम के विधिवद्दर्शन से गलित कुष्ट, गुह्यगुल्म और दृष्टि-दोष पर प्रभाव पड़ता है। (६) बुध से शैशवावस्था के बौद्धिक तत्त्व (७) गुरु से मेधा या विशेषज्ञता और (८) शुक्र से रजवीर्य का विकाश हो सकता है। और (९) शनि से शूलादि का उपशमन तथा (१०) धूम्रकेतु से अनेकों उपद्रव उत्पन्न होते हैं। (११) सप्तर्षि मण्डल से निकले हुए जलकण मनुष्यों के अनेकों कष्ट और व्याधियाँ दूर करते हैं और मृगशिरा आदि से अनेक प्रकार के मनस्ताप दूर होते हैं। यह सूर्यादिकों के स्वतन्त्र प्रभाव का किञ्चिन्मात्र दिग्दर्शन है।

जिस वस्तु या पदार्थ पर जिस ग्रह या तारा का जिस समय जिस प्रकार असर पड़ता है इसकी साङ्केतिक सूचना ऊपर दी गई है। उसके अनुसार जिन वस्तु-पदार्थों के सेवन से मनुष्यों में हर्ष, शोक, मोह, मूर्छा, धी, धारणा, मेधा, भ्रान्ति, स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य, शक्ति, अशक्ति या रज और वीर्य आदि का स्वतः सञ्चार होता है वह उन वस्तु-पदार्थों या औषध आदि में प्रविष्ट होकर आया हुआ सूर्य-चन्द्र या तारागणों का ही प्रभाव है। मनुष्य में यह स्वतःप्राप्त विशेषता है कि उसमें एक एक शक्ति के आ जाने से मेधा, महत्त्व, बल-व्यवसाय, सन्तति, सौभाग्य और शौर्यवीर्य, धैर्य आदि अनेकों शक्तियाँ स्वतःप्रवृत्त या उदय हो जाती हैं। अथवा दूषित और प्रतिकूल पदार्थों के सेवन से सब शक्तियाँ भय, भ्रान्ति और निर्बलता आदि में परिणत होकर दुःख, दुर्भाग्य या दुष्टता आदि को बढ़ा देती हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर देखा जाय तो उत्कृष्ट श्रेणी के अज्ञेय विज्ञान की क्रियाविशेष से रूपान्तर होकर सूर्य-चन्द्र और तारागणों, का वहां प्रभाव ये सब काम करता है। सन्देह सिर्फ़ इस बात का किया जाता है कि उस अज्ञेय विज्ञान का कुण्डलीगत ग्रहों से किस प्रकार ज्ञान हो जाता है। इसके लिए शास्त्रों का अनुशीलन, शास्त्रज्ञ सत्पुरुषों का अति-सेवन और समय की प्रतीक्षा आवश्यक है। साथ ही सुतीक्ष्ण बुद्धि भी।

(५)

विज्ञान के बहुत से विधान अज्ञेय या अलक्ष्य होते हैं। विशेषज्ञ विद्वानों या तत्वज्ञ ऋषियों के निश्चित किये हुए नियमों के अनुसार तैयार किये हुए कार्य का फल ही उस वैज्ञानिक क्रिया का प्रभाव हो सकता है। (१) सद्वैद्य के सम्पादकत्व में अठारह प्रकार के संस्कारों से सिद्ध किया हुआ 'पारा' मुर्दे को सजीव, पंगु को गगनगामी और ताँबे को सोना किस प्रकार बना देता है? (२) यथोक्त विधि से तैयार की हुई 'सुवर्ण भस्म' (सोने की राख) अन्य ओषधियों के मिश्रण या प्रयोग से सोना किस प्रकार बन जाती है? (३) किसी विशेष विधि से सिद्ध की हुई 'हीरे की भस्म' क्षीणकाय और वीर्यहीन व्यक्तियों को सबल, मेधावी और प्रतिभावान् किस प्रकार कर देती है? (४) वही 'हीरा' चूँसने-मात्र के दुरुपयोग से विष बनकर मनुष्यों को मार किस प्रकार देता है? (५) 'बीज' 'गर्भ' या 'अंडे' आदि तरु, मनुष्य, या पक्षी आदि के रूप में परिणत किस प्रकार होते हैं? और (६) शीशा तथा ताँबे की पट्टियों को गन्धक के तेज़ाब में डालकर उत्पन्न की हुई या अति-सङ्घर्षण की क्रिया से सङ्ग्रह की हुई 'बिजली' के संयोजन-मात्र से आधुनिक जनता को आश्चर्य में डालनेवाले अनेकों कार्य किस प्रकार होते हैं? यदि इनको प्रकृति की विकृति बतलाई जाय तो वह भी सूर्यादि के प्रभाव से ही बनती है।

अतः जिस प्रकार उपरोक्त बातें किसी अलक्ष्य या अज्ञात क्रिया से सम्पन्न होती हैं उसी प्रकार जिस समय जो प्राणी जिस स्थान में, जिस भाँति उत्पन्न होता है उस समय आकाश में जो ग्रह जिस राशि, नक्षत्र या अवस्था आदि में जिस प्रकार के बलाबल आदि से जिस भाँति स्थित

होता है उसी प्रकार वह प्रत्येक प्राणी, पदार्थ या मनुष्यों पर असर करता है। उसके जानने के लिए तत्कालीन लग्न में उसे स्थापित करके तदनुकूल भविष्य फल निश्चित कर दिया जाता है। रही यह बात कि १, १ लग्न में अनेक प्राणी उत्पन्न होकर भिन्न भिन्न भाग्य, धर्म या अवस्था के क्यों होते हैं? इसके लिए प्रत्येक लग्न के ३०-३० अंश और प्रत्येक अंश के अलग अलग फल निर्दिष्ट किये हैं, जिनसे पृथक् पृथक् प्रकृति के प्राणियों या मनुष्यों का अलग अलग फल मालूम हो जाता है।

हम लोगों को इस बात का परम आश्चर्य मानना चाहिए कि 'ग्रीनिच' आदि की विलायती वेधशालाओं में भव्य, विलक्षण और बहुमूल्य साधनों से जो काम किये जाते हैं और 'जयपुर', 'काशी', 'उज्जैन' तथा 'दिल्ली' की भारतीय वेधशालाओं से आकाश के ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का जो कुछ यथार्थ अनुसन्धान किया जाता है वह सब प्राचीन काल में बाँस, सर और तृणादि के द्वारा ऋषि-प्रणीत साधनों से सम्पन्न होते थे और आज-कल की अपेक्षा से अधिक शुद्ध और विशेष उपयोगी समझे गये थे।

हमारे लिए यह गौरव और महत्त्व की बात है कि गर्ग, गौतम, भारद्वाज, कश्यप, वसिष्ठ, शुक्राचार्य और लोमस, पुलस्त्य, बृहस्पति आदि त्रिकालदर्शी और तत्त्वज्ञ महर्षियों ने संसार के उपकार के लिए होराशास्त्र और अठारह संहिताएँ निर्माण करके जातक, ताजक, प्राण और संवत्सर में उपलब्ध होनेवाले सुख-दुख-हानि-लाभ, शुभ-अशुभ, समर्घ, महर्घ, सन्तति-सौभाग्य और स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य आदि की प्रायः सम्पूर्ण बातों का भविष्य फल; केवल कुंडलीगत ग्रहों से या पञ्चाङ्ग की परिस्थिति से बहुत पहले मालूम हो जाने का अद्भुत, अद्वितीय और सुगम साधन तैयार कर गये हैं। अतः हमको उनके चिर-कृतज्ञ और ऋणी मानने में सङ्कुचित नहीं होना चाहिए।

इन दिनों विज्ञापन-बाज़ व्यक्तियों के आडम्बर से बहुत लोगों का वैद्यक और फलित ज्योतिष पर विश्वास घट गया है। नहीं तो ये दोनों विद्याएँ संसार के हित-साधन में अतःपर और तत्काल फल देनेवाली हैं। जातक, ताजक, प्राण और संवत्सर-सम्बन्धी फल कहने में आकाशस्थ ग्रहों को पञ्चाङ्ग में देखकर तत्कालीन लग्न-कुण्डली से उनकी जाति, अवस्था और आकृति आदि के अनुसार मनुष्यों के सभी व्यवहारों, व्यवसायों और प्रयोजनों का सम्पूर्ण फल प्रकट किया जा सकता है और उससे अनेकों काम बड़े ही अद्भुत, अलौकिक, अज्ञात और आश्चर्य-जनक रूप में सिद्ध होते हैं। किन्तु जितना फल निकाला जाता है, उतने ही साधनों से उसे उपलब्ध किया जाता है।

प्राचीन काल में इस विद्या की वृद्धि के लिए राजा, महाराजा और धनी लोग विविध उपायों से धन ख़र्च करते थे, वेधशाला बनवाते थे, विद्वानों को आश्रय देते थे, भविष्य-फल को ध्यान देकर सुनते और उसका अनुभव करते थे और जन्मपत्र, वर्ष-पत्र तथा पञ्चाङ्ग आदि बनवाते थे। आज से दो सौ वर्ष पहले तक के जन्म-पत्र, वर्ष-पत्र और पञ्चाङ्गों के देखने से प्रतीत होता है कि उन दिनों इनके बनवानेवाले इस विषय के कितने अनुरागी, कितने उदार और कितने श्रद्धालु थे। साथ ही बनानेवाले विद्वान् भी इस विषय के कितने भारी ज्ञाता, कितने प्रवीण और कितने परिश्रमी थे, जिन्होंने अपने समय की कई एक आदर्श, अद्वितीय और आज तक के लिए परम उपयोगी उत्कृष्ट वस्तुएँ तैयार की थीं। ऐसी दशा में कैसे कहा जा सकता है कि 'फलित-ज्योतिष निर्मूल है'। वास्तव में यह समूल और अकाट्य सिद्धान्तों पर आरूढ़ है और सिद्धि, साधक तथा साधनों की सानुकूलता में सब प्रकार का भूत, भविष्य और वर्त्तमान का सच्चा फल भलीभाँति बतला सकता है।

—हनूमान शर्मा,

मातृ-मण्डल

क्या बच्चों के लिए माता की आज्ञा मानना आवश्यक है ?

नारी-जीवन का उद्देश क्या है ? मानव-जाति को क़ायम रखना और उसके क्रम-विकास में सहायक होना। सृष्टि के आदि से ही स्त्री को मातृत्व का उच्च पद इसी लिए प्राप्त है। उसकी शारीरिक और मानसिक शक्ति पर ही मानव-जाति की उन्नति निर्भर है। इस सत्य के प्रकाश को सब युग के दार्शनिकों ने एक दृष्टि से देखा है। यदि उनमें कभी मतभेद हुआ है तो वह केवल इस बात पर कि इस दिशा की ओर स्त्री अपने कर्तव्य का पालन कैसे करे। और यह तो तय है कि परिस्थितियाँ सदैव समान नहीं रहतीं। उनका प्रभाव उद्देशों पर न सही, उनकी पूर्ति के साधनों पर पड़ता है। इसलिए विभिन्न देशों और विभिन्न कालों के नारी-जीवन में यदि कोई अन्तर दिखाई पड़ता है तो उसे केवल मार्गों का अन्तर समझना चाहिए।

आधुनिक युग में नारी-जीवन को एक विशेष दिशा को ओर प्रवाहित होते हुए देखकर बहुत से लोग आश्चर्य करते हैं। वे समझते हैं कि समय

[मिसेज़ एल० जे० फ़िंच]
(आपने सारनाथ में बौद्ध-सम्मेलन के अवसर पर एक निबन्ध पढ़ा था।)

की गति ने स्त्रियों को उनके कर्तव्य से विमुख कर दिया है। पर हम कहेंगे कि वे ऊपर की चकाचौंध से ही घबरा उठते हैं और बात की गहराई तक नहीं पहुँचते। यदि वे ज़रा साहस करके इस युग की चकाचौंध के बीच से निकलें और उसके पार जाकर उस स्थान पर पहुँचें जहाँ मातृत्व की महानदी बहती है तो उसमें उन्हें स्नेह की वही गम्भीरता मिलेगी जिसके लिए वे वर्तमान को उपयुक्त नहीं समझते।
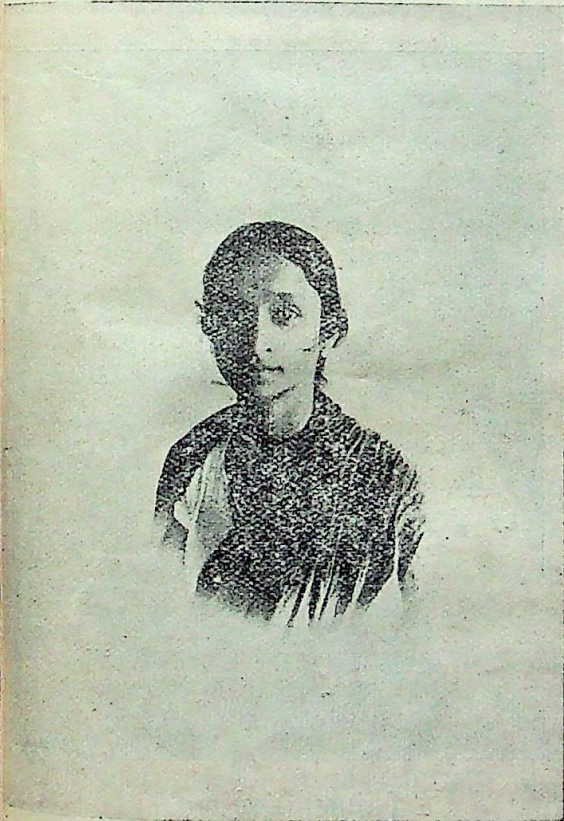
[श्रीमती कुसुमवती बाई देशपाण्डे बी० ए०]
(आप मोरिस कालेज नागपुर में इँगलिश की प्रोफ़ेसर नियुक्त हुई हैं। मध्यप्रान्त में इस पद पर आप पहली महिला हैं।)

पर यदि समय की गति को कोई न समझे तो इसमें उसका दोष क्या? उसको समझाने के लिए वह रुक थोड़े ही सकता है।

स्त्रियों के सामने यह प्रश्न शुरू से ही चला आ रहा है कि वे अपनी सन्तान का लालन-पालन कैसे करें और उसे उपयुक्त मानवीय आभूषणों से कैसे आभूषित करें? समय-समय पर विद्वानों ने इस
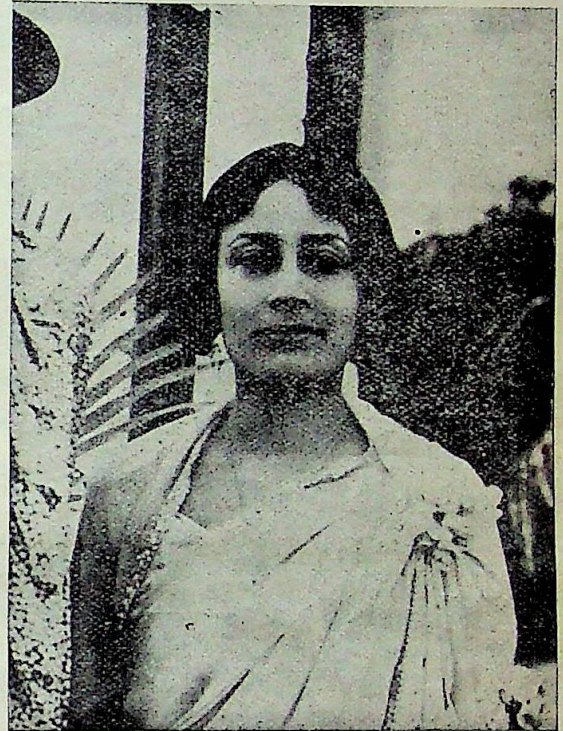
[मण्डी की महारानी श्रीमती ललितकुमारी देवी]
(आप हाल ही में हुए कानपुर में महिला शिक्षा-सम्मेलन की सभानेत्री थीं।)

प्रश्न को हल किया है। पर यह प्रश्न कभी पुराना नहीं पड़ा। स्मृतिकारों, विद्वानों और राह चलते व्यक्तियों तक को इसे अपने ढङ्ग से सोचने के लिए विवश होना पड़ा है। भावी संतति किस प्रकार शिक्षित की जाय, इस मामले को लेकर धर्माचार्यों और राज्यों तक ने व्यक्तियों को परेशान किया है। और अब तो यहाँ तक नौबत आ पहुँची है कि यह प्रश्न राष्ट्र का प्रश्न बना जा रहा है। कौन जाने कि वह दिन भी देखने को मिल जाय जब व्यक्तियों

को अपनी सन्तति के लालन-पालन के सम्बन्ध में ज़बान खोलने तक का अधिकार न रहे।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि व्यक्तियों का सन्तति पर कोई प्रभाव ही न पड़ेगा। सच तो

[श्रीमती जी० बी० मेहता]

(हाल ही में आपके सभानेतृत्व में अखिल भारत-वर्षीय जैन-महिला-सम्मेलन हुआ था।)

यह है कि धार्मिक या राजनैतिक बन्धन मातृस्नेह को बाँधने में कभी समर्थ नहीं हुए। लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत् की व्यवस्था होते हुए भी हिन्दू माताओं ने अपने बच्चों को कभी मारा-पीटा नहीं। स्मृतिकार मातृ-हृदय को नहीं बदल सके, पर शिशु की मानसिक प्रवृत्ति बदलने में उन्हें अवश्य सफलता मिली है। बच्चों को आँख मूँद कर माता-पिता की आज्ञा मानना चाहिए, यह भाव स्मृतिकारों ने ही तो मानव-सन्तति में भरा है। हम यह मानते हैं कि इस भाव में शिशु की भावी उन्नति का लक्ष्य है। बच्चा अपने आप नहीं सोच सकता है जब तक वह समर्थ न हो जाय; मा-बाप उसके लिए सोचें। अब तक नव सन्तति का पालन-पोषण इसी नियम के अनुसार होता रहा है। परन्तु वर्तमान युग की आवश्यकताओं ने अधिकांश विद्वानों के मस्तिष्क में यह विचार उत्पन्न कर दिया है कि यह नियम शिशु के विकास में बाधक होता है। इससे उसमें अपनी

[श्रीमती विंफर्ड वास]

(आपको मदरास सरकार ने कदूर ज़िला बोर्ड की सदस्या नामज़द किया है। उस पद पर आप पहली महिला हैं।)

शक्तियों को जानने और उनके अनुसार चलने का ज्ञान नहीं उत्पन्न हो पाता। इतने बड़े मानव-समाज के सदियों से प्राचीन रूढ़ियों के गुलाम बने रहने का यही कारण है। शिशु के मनोभावों

का अध्ययन करके उनकी शिक्षा आदि की व्यवस्था करनेवाले विद्वानों का कथन है कि यदि मा-बाप अपने बच्चों को आज्ञा न देकर केवल सलाह दिया करें तो वे बड़े होने पर और भी अच्छे नागरिक बन सकते हैं। योरप, अमरीका और रूस आदि देशों में इस प्रकार के प्रयोग भी प्रारम्भ हो गये हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में अमरीका का एक ख़ास स्थान है। वहाँ की माताओं ने छोटे बच्चों के साथ बराबर के मित्र का-सा बर्ताव प्रारम्भ कर दिया है। वे हर बात में बच्चों को सलाह देती हैं। पर यदि बच्चे उनकी सलाह मानने से इनकार करते हैं तो वे उन्हें अपने इच्छानुसार कार्य्य करने की आज्ञा नहीं देतीं। अमरीकन मातायें अपने बच्चों के प्रति कैसा व्यवहार करती हैं उसका कुछ आभास आगे की बातों से लग जायगा।

यदि बालक को कड़वी ओषधि देनी होती है तो कहा जाता है—ओषधि और तुममें देखें किसकी जीत होती है? तुम इस दवा को जीत कर पी सकते हो या दवा तुमसे जीत जायेगी और तुम इससे पराजित होकर भाग जाओगे। यदि बालक अधिक मिठाई माँगता है तो कहा जाता है—"तुमको आज मिठाई बहुत मिल चुकी है। यदि और चाहते हो तो और भी मिल सकती है। पर यदि अधिक खाओगे तो तुम्हें रोगग्रस्त होना पड़ेगा। आज खाकर कल पछताना ही हो तो भले ही ले लो।" बच्चों की प्रत्येक विषय में सम्मति भी ली जाती है, जिसमें उनकी विचारशक्ति बड़ी ही तीव्र हो जाती है। स्वावलम्बी बनने और धनोपार्जन करने के लिए वे विशेष रूप से उत्साहित किये जाते हैं।

यही नहीं, वहाँ की मातायें अपनी संतान-शिक्षा के लिए ये सात बातें सदा ध्यान में रखती हैं—(१) बालक किसी समय धमकाये न जायँ। सब विषयों में आत्म-विकास के लिए अवसर दिया जाय। बच्चे स्वतन्त्रता-पूर्वक खेलते रहें। (२) बच्चे को कष्ट में अत्यन्त हताश न होने देने और गिर पड़ने से चोट लग जाने पर भी हँसते रहने की शिक्षा दें। (३) वहाँ की मातायें अपनी सन्तान के खेल-कूद तथा अध्ययन दोनों में संगिनी बनती हैं, न कि शासिका। (४) बालकों को देश-भक्त होने, सत्य बोलने, आत्म-सम्मान रखने, साहसी बनने, दूसरों के अधिकारों का मान करने और धन का सद्व्यय करने की शिक्षा दी जाती है। (५) घर के बाहर संसार की बात जानना, प्रकृति के सौंदर्य का ज्ञान, पशु-पक्षी तथा वनस्पति-शास्त्र आदि से बालकों को परिचित करना। (६) ऐतिहासिक गाथाओं का पाठ, इतिहास और साहित्य का ज्ञान बच्चों को अवश्य कराना। (७) शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए तैरना, घोड़े पर चढ़ना, शस्त्र-संचालन, मल्लयुद्ध, गेंद खेलना आदि बच्चों को अनिवार्य रूप से सिखाना। (८) काम के समय काम करना, छुट्टी के समय ख़ूब जी भर के खेलना, धूम मचाना, कूदना आदि क्रियायें कराना। (९) नियम-उल्लङ्घन के दण्ड को सहर्ष स्वीकार करने का आदी बनाना तथा उच्छृङ्खल और उद्दण्ड न होने देना। (१०) न्याय-परायणता और मातृ-पितृ-प्रेम सिखाना।

अमरीकन मातायें ऐसे ऐसे सिद्धान्तों को सावधानी से कार्य में परिणत करती रहती हैं। परिणामस्वरूप अमेरिका के बालक घर ही पर स्कूलों से कहीं अधिक उपयोगी शिक्षायें ग्रहण कर लेते हैं। बड़े होकर अपनी माता के चातुर्य से संसार में कीर्ति पाते हैं। इन्हीं गुणों से उनकी शोभा होती है न कि गहनों से। अमेरिका की विदुषी माताओं ने बहुत प्रयत्न करके ऐसे कई खेल निकाले हैं जिनसे बालक खेल ही खेल में कई विद्यायें सीख जाते हैं। अच्छा हो यदि हमारी भारतीय बहनें भी अपने घरों में कुछ इस प्रकार के प्रयोग आरम्भ करें।

—जयदेवी
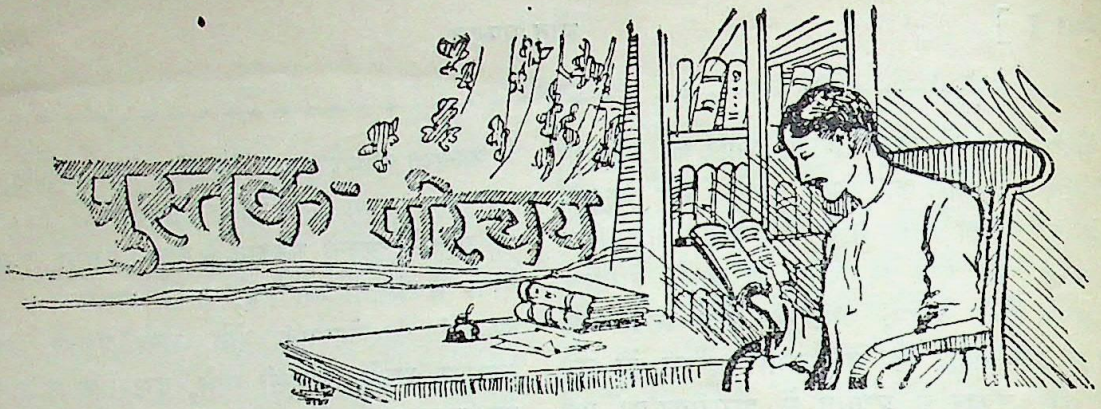
१—**सत्याग्रह-गीता**—लेखक, श्री वल्लभदास भगवानजी गणात्रा; प्रकाशिका, श्रीमती रमीबेन मोरारजी कामदार; कागज़ और छपाई बढ़िया; पृष्ठ-संख्या ७७ और मूल्य पांच आने। मूल संस्कृत और टीका गुजराती।

इसमें अठारह अध्यायों में, ब्रिटान्या और रूटर के संवाद-रूप में, पिछले सत्याग्रह-युद्ध का मनोरञ्जक वर्णन है। भगवद्गीता की नकल पर यह है और शुरू में उसी प्रकार 'ध्यान' भी दिया है। नमूना लीजिए:—

राजद्रोह-तट, सुवस्त्र-सलिला पोलीस-नीलोत्पला,
दण्डग्राहवती, चरेण वहनी, सार्जण्ट-वेलाकुला।
अर्वीनाद्यधिकारि-घोरमकरा, तोपाननावर्तिनी,
सोत्तीर्णा खलु भारतैर्भय-नदी कैवर्तको मोहनः॥

बम्बई-प्रान्त में पुलिस की नीली वर्दी होती है; इसलिए 'पोलीस-नीलोत्पला' कहा है। 'चरेण' जाति में एक वचन है, अन्यथा 'चरैश्च' चाहिए।

'ध्यान' के बाद 'गीता-माहात्म्य' भी है, जिसमें भारत-माता प्रश्न करती है कि स्वराज्य कैसे मिलेगा और महात्माजी उत्तर देते हैं:—

सत्याग्रह-पराः सर्वे भवेयुर्यदि ते सुताः।
विदेशि-वस्त्र-मोहं च त्यजेयुर्मम शासनात्॥
नश्येत्तेषां महादुःखं द्रुतं बन्धनसम्भवम्।
पृथ्वीमण्डल-देशेषु वर्द्धेत च यशः सितम्॥
अहिंसाबलमाश्रित्य युध्यन्ते मानवास्तु ये।
तेषां जयो भवेदत्र न जायेत पराभवः॥

'माहात्म्य' के बाद गीता शुरू होती है:—"ब्रिटान्योवाच—

एप्रिलस्य दिने षष्ठे धर्म-युद्धं चिकीर्षवः।
सैनिका गान्धि-सैन्यस्य किमकुर्वत रूटर!

रूटर उवाच

कौटिल्य-रहिता वीराः शान्तिशस्त्र-समन्विताः।
गान्धिसेनाविशिष्टा ये संज्ञार्थं तान् ब्रवीम्यहम्॥

बस, इसी प्रकार आगे अठारह अध्यायों में यह गीता है। सुन्दर है।

२—**श्री रामानुजीय-मत-खंडनम्**—लेखक का नाम छपा नहीं है; प्रकाशक, 'ब्रह्मर्षि' हरेराम सुज्ञाराम पण्डित, अहमदाबाद; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ६८; छपाई और कागज़ साधारण; मूल्य चार आने।

अब से सैकड़ों या हज़ारों साल पहले एक बार खूब ज़ोर से भारत में वैष्णव-धर्म का प्रचार हुआ था, यह बात सुप्रसिद्ध है और भारतेन्दु बाबू श्री हरिश्चन्द्र ने अपने 'वैष्णवता और भारतवर्ष' नामक निबन्ध में तो यहाँ तक लिखा है कि भारत का प्रकृत धर्म वैष्णव-धर्म ही है। वैष्णवों के चार मुख्य सम्प्रदाय हैं—१—निम्बार्क-सम्प्रदाय, २—रामानुज-सम्प्रदाय, ३—मध्व-सम्प्रदाय और ४—वल्लभ-सम्प्रदाय। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भक्तराज सूरदासजी वल्लभ-सम्प्रदाय में ही हुए हैं। इसी प्रकार श्री रामानन्द आदि रामानुज-सम्प्रदाय में हुए हैं। जिस सम्प्रदाय के शुरू में जिनका नाम है, उसके प्रवर्तक वे ही आचार्य हैं।

जिन उद्देशों की पूर्ति के लिए वैष्णव-धर्म का उदय हुआ था, उनमें से कुछ ये हैं—१—ज्ञान और कर्म

से युक्त भागवद्भक्ति का प्रचार, २—जन्मना उत्कर्ष-अपकर्ष को दूर करना, ३—धर्म में मनुष्य-मात्र को समान अधिकार देना, ४—अछूतोद्धार और ५—शुद्धि। ध्यान रखना चाहिए कि वैष्णव-धर्म का ही दूसरा नाम 'भागवत-धर्म' है, जिसका ज़िक्र कई शिला-लेखों में आया है। अपने समय में वैष्णव-धर्म अपने उद्देशों की पूर्ति में सफल हुआ था; यद्यपि अब उसके ये उद्देश केवल उसके ग्रन्थों में ही हैं।

वैष्णव-धर्म ने अछूत कहलानेवाले दलित भाइयों का यहाँ तक अभ्युत्थान किया था कि उन्हें न केवल धर्म और समाज में समान अधिकार ही दिये; बल्कि समस्त सम्प्रदाय के प्रधानाचार्य्य के पद पर उन्हें अभिषिक्त किया। रामानुज-सम्प्रदाय में कई आचार्य 'अछूत' कहलानेवाली जातियों के हुए हैं।

प्रकृत समालोच्य पुस्तक में रामानुज-सम्प्रदाय का खण्डन इसी बात को लेकर किया है कि इस सम्प्रदाय या वैष्णव-धर्म-मात्र में अछूत-सछूत का कोई विचार नहीं, आचार्य्य तक अछूत हो गये हैं! इसलिए यह सम्प्रदाय अवैदिक है, नीच है, पतित है। जिनको अच्छी लगे, 'ब्रह्मर्षि' जी महाराज से मँगालें, चार आने भेंट कर। मूल संस्कृत और टीका हिन्दी में है।

३—पाखण्ड-धर्म-खण्डन नाटक—लेखक, श्रीदामोदर संन्यासी और प्रकाशक, पूर्वोक्त 'ब्रह्मर्षि' जी; मूल संस्कृत और टीका गुजराती; आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ७१; छपाई और काग़ज़ साधारण; मूल्य चार आने।

नाटक तो सिर्फ़ इसका नाम ही है और कुछ नहीं। नाटक के 'नान्दी' आदि शब्दों का प्रयोग है और बस। कहीं कहीं प्राकृत का भी प्रयोग हुआ है, जिससे लेखक प्राकृत-कुशल भी जान पड़ते हैं; पर संस्कृत कहीं कहीं अशुद्ध है।

इस पुस्तक में बौद्ध, जैन, और वैष्णव-धर्म के आचार्यों को खुली गालियाँ दी गई हैं। उन्हें नीच, दुराचारी, व्यभिचारी और न जाने क्या क्या कहा गया है! कई जगह तो स्त्रीन्द्रिय का खुले शब्दों में नाम आया है और पुमिन्द्रिय से उसके संयोग का भी संन्यासीजी ने बार बार कीर्तन किया है। ख़ास तौर पर वैष्णवों के वल्लभसम्प्रदाय को संन्यासीजी ने अपना लक्ष्य बनाना है। नमूने के तौर पर एक एक पद्य तीनों धर्मों के 'खण्डन' का लीजिए।

जैनाचार्य के मुख से कहलाया गया है—

मन्तो न यन्तो नहि किं पिसाणो,
जाणन्ति नोमं गुरु अप्पशायो।
मद्यं पिआमो महिलं भजामो,
मोपं वजामः गुअमग्ग अग्गः॥

अर्थात्

मंत्रं न यंत्रं नहि किञ्च जाने,
जानेऽहमेकं च गुरोः प्रसादम्।
भजे नवोढां, मदिरां पिवामि,
मोक्षं गमिष्यामि गुरोः प्रसादात्॥

टीका करना व्यर्थ है। बौद्धाचार्य के मुख से कहलाया गया है—

आवासो निलयं मनोहरमभिप्रायानुकूला वणिङ्,
नार्यो, वाञ्छितकालमिष्टमशनं शय्या मृदुप्रस्तराः।
श्रद्धापूर्वमुपासते युवतयः क्लृप्ताङ्गरागोत्सवैः,
क्रीडानन्दभरैर्व्रजन्ति यमिनां ज्योत्स्नोत्सवा रात्रयः।

और भी—

"तस्माद् भिक्षुषु दारानाक्रमत्सु नेर्ष्यितव्यम्। चित्तमलं हि यदीर्ष्या!"

'वैष्णवीं चुम्बमानः' (!) वैष्णवाचार्य के द्वारा कहलाया है:—

आलिङ्गनं भुजनिबन्धनमायताक्ष्याः,
स्वच्छन्दपानमशनं न परस्वभेदः।
स्वात्मार्पणं युवतिभिर्गुरुषु प्रयुक्तम्,
धन्यं च वैष्णवमतं भुवि मुक्ति-हेतुः॥

उदाहरण पर्याप्त हैं। हम कह चुके हैं कि इस पुस्तक की संस्कृत कहीं कहीं अशुद्ध है।

दोनों पुस्तकों के पढ़ने से प्रकाशक 'ब्रह्मर्षि' जी की ब्रह्मपितामय मनोवृत्ति का पता चलता है और इस 'नाटक' की सैर से तो इसके लेखक और प्रकाशक 'ब्रह्मर्षि'

जी और 'संन्यासी' जी का चरित्र-चित्र आँखों में घूम जाता है।

इन दोनों पुस्तकों को देखकर मन में आया कि ऐसी पुस्तकों को प्रकाशित करने के लिए जहाँ 'धर्मात्मा' सेठ रुपयों की थैली खोल देते हों, उस देश के सुधार में अभी देर है।

४—आराधना-शतकम्—लेखक, श्री प्रीतमलाल नृसिंहलाल कच्छी, बी० ए०, हेडमास्टर, श्री देवी अहिल्याबाई हाईस्कूल, खरगौन (इन्दौर); प्रकाशक भी आप ही हैं। छोटे आकार के १६ पृष्ठों का मूल्य चार आने बहुत ज़्यादा हैं, हद से परे!

संस्कृत में १०१ फुटकर विभिन्न छन्दों में भगवान् की स्तुति है। कच्छी जी का संस्कृत-प्रेम, और भगवद्-भक्ति प्रशंसनीय है। कहीं कहीं कवित्व भी है। संस्कृत शुद्ध है।

५—श्रीसौम्यकाशीश-स्तोत्रम्—लेखक, श्रीस्वामी तपोवनम् जी; प्रकाशक श्री वल्लभराम विश्वनाथ पण्डित, पडधरी, काठियावाड़, आकार छोटा और पृष्ठ-संख्या ८६, काग़ज़ और छपाई बढ़िया होने पर भी मूल्य दस आने बहुत ज़्यादा है।

पुस्तक में स्वामीजी ने भिन्न-भिन्न संस्कृत छन्दों में, संस्कृत में ही, भगवान् भूतभावन विश्वनाथ की स्तुति की है, जिसमें अद्वैत वेदान्त का तत्त्व भरने की चेष्टा की है। अनेक स्थानों पर तो उपनिषदों का ज्यों का त्यों रूपान्तर-सा जान पड़ता है। शिव-भक्तों के काम की चीज़ है।

६—श्रीहनुमद्दूतम्—लेखक, श्रीनित्यानन्दजी शास्त्री और प्रकाशक खेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई; छोटे आकार के पृष्ठ ६०; काग़ज़ और छपाई इस प्रेस की सब जानते ही हैं। मूल्य लिखा नहीं है।

प्रकृत पुस्तक संस्कृत में है, नीचे हिन्दी अनुवाद है और अन्त में विषम-स्थलों पर लेखक के भाई श्रीभगवती-लालजी विद्याभूषण-कृत टिप्पणी भी है।

कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर संस्कृत में कुछ लोगों ने काव्य बनाये हैं और बहुतों ने उसके प्रत्येक चरण का चतुर्थ चरण समस्या की तरह लेकर समस्या-पूर्ति की तरह काव्य रचे हैं; पर—

लिखन बैठ जाकी सबिहिं गहि गहि गरब गरूर
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर!'

फिर भी, आज-कल यदि इतना भी हो जाय, तो क्या कम है?

प्रस्तुत पुस्तक भी उसी प्रकार का एक खण्डकाव्य है—'मेघदूत' के पद्यों के चतुर्थांशों को लेकर समस्या-पूर्ति के ढँग पर लिखा गया है। कहीं कहीं लेखक को अच्छी सफलता मिली है, ख़ासी काव्य-छटा नज़र आती है। स्वकृत काव्य का हिन्दी में अनुवाद भी आपने ही किया है। कहना चाहिए कि हिन्दी की अपेक्षा आपकी संस्कृत-रचना अच्छी है।

इसमें श्रीहनुमानजी के द्वारा श्रीरामजी ने श्रीजानकीजी के पास सन्देश भिजवाया है। सुग्रीव के भेजे हुए हनुमान्‌जी रामजी के पास आये और प्रणाम करने लगे—

'तस्मिन्शैले कृत-सखि-कृतिर्जातुचित् स प्लवङ्गान्,
पत्यादिष्टाञ्जनकतनयान्वेषणायावलोक्य।
स्वार्थाधानक्षममनिलजं क्ष्मां स्पृशन्तं प्रणत्या,
वप्रक्रीडा-परिणतगज-प्रेक्षणीयं ददर्श।'

इसका अनुवाद इस प्रकार है—

मित्रकार्य करने पर प्रभु ने कभी स्वपति के द्वारा पूर्ण,
सीता-प्राप्ति अर्थ समझाये कपिकुल को निहार सम्पूर्ण।
लखा स्वकार्यसिद्धि में कर्मठ मारुति को झुकते भू पर,
तिर्छे दाँतों से ढूहे को ज्यों कि ढाहता हो गजवर॥

यह भी कुछ बुरा नहीं है, अच्छा ही है।

फिर—

'तं सिद्धार्थानपि विरहितान् कान्तया कार्य्यसिद्ध्या
योक्तुं शक्तं सुरतरुमिव प्रेक्ष्य दध्यौ स रामः।
अस्यालोकाद् भवति मुदितः सर्वसौख्यान्वितोऽपि,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे?'

इसमें पूर्व दो पाद तो ठीक हैं, पर तृतीय और विशेषतः चतुर्थ चरण जमा नहीं—समस्या की पूर्ति नहीं हुई। मेघ-दर्शन पर तो चतुर्थ चरण ठीक बैठता है; पर हनुमान्‌जी के दर्शन में कैसे संगत हो? फिर सामान्य

से विशेष का समर्थन है; क्या हनुमान्‌जी भी कोई 'एजेंसी' हैं ?

'ध्यात्वैवं स प्रियशुभदशा दर्शितार्चाय तस्मै'

का अनुवाद—

'यह विचार शुभ-दृष्टि डाल के मानों प्रभु ने अर्चा की' इसमें 'मानों' अच्छा नहीं रहा। इस जगह अर्चा करने की उत्प्रेक्षा उचित नहीं है। उसका तात्त्विक रूप से वर्णन चाहिए, जैसा मूल में है।

लेखक ने लिखा है कि पहले रामजी अँगूठी से ही सब सन्देश कहने की सोचने लगे और फिर बिना कोई कारण बतलाये ही झट से, दूसरे ही पद्य में, वे हनुमान्‌जी से सन्देश कहने लगे हैं। कुल मिलाकर, पुस्तक अच्छी है। कहीं कहीं शास्त्रीजी ने कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है।

७—पद्यालय—लेखक और प्रकाशक, पण्डित श्रीजगन्नाथजी शर्म्मा, एम० ए०, हेड मास्टर, हाई स्कूल, भरतपुरा, पटना, मझोले आकार के पृष्ठ १०५ और छपाई-सफ़ाई भी मझोली ही, जिसका मूल्य बारह आने कुछ अधिक मालूम होता है।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक की विभिन्न विषयों की मौलिक और अनूदित पद्यावली है। आपने गीता के अठारहों अध्यायों का भी पद्य-बद्ध अनुवाद किया है, जो इसी पुस्तक में है। किसी-किसी पद्य में काव्य-छटा भी है। 'अछूत' शीर्षक देकर आप लिखते हैं:—

"हरि-पद से यह जन्म, हुए फिर भारतवासी;
धर्म सनातन ग्रहण किया, हो राम-उपासी।
जन-सेवा-व्रत लीन, दीनता को अपनाया;
निरख प्रलोभन-पुञ्ज धर्म गहते न पराया।
उनको अछूत कहते अरी !
जिह्वा क्यों गिरती नहीं !
क्या पत्थर तू भी (हा ! ?) हो गई ?
छाती ! जो फटती नहीं !

और भी:—

है कैसा अन्याय हाय ! भारत में छाया ;
समझा जाता बन्धु पतित अति पूत पराया !
'रामदास' का स्पर्श आज हमको खलता है;
किन्तु 'मुहम्मद' और 'जौन' कर घर मलता है !
है बुद्धि हमारी क्या हुई !
निपट बावले हो गये !
क्या ज्ञान विवेक विचार ये'
सबके सब हैं सो गये !

पुस्तक में यत्र-तत्र छन्दोभंग भी है।

८—इन्द्रार्जुन-संवाद—लेखक और प्रकाशक, कुँ० श्रीरामलालजी वर्मा, भल्ली बाज़ार, अलमोड़ा, आकार और छपाई-सफ़ाई मध्यम ; पृष्ठ-संख्या सिर्फ़ ३४, जिसका मूल्य छः आने कुछ अधिक है। भूमिका-लेखक हैं श्रीयुत गोविन्दवल्लभ पन्त, भू० पू० एम० एल० सी० और अपने प्रान्त के नेता।

महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के ग्यारहवें सर्ग का यह पद्यानुवाद है। अनुवाद की हिन्दी साफ़ है; पर कहीं कहीं छन्दोभंग है। उदाहरणः—

रणाभिलाषी सदृश पहनना यह क्यों वर्म है।
वल्कल है मुनि-वसन, अधिक बस हरिण-चर्म है।
मुमुक्षुत्व के साथ भला निःस्पृह शरीर पर,
क्या चाहिए निषङ्ग और यह धनुष भयङ्कर ?

× × ×

भूत-भयावह भीम खड्ग यम-अपर-भुजा सम,
कर सकता यह प्रकट तपस्य का क्या कभी शम ?
अभिलाषा है शत्रु-विजय की अवश्य ही मन,
कहाँ अन्यथा शस्त्र ? शान्ति-प्रिय कहाँ तपोधन ?

इस संवाद के पहले, कथा-प्रसंग भी पद्य-बद्ध दे दिया गया है ; इससे बड़ा अच्छा हुआ है।

इन्द्र, छद्म-वेश में आकर, अर्जुन को बाबा जी बन कर भगवान् का भजन करने का उपदेश करता है—वस्तुतः ऐसा करके उनके निश्चय की परीक्षा करता है। अर्जुन उसे करारा उत्तर देते हैं कि—

करके जब तक नहीं शत्रु का नाश समर में,
नहीं करूँ उद्धार वंशलक्ष्मी मुनिवर मैं।
कार्यान्वित कर सकूँ आपकी नहीं युक्ति को।
विजय-मार्ग में महा समझता विघ्न मुक्ति को।

कहीं कहीं भाषा भी शिथिल है। यह बात इन उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाती है। फिर भी, पुस्तक उपयोगी है।

९—श्रीमद्रामानन्द-दिग्विजय—मूललेखक और हिन्दी-टीकाकार, ब्रह्मचारी श्रीभगवदाचार्यजी, प्रकाशक श्रीरामानन्द-साहित्य-प्रचारक मण्डल, लहरीपुरा, बड़ोदा; आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २८०; सफ़ाई-छपाई और काग़ज़ भी अच्छा; मूल्य लिखा नहीं है, शायद बिना मूल्य वितरित होता है।

इस पुस्तक में श्रीरामानन्दजी का जीवन-चरित्र काव्यमय भाषा में और काव्य-रीति से संस्कृत में वर्णित है। ग्रन्थ बीस सर्गों में समाप्त हुआ है। और यत्र तत्र शृङ्गारादि रसों के अभिव्यंजन करने का भी प्रयत्न किया गया है। आचार्य के मुख से वैष्णव-धर्म का रहस्य और अध्यात्म-तत्त्व भी कहलाया गया है, जो बहुत अच्छा है।

श्रीरामानन्दजी का प्रादुर्भाव प्रयाग में ही श्रीपुण्य-सदन नामक समृद्ध और विद्वान् ब्राह्मण की पत्नी श्रीसुशीला देवी के गर्भ से हुआ था। इसी प्रसंग से प्रयाग का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं—

यस्यां हि सायं गृहवाटिकासु,
प्रफुल्लपुष्पानतगुल्मिनीषु।
चन्द्राननानां रमणीजनानाम्,
क्रीडाविनोदाधिरसा बभूवुः॥

और—

भागीरथीतीरसमाश्रितानाम्,
यस्यां हि सायं रमणीजनानाम्।
मुखे गृहादागमनश्रमोत्थाः,
अपःसुखं गन्धवहा अपीप्यन्॥

यस्यां = प्रयाग-नगर्याम्।

पुस्तक अच्छी है। जहाँ तहाँ छापे की अशुद्धियों के अतिरिक्त भाषा और साहित्य-सम्बन्धी असली ग़लतियाँ भी रह गई हैं। पुस्तक का यह दूसरा संस्करण है अतएव तीसरे संस्करण में अवश्य इनका संशोधन हो जायगा, ऐसी आशा है।

ब्रह्मचारीजी का श्रम श्लाघनीय है। भाषा मधुर है।

—किशोरीदास वाजपेयी

१०—प्राचीन कवि और पंडित—लेखक पूज्यपाद आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक गंगापुस्तक-माला, लखनऊ, मूल्य ॥।=) सजिल्द १।=) पृष्ठ-संख्या १३६। पुस्तक का द्वितीय संस्करण हमारे हाथ में है। इस पुस्तक में भवभूति, लोलिम्बराज, फ़ारसी कवि हाफ़िज़, बौद्धाचार्य शीलभद्र, मधुर वाणी [स्त्री कवि], सुखदेव मिश्र, हरिविजय सूरि, आचार्य दिङ्नाग अर्थात् आठ महाकवियों की कविता तथा उनका परिचय दिया गया है। भारतवर्ष की प्राचीन गरिमा के विषय में अभी पन्द्रह वर्ष भी नहीं हुए कि लोगों में बड़ा भ्रम फैला हुआ था। जिन लोगों-द्वारा उक्त भ्रम का नाश हो रहा है तथा हुआ है उनमें द्विवेदीजी का भी स्थान है। शेक्सपियर-मिल्टन शैली आदि की रचनाओं पर मुग्ध होनेवाले शिक्षित वर्ग जो भारतवर्ष के कवियों को हेय समझते हैं उनके अन्धकार को दूर करने के लिए ऐसी पुस्तकों की कितनी आवश्यकता है, कहा नहीं जा सकता। प्रथम तो संस्कृत-साहित्य के विषय में हिन्दी में पुस्तकों का अभावसा है। जो हैं वे भी पूर्ण परिचय कराने में असफल सिद्ध हो चुकी हैं। पूज्य द्विवेदीजी ने संस्कृत-साहित्य के इन दिग्गज महाकवियों पर छोटे-छोटे निबन्ध लिख कर हिन्दी-भाषी जनता का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करने का श्लाघनीय प्रयत्न किया है। ये निबन्ध पहले सरस्वती में निकल चुके हैं, गंगापुस्तकमाला ने उन्हें एकत्र कर छपवाया है।

११—सुभद्रा अथवा मरणोत्तर जीवन—लेखक वी० दी० ऋषि, बी० ए०, एल-एल० बी०। प्राप्तिस्थान लीडर प्रेस, प्रयाग। मूल्य १), पृष्ठ-संख्या १४४।

'मरने के पश्चात् जीव कहाँ जाता है,' इसी विषय पर ऋषि महोदय ने यह पुस्तक लिखी है। जिस तरह संसार के भिन्न-भिन्न भूभागों में इस विषय पर भिन्न-भिन्न मत हैं उसी तरह अपने देश में भी हैं। यह पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतवासी अच्छी तरह मानते हैं। ऋषि

महोदय ने नवीन विचारधाराओं को लेकर तथा कुछ पाश्चात्य विद्वानों के प्रभाव से प्रेरित होकर इस विषय का एक अच्छा चित्र खींचा है। यह विषय विवादग्रस्त अवश्य है। परन्तु कोई विषय विवादग्रस्त होने ही से त्याज्य नहीं है। पाठक देखेंगे कि इस पुस्तक में एक से एक कौतूहल पूर्ण घटनाओं का समावेश कराया गया है। जो इस विषय पर कुछ विश्वास रखते हैं उनको दृढ़ करने की इसमें यथेष्ट सामग्री है और जो विश्वास नहीं करते उनके लिए काफ़ी मनोरञ्जन भी इसमें प्रस्तुत है। अतः दोनों दृष्टि से यह पुस्तक पठनीय है।

—नरसिंहराम शुक्ल

१—तीन

(१)

प्राण हरने में छोटू वैद्य ।
कर रहे सचमुच ख़ूब कमाल ॥
खड़े रोते हैं सब यम-दूत ।
कि यम अब देंगे उन्हें निकाल ॥
बढ़ रही है छोटू की ख्याति ।
मिल रहा है धन, मान प्रभूत ॥
भला देखें, कब छोटू वैद्य ।
स्वर्ग में होते हैं यमदूत ॥

(२)

हुए झट बड़ी दवायें कूट ।
बन गये नागर धन को लूट ॥
हो रहे हैं अब छोटू वैद्य ।
सुधारक-दल के भी रँगरूट ॥
उन्होंने किया कहीं तो ब्याह ।
कहीं की शादी, कहीं निकाह ॥
हो गई उनकी ऊँची नाक ।
कहेगा कौन नहीं अब वाह ॥

(३)

एक दिन छोटू ने सक्रोध ।
शिकायत की बक्कू के पास ॥
दवा लेगा अब मेरी कौन ।
कर रहे हैं जब सब उपहास ॥
कहा बक्कू ने—यह क्या बात ?
झगड़ते-मरते लोग तमाम ॥
मुझे झगड़ेवालों की चाह ।
तुम्हें मरनेवालों से काम ॥

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

२—साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

दृश्य पहला

(टिकट-घर यू० पी० का कोई रेलवे स्टेशन)

शेख़रहीम—बाबू साहब दो टिकट जबलपुर के इनायत कीजिए।

बाबू—अभी ठहरो (श्यामलाल को बतलाते हुए) पहले इनको टिकट देने दो, इनको पाँच टिकट लेना है, इनको भी जबलपुर जाना है।

असदुल्ला—नहीं जनाब, इनको आप टिकट नहीं दे सकते। जनाब खांबेग फ़रमाते थे कि यू० पी० में हिन्दुओं की तादाद मुसलमानों से दुगुनी है। इसलिए जब हम जबलपुर के दो टिकट ले रहे हैं तब आप इनको चार टिकट से ज़्यादा नहीं दे सकते। जब मौलाना शौकत अली वग़ैरह ने राउंडटेबिल में इस तरह की धींगामस्ती होने देना क़बूल नहीं किया तब यहाँ हम कैसे होने देंगे ?

बाबू—गाड़ी आने का वक़्त हो गया है। क्या बढ़ बढ़ रहे हो ? हमारा वक़्त ख़राब मत करो।

रहीम—जनाब ज़रा मुँह सँभाल कर बोलिए। आप तो ईसाई हैं। आपको हिन्दुओं की तरफ़दारी नहीं करना चाहिए।

असदुल्ला—मैं हर्गिज़ श्यामलाल को पाँच टिकट न लेने दूँगा।

बाबू—(ज़ोर से) कान्स्टेबिल। निकाल दो इन दोनों को। काम में गड़बड़ करते हैं।

कान्स्टेबिल—(हटाकर) निकल जाओ।
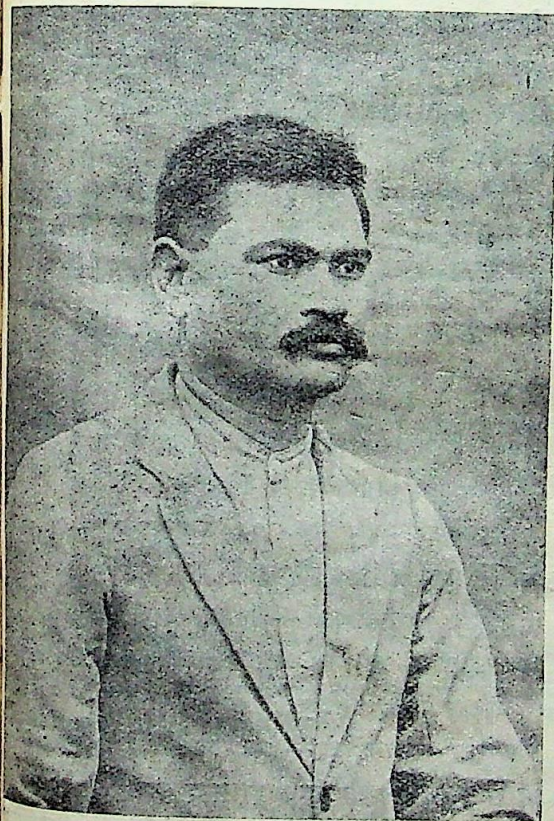
[श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर' बी० ए०, एल-एल० बी०]

बाबू—लो जी ये पाँच टिकट जबलपुर के (श्यामलाल टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म पर खड़ा होता है)

असदुल्ला—बाबू साहब गाड़ी के आने की घंटी हो गई। अब तीन टिकट दे दीजिए। उसने पाँच लिये हैं तो हम तीन लेंगे। एक जबलपुर जानेवाले किसी मुसलमान को हम और तलाश लेंगे।

बाबू—इससे हमको मतलब नहीं, लाओ तीन टिकट के रुपये।

असदुल्ला—(देते हुए) लाइए। रहीम! देखो कोई जबलपुर जानेवाला मुसलमान हो तो जल्दी ढूँढ़ लो।

(इतने में ट्रेन आगई। श्यामलाल अपने चारों हिन्दू-साथियों के सहित बैठने लगा)

रहीम—देखना ये लोग बैठने न पावें जब तक कि कोई तीसरा आदमी न मिल जाय।

असदुल्ला—ऐ गार्ड साहब! गाड़ी को ज़रा रोके रखना (श्यामलाल को पकड़ कर खींच लेता है) ठहरो जी कहाँ घुसे चले जाते हो। गिनती पूरी हो जाय तब जाने देंगे।

(गाड़ी सीटी देती है। श्यामलाल और असदुल्ला गुत्थमगुत्था होते हैं। चारों साथी छुड़ाने की चेष्टा करते हैं। रहीम भी आकर जुट पड़ता है, गाड़ी चल देती है, असदुल्ला और रहीम बुरी तरह पिट जाते हैं। लोग अलग-अलग करते हैं। श्यामलाल को भी चोट आती है। पुलिसमैन आ जाता है)

(पटाक्षेप)

दृश्य दूसरा

(अस्पताल के कमरे में नेटिव क्रिश्चियन डाक्टर साहब बैठे हैं। श्यामलाल को लेकर उसके चारों हिन्दू साथी आते हैं)

एक साथी—डाक्टर साहब चोट सिर में आई है। प्लेटफ़ार्म के ऊपर इनको उन लोगों ने पटक दिया इसलिए चोट आगई है। ज़रा देखिए, कोई हड्डी तो नहीं टूट गई।

दूसरा—सरकार ख़ून भी बहुत निकला है। मैंने उसी वक़्त से चोट की जगह हाथ से दबा रक्खी थी।

डाक्टर—अच्छा लिटा दो। यह चोट कब आई है?

एक साथी—अभी क़रीब दो घंटे पहले डाकगाड़ी के वक़्त।

डाक्टर—(देखकर) हड्डी तो नहीं टूटी है। लेकिन चोट बहुत गहरी है। कम्पाउंडर! ज़रा जल्दी टाँके लगाने का सामान लाओ (टाँके लगाता है, इतने में रहीम और असदुल्ला को लेकर तीन-चार मुसलमान आते हैं।)

एक मुसलमान—हुज़ूर ज़रा पहले इन लोगों का मुलाहिज़ा कीजिए।

डाक्टर—अभी बाहर ठहरो।

दूसरा मुसलमान—नहीं हुज़ूर पहले इनको देखिए। ये लोग जो पहले आये हैं क़ाफ़िर हैं। इन्हीं की यह सब कार्रवाई है।

डाक्टर—चुप रहो। हमको इन बातों से कोई मतलब नहीं। सीधे खड़े रहो। कुछ बकोगे तो निकाल दिये जाओगे।

एक हिन्दू—सरकार, ये लोग सीधे भी नहीं बोलते। रेलगाड़ी में न आप गये, न हमको जाने दिया और यह झगड़ा कर डाला। ये कहते थे कि जबलपुर जाने को पाँच हिन्दू गाड़ी में बैठें तो वे उस वक़्त बैठ सकते हैं जब तीन मुसलमान जबलपुर जानेवाले मिल जायँ, इसी पर ये नाहक लड़ पड़े।

डाक्टर—क्यों, इसका क्या मतलब है?

दूसरा हिन्दू—अजी साहब, कोई शौकतअली है। ये लोग कहते हैं कि गोलमेज़-सभा में उसका कहना है कि प्रतिनिधित्व संख्या के हिसाब से होना चाहिए। यू॰ पी॰ में हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से दुगुनी है, इसलिए ये कहते हैं कि उसी हिसाब से रेलगाड़ी में भी बैठो।

एक मुसलमान—आप ही बताइए कि मौलाना शौकतअली का कहना क्या हम न मानें और गांधी का कहना मानें? गांधी कहता है कि सब धान बाईस पंसेरी-वाले रास्ते से चलो। वह कहता है कि—

डाक्टर—(हँसकर) अच्छा इस वजह से यह झगड़ा हुआ है। आप लोग दोनों तरफ़वाले बड़े अक़्लमंद हैं। (हिन्दुओं से) अच्छा इस मरीज़ को कम से कम १५ दिन अस्पताल में रहना पड़ेगा। (मुसलमानों से) अच्छा पहले एक मरीज़ को लाओ।

एक हिन्दू—सरकार ऐसा नहीं हो सकता। जब दो हिन्दू अस्पताल में आकर चोटें दिखा चुकें तब आप एक मुसलमान की चोटों का मुलाहिज़ा कर सकते हैं। (मुसलमानों से) ख़बरदार पैर आगे बढ़ाया तो खोपड़ा फोड़ देंगे।

डाक्टर—चुप रहो। गड़बड़ करोगे तो मैं तुम्हारे मरीज़ को भी भर्ती न करूँगा।

दूसरा हिन्दू—कोई परवा नहीं। लेकिन बेक़ायदे काम को हम न होने देंगे। इनके मौलाना का भी तो ऐसा ही कहना है। ये लोग रेलवे स्टेशन पर यह क़ायदा बतलाते थे, अब भी इनको यही क़ायदा मानना पड़ेगा। और अब हम भी मनवावेंगे चाहे झगड़ा हो जाय।

एक मुसलमान—झगड़ा करने को क्या हम कम हैं? आ जाओ मैदान में। सिर फोड़ देंगे। (मार-पीट होने लगती है। डाक्टर पुलिस को फ़ोन करता है)।

(पटाक्षेप)

दृश्य तीसरा

(स्कूल में हेडमास्टर का कमरा। हेडमास्टर और हिन्दू और मुसलमान नायब मास्टर बैठे हैं)।

हेडमास्टर—इस साल का रिज़ल्ट आप लोगों की क्लासों का कुछ अच्छा नहीं रहा।

मास्टर इनायतअली—जनाब ठीक फ़रमाते हैं। लेकिन स्कूल की पढ़ाई में बहुत सी दिक्क़तें दर पेश हुईं और बराबर पढ़ाई नहीं हो सकी।

मास्टर राजबहादुर—इस राजनैतिक आन्दोलन की वजह से दो महीने तो स्कूल ही बन्द रहा।

हेडमास्टर—हाँ, यह ठीक है, लेकिन इम्तिहान तो किताबों के उतने ही हिस्सों में लिया गया है जितने लड़कों को पढ़ाये थे। फिर ऐसा क्यों होना चाहिए?

मास्टर अब्दुल—मेरे ख़याल से पर्चे भी कुछ कड़े थे।

हेडमास्टर—इसका क्या मतलब? क्या कोई सवाल किताब के बाहर का पूछा गया था?

पण्डित गोपालकृष्ण—जी नहीं। इन मास्टर साहब का यह कहना ठीक नहीं। बात यह है कि इस आन्दोलन के कारण स्कूल के खुल जाने के पश्चात् भी लड़कों का चित्त कई दिनों तक पढ़ने में नहीं लगा और मास्टरों का भय भी लड़कों के मन में बहुत कम हो गया है। (चपरासी आता है)

चपरासी—हुज़ूर, कुछ हिन्दू और मुसलमान जिनके लड़के पढ़ते हैं, आये हैं और कुछ पूछना चाहते हैं।

हेडमास्टर—अच्छा बुलाओ (चपरासी लेकर आता है)

एक मुसलमान—जनाब मास्टर साहब, हमको मालूम हुआ है कि जो सालाना इम्तिहान अभी आपने लिया है उसमें कुल ४० लड़के पास हुए हैं, जिनमें से १२ मुसलमानों के और २८ हिन्दुओं के हैं। याने हिन्दुओं के २४ ही पास होना था। आपने ४ ज़्यादा पास कर दिये। यह कैसी तरफ़दारी की गई है?

हेडमास्टर—बस, यही आपकी शिकायत है?

दूसरा मुसलमान—जी, हाँ जनाब।

हेडमास्टर—(हिन्दुओं से) आप क्या कहना चाहते हैं?

एक हिन्दू—हमको मालूम हुआ है कि कुल ७० लड़के इम्तिहान में बैठे थे, जिनमें ४५ हिन्दुओं के थे और २५ मुसलमानों के। इनमें मौलाना के क़ायदे से मुसलमानों के सिर्फ़ २२½ लड़के इम्तिहान में बैठ सकते थे। आपने २½ लड़के ज़्यादा क्यों बिठलाये? क्या यह मुसलमानों की तरफ़दारी नहीं है?

एक मुसलमान—अजी तरफ़दारी हिन्दुओं की की गई है। ज़्यादा लड़के पास किये हैं।

एक हिन्दू—नहीं, मुसलमानों की हुई है। ज़्यादा लड़के इम्तिहान में शरीक किये हैं।

दूसरा मुसलमान—तू झूठ बकता है।

दूसरा हिन्दू—मुँह सँभालकर नहीं बोलता। क्या शामत आई है?

तीसरा मुसलमान—अबे चुप नहीं तो सिर तोड़ दूँगा?

तीसरा हिन्दू—बजरंगी! पकड़ तो साले की दाढ़ी (गुत्थमगुत्था, मारपीट, हेडमास्टर पुलिस को फ़ोन करता है)

(पटाक्षेप)

दृश्य चौथा

(अदालत में मजिस्ट्रेट मिस्टर फ़ाक्स, रीडर और चपरासी)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी! पुकारो। सरकार, बनाम असदुल्ला श्यामलाल वग़ैरह। (चपरासी पुकारता है।) पुलिस के सिपाही तीन मुसलमान और पाँच हिन्दुओं को हथकड़ी पहनाये हुए पेश करते हैं) देखो, टुम लोग ने स्टेशन्न का प्लेटफ़ार्म पर बलवा किया। टुम लोग का दो दो साल का सज़ा हम डेटा है।

सब मुल्ज़िम—हुज़ूर बहुत गज़ब हुआ। कुछ रियायत होना चाहिए।

मिस्टर फ़ाक्स—कुछ नहीं होने सकटा।

एक मुल्ज़िम—लेकिन हुज़ूर कम से कम यह तो बतायें कि गांधी का कहना ठीक है या शौकतअली का।

मिस्टर फ़ाक्स—टुम बेवकूफ़ है। (पुलिसवालों से) ले जाओ (ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी। सरकार, बनाम नारायण-प्रसाद हुसेनख़ाँ वग़ैरह (चपरासी पुकारता है पुलिसवाले कुछ मुसलमान और हिन्दुओं को हथकड़ी पहनाये हुए पेश करते हैं) डेखो, टुम लोग ने हाँसपिटिल में जाकर मारपीट किया। इस वास्टे टुम सबको हम दो दो साल को जेल भेजना माँगटा है।

सब मुल्ज़िम—हुज़ूर बड़ी कड़ी सज़ा है।

मिस्टर फ़ाक्स—टुम बडमास लोग है? कड़ी सज़ा से ठीक होगा।

एक मुल्ज़िम—लेकिन हुज़ूर गांधी का कहना ग़लत है कि मौलाना का?

मिस्टर फ़ाक्स—टुम बेवकूफ़ है। पुलिसवाला! ले जाओ (ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी! सरकार बनाम मिर्ज़ा अकड़बेग, शंकरलाल वग़ैरह (चपरासी पुकारता है।

पुलिसवाले सात-आठ हिन्दू-मुसलमानों को हथकड़ी पहनाये लाते हैं) डेखो, टुम लोग ने स्कूल में डंगा किया, इस वास्टे टुम लोग को डो डो साल हम जेल में रखना माँगता है।

सब मुल्ज़िम—हुज़ूर, बहुत कड़ी सज़ा है।

मिस्टर फ़ाक्स—बडमास लोग को यह थोड़ी सजा है।

एक मुल्ज़िम—हुज़ूर गांधी और मौलाना के कहने में कौन का कहना ठीक है और कौन का ग़लत।

मिस्टर फ़ाक्स—टुम बेवकूफ़ हो। पुलिसवाला ले जाओ।

(ले जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—रीडर, और क्या काम कराना मांगटा है?

रीडर—हुज़ूर दो दरख़्वास्तें और पेन्डिंग हैं, एक मुसलमानों की और दूसरी हिन्दुओं की।

मिस्टर फ़ाक्स—लाओ। चपरासी! पुकारो मुसलमान डरख़ासवाला।

(पुकारता है बहुत से मुसलमान आते हैं।)

मिस्टर फ़ाक्स—डरख़ास में टुम लोग क्या माँगटा है?

एक मुसलमान—हुज़ूर पिछले हफ़्ते में इस शहर में १० मुसलमान मरे और हिन्दू सिर्फ़ १५ ही। क़ायदे से हिन्दू मरनेवालों की तादाद २० होनी चाहिए थी। इस वास्ते और ५ हिन्दुओं के मरने का हुक्म दिया जाय।

मिस्टर फ़ाक्स—(हँस कर) बेशक् टुम लोग बहुट समझडार हो। अच्छा इसका टसफ़िया इस टरह हम करना मांगटा है ५ हिन्दू जिटने डिनों में मरेगा उटने डिन तक अब कोई मुसलमान को मट मरने डो। अगर मरने डोगे तो टुम लोग को सज़ा डिया जायगा।

मुसलमान—हुज़ूर, हम मौत को कैसे रोक सकते हैं!

मिस्टर फ़ाक्स—बड्माश लोग चुप। जो हुक्म हुआ, मानना होगा।

मुसलमान—हुज़ूर, हम लोग मौलाना से इस ताल्लुक़ में सलाह लेना चाहते हैं। तब तक यह दरख़्वास्त मुल्तवी रक्खी जाय।

मिस्टर फ़ाक्स—आर्डर हो गया। टुम लोग अब अपील करने सकटा है। मुल्टवी नहीं होने सकटा। चला जाओ (जाते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—चपरासी! पुकारो हिन्दू डरख़ाश वाला।

(चपरासी पुकारता है, बहुत से हिन्दू आते हैं)

मिस्टर फ़ाक्स—डरख़ाश में टुम लोग क्या मांगटा है?

एक हिन्दू—हुज़ूर, दरख़ाश में तो यह लिखा है कि पिछले हफ़्ते में इस शहर में १२ मुसलमान बच्चे पैदा हुए और १५ हिन्दू बच्चे। मौलाना साहब के क़ायदे से मुसलमानों को आधा बच्चा और पैदा करना चाहिए था सो उन्होंने नहीं किया, इस वास्ते ऐसा करने को उनको हुक्म दिया जाय। लेकिन हम लोग इस दरख़ास्त को मुल्तवी चाहते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—क्या चाहटा है?

एक हिन्दू—हुज़ूर, पहले मौलाना से हम आधे बच्चे की परिभाषा पूछ लेना चाहते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—यह होने नहीं सकटा है। डरख़ाश उठा लो या हम आर्डर पास करेगा। हम फ़ाइल को पेंडिंग नहीं मांगटा।

एक हिन्दू—अच्छा हुज़ूर दरख़ास्त उठाते हैं।

मिस्टर फ़ाक्स—अच्छा (दरख़ास्त फेंक देता है) निकल आओ।

(चले जाते हैं)

(रीडर से) क्यों रीडर हम समजटा मुसलमान लोगवाला दरख़ाश का आर्डर इन लोगों ने सुन लिया, इससे डर गया। हिंडू लोग बहुट डरनेवाला होटा है, अच्छा जाना मांगटा है। (उठता है)

(पटाक्षेप)

—देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'

१—संघ-शासन की व्यवस्था का आयोजन

छली राउंडटेबल कान्फ़रेंस में एक प्रकार से प्रधान मन्त्री के भाषण-द्वारा यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो गई कि सरकार अपनी गत वर्ष की जनवरी की प्रतिज्ञा पर अटल है और वह यथासमय भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन की स्थापना करेगी। इस सम्बन्ध में ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल ने पार्लियामेंट की स्वीकृति के लिए अपनी नीति का सूचक जो 'ह्वाइट पेपर' निकाला है वह भी भले प्रकार वाद-विवाद के पश्चात् पार्लियामेंट के दोनों हाउसों में स्वीकृत हो चुका है। इस प्रकार अँगरेज़ सरकार ने भारत के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट कर दी है और उसका कार्य जारी करने के लिए जिन समितियों की नियुक्ति की उसने घोषणा की थी वे अपना कार्य सम्भवतः फ़रवरी के महीने से भारत में प्रारम्भ कर देंगी। इस प्रकार शासन-विधान की रचना के लिए वास्तविक कार्यवाही शुरू होगी। प्रधान मन्त्री ने प्रान्तों को आत्मशासन के अधिकार देने का स्पष्ट वचन दिया है और केन्द्र में उत्तरदायी शासन तब देने को कहा है जब फ़ेडरल शासन-विधान के अनुसार व्यवस्थापक सभायें स्थापित हो जायँगी। उनके पूर्वोक्त ह्वाइट पेपर में यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि सेना, परराष्ट्र-विभाग और अर्थ-प्रबन्ध जैसी महत्त्व की बातों को सरकार ही अपने हाथों में रक्खेगी। इस प्रकार राउंडटेबल कान्फ़रेंस से उसके निर्णयों का बहुत कुछ आभास मिल जाता है और आशा होती है कि ब्रिटिश सरकार अपने वचन का पालन करेगी और वह भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन-व्यवस्था का प्रवर्तन करेगी। यदि इस महद् अधिवेशन में इस बार अल्पसंख्यकों का मसला अधिक महत्त्व-पूर्ण रूप न ग्रहण कर जाता और उनके प्रतिनिधि दुराग्रह से काम न लेते तो शासन-विधान की रचना में अधिक सुविधा हो जाती और उसके संस्कार-कर्ताओं का काम बहुत कुछ आसान हो जाता।

परन्तु अल्प-संख्यकों के प्रतिनिधियों ने अपने-अपने सम्प्रदाय की हितरक्षा करने में यहाँ तक हठधर्मी की है कि उनकी यह मनोवृत्ति प्रधान-मन्त्री राम्से मैकडानल्ड को भी अच्छी नहीं लगी। इसीसे उन्होंने अपने भाषण में यह बात स्पष्ट कर दी है कि यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय आपस में समझौता नहीं करेंगे तो अन्त में यह काम सरकार को करना पड़ेगा। सरकार भारत के लिए सङ्घ-शासन का जो विधान बनाना चाहती है वह अपने उस महत्त्वपूर्ण कार्य को स्थगित नहीं कर सकती और जब यह कार्य सरकार करेगी तब अधिक से अधिक वह वर्तमान अवस्था में कुछ उपयोगी सुधार करके उसे अपने अनुकूल बना लेगी। इसके सिवा वह और क्या कर सकेगी? तब न तो मुसलमानों को पंजाब और बंगाल में बहुमत प्राप्त होगा, न सौ में तीस जगहें सिक्ख पायेंगे और न हिन्दुओं का संयुक्त निर्वाचन ही प्राप्त होगा। इस साम्प्रदायिक दुराग्रह का यही परिणाम होगा और इससे राष्ट्रीय भावना के उन्नत होने में बाधा पड़ेगी। मुसलमान अपनी बात पर अड़े हुए

हैं, हिन्दू अपनी बात पर। इस तरह की अड़ाअड़ी से देश की जो अपार हानि हुई है उसका अन्दाज़ा नहीं लग सकता। तथापि यह आशाजनक बात है कि अँगरेज़ सरकार अन्त में अपनी शक्ति का उपयोग करेगी और उसको यह अवस्था सुधारनी पड़ेगी। परन्तु क्या ही अच्छा होता, यदि यह साम्प्रदायिक समस्या आपस में ही तय हो जाती और देश में शान्ति का राज्य स्थापित होता। सरकार ने इसके लिए समय भी दिया है। इसके सिवा इस समस्या के हल करने का यह एक उपयुक्त समय है। इस समय देश में साम्प्रदायिक समस्या का विषम रूप दिखाई दे रहा है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास का भाव पैदा हो गया है। मुसलमानों और हिन्दुओं में जो सिर-फुटौवल आये दिन मची रहती है वह तो है ही, अछूतों और हिन्दुओं में भी संघर्ष होने लगे हैं। देश की इस समय ऐसी ही भयावह परिस्थिति है। यही नहीं, राउंडटेबल कान्फ़रेंस के अवसर पर साम्प्रदायिक नेताओं ने अपना जो रुख व्यक्त किया था उसका भी यहाँ की परिस्थिति पर बुरा ही प्रभाव पड़ा है। अतएव भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के नेताओं को इस अवस्था पर विशेष गम्भीरता से विचार करना चाहिए और आपस में ऐसा स्थायी समझौता करना चाहिए, जिससे देश में शान्ति और प्रेम की फिर स्थापना हो जाय। ऐसा ही करने पर देश के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की रक्षा हो सकेगी। साथ ही नये शासनाधिकारों के प्राप्त होने में भी अधिक आसानी हो जायगी। राउंडटेबल कान्फ़रेंस तथा देश की वर्तमान दशा हमें यही करना बता रही है।

२—दो महापुरुषों के जन्म-दिवस

गत दिसम्बर में भारत में उसके दो महापुरुषों के जन्म-दिवस मनाये गये हैं। इसके पहले ऐसी ही दो अन्य जगद्वन्द्य श्रेष्ठ आत्माओं के जन्म-दिवसों के मनाने का सौभाग्य भारत प्राप्त कर चुका है। उनमें एक महात्मा गांधी हैं, जिनकी ६३ वीं वर्षगाँठ गत आक्टोबर में मनाई गई है। महात्माजी ने संसार के सम्मुख नवीन ढंग से सत्य और अहिंसा का जो सिद्धान्त रख कर मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है, उससे भारत की संस्कृति का शिर ऊँचा हुआ है। दूसरी हैं श्रीमती बेसेंट, जिन्होंने भारत को अपनी मातृ-भूमि बनाकर उसकी राष्ट्र-भावना को जाग्रत करने का श्रेष्ठ कार्य किया है। आज भारत में राष्ट्रीय विचार जो इतने व्यापक रूप से दिखाई देते हैं उसका अधिकांश श्रेय श्रीमती बेसेंट को प्राप्त है। उन्होंने भारत की जो अनुपम सेवा की है उससे उन्होंने भारतीयों को अपना चिरकृतज्ञ बना लिया है। यह भारत के लिए सौभाग्य की बात है कि उसने उनकी ८५ वीं वर्षगाँठ गत वर्ष धूमधाम से मनाई है। यही नहीं, इस सम्बन्ध में जो अभी तक कमी रही है उसकी भी पूर्ति उसने गत दिसम्बर में अन्य दो महापुरुषों की जन्म-तिथियों पर पूर्ण कर दी है। ये महापुरुष हैं पण्डित मदनमोहन मालवीय और डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर। इन दोनों श्रेष्ठ व्यक्तियों के वय का ७० वाँ वर्ष इसी दिसम्बर में पूरा हुआ है। कविवर रवीन्द्रनाथ ने अपनी अद्वितीय साहित्यिक रचनाओं के द्वारा जगत्प्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर भारत को विशेष रूप से गौरवान्वित किया है। उनकी विश्वभावनापरक दार्शनिकता ने सारे संसार के मनीषियों को मुग्ध किया है और वे इस समय संसार के एक विशिष्ट व्यक्ति गिने जाते हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय तो भारतीय राष्ट्र के अनन्य सेवक हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश देश-सेवा के पवित्र कार्य में ही लगाया है और इस समय अपनी वृद्धावस्था में भी वे एक युवक की भाँति उसकी स्वाधीनता के आन्दोलन में तन-मन से लगे रहते हैं। देश की अपनी इन दोनों महान् विभूतियों की जयन्तियाँ मनाकर देशवासियों ने वस्तुतः अपने कर्तव्य का ही पालन किया है। भगवान् करे, देश के हमारे ये दोनों महापुरुष चिरंजीवी हों और इनके अथक प्रयत्नों से देश की प्रभूत समुन्नति तथा गौरव-वृद्धि होती रहे।

३—वर्तमान ईरान

ईरान एशिया का प्राचीन इतिहास-प्रसिद्ध देश है। परन्तु अन्य एशियाई प्राचीन देशों की भाँति उसका भी

पाश्चात्य सभ्यता के आगे पराभव हुआ। अन्त में जब उसकी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अवमानना हुई तब वह सावधान हुआ। इसी से बीसवीं सदी के आरम्भ होने पर ईरान के कुछ लोकनायकों ने (सन् १९०५ में) तेहरान में विद्रोह कर दिया। तत्कालीन शाह मुज़फ़्फ़रुद्दीन कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने विद्रोहियों से समझौता करके उत्तरदायी शासन के स्थापित करने की प्रतिज्ञा ही नहीं की, किन्तु दूसरे वर्ष ही उन्होंने ६० प्रतिनिधियों की पार्लियामेंट स्थापित करके प्रतिनिधिमूलक शासन-व्यवस्था जारी कर दी। परन्तु ईरान के भाग्य में शान्ति-सुख नहीं लिखा था। मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह की शीघ्र ही मृत्यु हो गई और उनके पुत्र मुहम्मदअली शाह ने सिंहासन पर आसीन हो जाने के बाद अपने पिता की सारी कारवाई को उलट दिया। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध मजलिस के भङ्ग करने तथा शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने की घोषणा कर दी, साथ ही मजलिस-भवन को तोपों से उड़वा दिया। लोकनेता नये शाह के स्वभाव से भले प्रकार परिचित थे, अतएव उन्होंने शाह का सामना किया। इस गृह-युद्ध में शाह की हार हुई और उन्हें रूस को भाग जाना पड़ा। उनके स्थान पर उनके पुत्र अहमद मिर्ज़ा गद्दी पर बठाये गये और शासन की बागडोर मजलिस ने सन् १९०९ में अपने हाथ में ली।

इस प्रकार यद्यपि ईरान को अपने को सुव्यवस्थित करने का अवसर मिल गया था, परन्तु अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण वह कुछ न कर सका। उलटा वह पिछले योरपीय महायुद्ध की समाप्ति तक रूस और ग्रेट-ब्रिटेन के आतङ्क का शिकार बना रहा, और यदि रूस में बोलशेविकों का राज्य न स्थापित हो जाता तो भगवान् ही जाने उसकी क्या गति होती।

महायुद्ध के बाद सबसे पहले रूस ने अपनी सेनायें ईरान से हटाईं और ईरान को उसकी स्वाधीनता की रक्षा का आश्वासन दिया। रूस के इस सद्व्यवहार का अच्छा प्रभाव पड़ा। ग्रेटब्रिटेन ने भी अपनी सेनायें दक्षिणी ईरान से हटा लीं और महायुद्ध के समय उस भाग में उसने अपनी सुविधा के लिए रेल-तार आदि का जो आयोजन किया था वह भी सब ईरान-सरकार को सौंप दिया। इस प्रकार जब अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की अनुकूलता के कारण ईरान पड़ोस के बलवान् राज्यों के चंगुल से निकल कर स्वाधीनता प्राप्त कर रहा था उस समय ईरान में एक आदमी का अभ्युदय हो रहा था जो बाद को ईरान का शाह हुआ। इसका नाम रज़ाख़ाँ था। गत दस वर्षों से ईरान का शासन इन्हीं नरपुंगव के हाथों में है। और इनके उदार शासन में ईरान में राष्ट्र-भावना का विशेष रूप से उद्भव हुआ है। लखनऊ-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर मुहम्मद हबीब का कहना है कि जिन धार्मिक मुल्लाओं ने सन् १९०६ के प्रजतन्त्री विधान में अपनी स्थिति दृढ़ बना ली थी और जिन्होंने सन् १९२४ के प्रजातन्त्री आन्दोलन को हराम घोषित कर दिया था उनकी आज वहाँ ज़रा भी प्रतिपत्ति नहीं है। सन् २४ में वहाँ की मजलिस ने रज़ाख़ाँ को ईरान का बादशाह घोषित कर मुल्लाओं की कुटिल चाल से देश की रक्षा कर ली। और अब तोरज़ाशाह के दृढ़ शासन में वे नाममात्र के ही मुल्ला रह गये हैं। देश के किसी भी सार्वजनिक कामों में उनको महत्त्व नहीं दिया जाता। फ़ारसवाले तो अब यह कहने लगे हैं कि उनको किसी भी काम में सम्मिलित करना पाप है। वे न तो उनके फ़तवे मानने को तैयार हैं और न वे उनके बताये हुए धर्मान्धता के सिद्धान्तों को ही स्वीकार करते हैं। उन मुल्लाओं में बहुत से नज़रबन्द कर दिये गये हैं और शेष शान्त हो गये हैं।

उक्त प्रोफ़ेसर महोदय ने अपने एक भाषण में कहा है कि अब ईरानी लोग मुल्लाओं की प्रभुता से मुक्त होकर अपने देश को समुन्नत करने को यत्नवान् हुए हैं। डाक्टर मिल्स पाग और उनके अमेरिकन सहयोगियों ने १९२२-२७ में वहाँ की आर्थिक अवस्था का अध्ययन किया था और उसके सुधार के उपाय बताये थे। आज-कल आग़ा हसन तक़ीज़दा जो वर्षों तक निर्वासन में रह चुके हैं, कुशलता-पूर्वक अर्थ-विभाग का कार्य-संचालन कर रहे हैं। क़रीब क़रीब राज्य के सभी

विभाग नूतन ढंग पर संगठित हुए हैं। वर्षों से घोर यत्न करने पर वहाँ की सरकार दुर्दमनीय जातियों का दमन करने में और शान्ति स्थापित करने में फलीभूत हुई है। वहाँ की पुलिस विनम्र है। साधारण जनता से मालिक की बराबरी नहीं बल्कि सेवक की नाईं व्यवहार करती है। वहाँ की स्त्रियों में भारतीय स्त्री-समाज की नाईं पर्दा नहीं है। वे स्वतन्त्र विचर सकती हैं और एक दूसरे के मकान पर आ-जा सकती हैं। आज-कल बड़े-बड़े शहरों और गाँवों में स्त्रियाँ मोज़े और गौवन तक व्यवहार करने लगी हैं। जब वे बाहर निकलती हैं तब कोई-कोई मुँह पर पतली चादर ओढ़ लेती हैं। पर तेहरान की समुन्नत स्त्रियों ने मुँह पर चादर ओढ़ना भी छोड़ दिया है। आशा की जाती है कि निकटभविष्य में पुरानी रूढ़ियाँ विलुप्त हो जायँगी और ईरान अपनी उदार और सजग सरकार के प्रयत्नों से एशिया का एक समुन्नत राष्ट्र हो जायगा।

४—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का इक्कीसवाँ अधिवेशन श्रीकिशोरीलाल गोस्वामीजी के सभापतित्व में झाँसी में सानन्द मनाया गया। कहा जाता है कि इस वर्ष सम्मेलन के अवसर पर साहित्यसेवियों की उपस्थिति अच्छी नहीं थी। यदि इसका कारण देश की वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति तक ही परिमित नहीं है तो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-सञ्चालकों को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हें यह बात कभी न भूलनी चाहिए कि सम्मेलन के अधिवेशनों की सफलता उनमें साहित्य-सेवियों के अधिकाधिक संख्या में उपस्थित होने पर ही निर्भर है। इसके लिए उन्हें अधिवेशन के कार्य-क्रम को विशेष रोचक और उपयोगी बनाना चाहिए तथा प्रसिद्ध साहित्य-सेवियों को विशेषरूप से आमंत्रित करना चाहिए।

हर्ष की बात है कि पहली बात की ओर सम्मेलन का ध्यान गत वर्ष से ही है। अपने कार्य-क्रम को रोचक और आकर्षक बनाने के लिए उसने अपने कलकत्तावाले अधिवेशन में प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन के साथ साहित्य-परिषद्, इतिहास-परिषद्, दर्शन-परिषद्, और विज्ञान-परिषद् भी करने का निश्चय किया था। तदनुसार इस बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यक्रम में विशेष परिवर्तन किया गया। पहले की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक रूप देने के लिए उसने अपने साथ साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास की अलग-अलग परिषदें की हैं। इन सबके अलग-अलग सभापति थे। प्रधान सम्मेलन के सभापति हिन्दी के वयोवृद्ध सेवक गोस्वामी किशोरीलालजी महाराज मनोनीत हुए थे।

गोस्वामीजी भारतेन्दुजी के समय के हिन्दी के पुराने लेखक हैं। आपने अनेक मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद छोटे छोटे उपन्यास लिखे हैं। उनमें कई एक बड़े-बड़े भी हैं। आप व्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि हैं। आप बहुत वृद्ध हो गये हैं। इस समय आप भारतेन्दुजी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखा रहे हैं। आप भारतेन्दु के समय के मूर्तिमान् इतिहास हैं। आपने हिन्दी को अपने सामने उगते और बढ़ते देखा ही नहीं है, किन्तु उसको समुन्नत भी किया है। ऐसे वयोवृद्ध साहित्य-महारथी को अपना सभापति बनाकर सम्मेलन ने अपने उपयुक्त काम किया है।

सभापति पूज्य गोस्वामीजी ने अपने भाषण में हिन्दी के गत पचपन वर्षों की समालोचना करते हुए बहुत सी नई बातें बताईं। आपने छायावाद की कविताओं का स्वागत किया, क्योंकि आज से बयालीस वर्ष पूर्व छायावाद पर आप स्वयं भी कविताएँ कर चुके थे। अतुकान्त कविताओं पर भी प्रकाश डाला और कहा कि तुकान्त और अतुकान्त का झगड़ा बन्द करना चाहिए और अतुकान्त को बे तुका न कहना चाहिए, नहीं तो संस्कृत की सारी कविताएँ बेतुकी कही जा सकेंगी। गोस्वामीजी ने एक विचित्र बात और कही जिस पर आज तक किसी ने भी प्रकाश नहीं डाला था। आपने तर्कों से यह सिद्ध किया कि वर्तमान हिन्दी-भाषा किसी की बेटी, पोती या परपोती नहीं है और न यह किन्हीं भाषाओं के संघर्ष अथवा संसर्ग से उत्पन्न हुई है, ऐसा कहना हिन्दी को दोगली बतलाना होगा। आपने

यह कहा कि जैसे बाल्य यौवन, प्रौढ़ और वार्द्धक्य अवस्थाओं में रूपान्तरित होता रहता है उसी प्रकार वर्तमान हिन्दी भी संस्कृत-भाषा का रूपान्तर है। इस प्रकार हिन्दी की उत्पत्ति बतलाकर गोस्वामीजी ने ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी व्यापकता का विवेचन किया और बताया कि मुसलमानों के शासन-काल में वह अपने राष्ट्रीय-पद पर आसीन रही। इसके बाद जब अँगरेज़ी काल में प्रान्तीयता का .जोर बढ़ा तब हिन्दी की क्या गति हुई, इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा—

बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि जिस रूप में थी, उसी प्रान्तीय रूप में वह पुष्ट की जाने लगी। किन्तु युक्त-प्रदेश में जहाँ वह अपने असली रूप में बच रही थी, दबा देने का भारी आयोजन किया गया और यह बताया गया कि हिन्दी नाम की कोई भाषा ही नहीं है और यदि रही भी तो उसमें ऐसी पुस्तकें नहीं हैं जिनसे बच्चों को आरम्भिक शिक्षा दी जा सके। किन्तु राजा शिवप्रसादजी ने हिन्दी का पक्ष लिया और स्वयं पुस्तकें लिखने और सरकार को देने लगे। चटसालों में हिन्दी-भाषा और देवनागरी लिपि को स्थान मिल गया, पर म्युनिसिपलिटी, ज़िला बोर्ड, पुलिस और अदालतों में फ़ारसी-लिपि में लिखी जाने-वाली हिन्दी-भाषा को जगह दी गई, जो उर्दू के नाम से औरङ्गज़ेब के ज़माने से पुकारी जाने लगी थी। राजा साहब ने नागरी लिपि और हिन्दी-भाषा को जीवित रखने का यत्न तो किया, पर साथ ही वह जिस साहित्य का निर्माण कर रहे थे वह लोगों की प्यास न बुझा सका। अतएव प्रकृति ने श्रीहरिश्चन्द्रजी को इसके लिए आगे बढ़ाया और इन दोनों महारथियों और इनके मित्रों के घात-प्रतिघात से हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि दिन दूनी और रात चौगुनी फूलने-फलने लगी। इन सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप सरकार ने राजा साहब को 'सितारे हिन्द' बनाया और देश ने श्रीहरिश्चन्द्रजी को 'भारतेन्दु'। उधर सरकारी 'सितारा' चमका, इधर 'इन्दु' भी दीप्यमान हुआ।

बङ्गाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों में प्रान्तीय भाषायें और लिपियाँ पाठशालाओं, म्युनिसिपलटियों, ज़िला बोर्डों, कचहरियों आदि में चलती थीं, इसलिए वहाँ के अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों का अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाओं और लिपियों से सम्बन्ध बना रहा और जिनकी लेखनी सुरसुराई उन्होंने अँगरेज़ी और प्रान्तीय भाषाओं में पुस्तकें लिखीं और प निकाले। किन्तु इन प्रान्तों में हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि का विस्तार पाठशालाओं में ही समाप्त हो जाता था। इसलिए जो अँगरेज़ी-भाषा के पण्डित हुए उनका हिन्दी से कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता था, क्योंकि जीवन-निर्वाह के लिए उन्हें अँगरेज़ी और उर्दू का ही सहारा लेना पड़ता था, अतएव फ़ारसी-लिपि में लिखी जानेवाली हिन्दी जिसे उर्दू के नाम से पुकारा जाता है, खूब ही खुल खेली और उसे हिन्दी से दूर भगा ले जाने के लिए उसमें अरबी, फ़ारसी आदि शब्दों की भरमार की जाने लगी। अँगरेज़ीदाँ लोगों के यहाँ हिन्दी "मसतूरात की ज़बान" रही। कंठ में ही समस्त विद्याओं के धारण करनेवाले संस्कृतज्ञ विद्वानों के यहाँ 'अछूत' के रूप में हिन्दी-भाषा का अनादर रहा, सरकारी दफ़्तरों और अदालतों में घुसने का हिन्दी का कोई अधिकार था ही नहीं और सितारेहिन्द तथा भारतेन्दु भी गगनमण्डल से सिधार चुके थे, ऐसे अन्धकारमयी रजनी के शेष भाग में हिन्दी का भविष्य आशा और निराशा के झूले में झूलने लग गया।

ऐसे समय में मुट्ठी भर विभूतियों ने हिन्दी-भाषा और नागरी-लिपि के लिए अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये और इसे किसी न किसी प्रकार जीवित बनाये रक्खा। कुछ ऐसे अधिरथी और महारथी भी साहित्य-क्षेत्र में आये जिन्होंने हिन्दी-साहित्य के ख़ज़ाने में जो कुछ पाया उसके लिए कवियों और ग्रन्थकारों को कोसना आरम्भ किया। व्रजभाषा और हिन्दी को अलग बताना प्रारम्भ किया और जिन काव्यों तथा ग्रंथों ने लाखों अपढ़ों को हिन्दी-भाषा पढ़ने के लिए बाध्य किया था, उनके लिए झाड़ू और टोकरा सँभाल लिया। एक ओर व्रजभाषा और हिन्दी दो भाषायें बताई जाने

लगीं और दूसरी ओर सूर, बिहारी, केशव, पद्माकर, भूषण आदि हिन्दी कवि के रूप में परिचित कराये जाने लगे। यह 'वदतो व्याघात' अनेक धाराओं से बहने लगा और इसकी समाप्ति कहाँ जाकर होगी यह भगवान् ही जाने! ऐसी नींव पर उठाये गये हिन्दी-भाषा के इतिहास-भवन कब तक ठहर सकेंगे? साथ ही जहाँ अन्य प्रांतीय भाषाओं के कवि और ग्रन्थकार प्रान्तीयता के पुजारियों-द्वारा सिरों पर चढ़ाये जाने लगे, वहाँ हिन्दी के गद्य और पद्य के लेखक 'गणेश थोपड़ी' का पुरस्कार पाने-मात्र के अधिकारी समझे जाने लगे।

हिन्दी के सेवकों में जो प्रेम और सहयोग था वह समाप्त हो गया एवं दलबन्दी और गुटबन्दी का विस्तार किया जाने लगा और किसी कवि या लेखक की सफलता या असफलता 'महन्तों' और 'दलपतियों' के ऊपर निर्भर हो गई। समालोचना के शस्त्र-प्रहार से धुरन्धर लेखक धराशायी किये गये और प्रशंसा के पुल से अकिंचन भी इन्द्रासन के अधिकारी बनाये गये। इस परिस्थिति में भी जिन्हें मातृ-भाषा की लगन थी वे 'निर्वातनिष्कम्पमिव प्रदीपम्' के समान अपने व्रत का पालन करते ही रहे।

साहित्य-परिषद् भूतपूर्व माधुरी-सम्पादक पण्डित कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल-एल० बी० के सभापतित्व में हुई। विज्ञान-परिषद् के सभापति श्रीयुत हीरालाल खन्ना, एम० एस-सी०, दर्शन-परिषद् के सभापति श्रीयुत गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम० ए० और इतिहास-परिषद् के डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए०, डी० एस-सी०, डी० लिट् बनाये गये थे। इस तरह कार्य-विभाजन-द्वारा इस बार कार्यारम्भ किया गया है। सम्मेलन का यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। आशा है, इस कार्य-पद्धति से सम्मेलन का कार्य अधिक सुन्दरता से सम्पन्न होगा। सम्मेलन के अधिवेशन २८,२९,३० और ३१ दिसम्बर को हुए। दूसरे दिन सम्पादक-सम्मेलन की बैठक जबलपुर के दैनिक 'लोकमत' के सम्पादक पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र के सभापतित्व में हुई। तीसरे और चौथे दिन कवि-सम्मेलन की बैठकें हुईं। इस प्रकार इस बार सम्मेलन का अधिवेशन विशेष आडम्बर के साथ किया गया है। भगवान् करे, सम्मेलन अपने प्रयत्न में सफल हो। सम्मेलन हिन्दी की एक-मात्र सर्वदेशीय संस्था है। अतएव प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का यह कर्तव्य है कि वह इस संस्था के कार्य के साथ क्रियात्मक सहानुभूति रक्खे। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इधर कई वर्ष से सम्मेलन का रंग-ढंग अच्छा नहीं रहा है, परन्तु उसके वर्तमान संगठन से जान पड़ता है कि वह अब पहले के रोग से तो मुक्त हो गया है, और अब उसका काम एक ढंग से होगा। भगवान् करे, ऐसा ही हो।

सम्मेलन का आगामी अधिवेशन ग्वालियर में होगा। हम चाहते हैं कि इस बार सम्मेलन को पहले अधिवेशनों से भी अधिक सफलता प्राप्त हो।

५—दक्षिणी अफ़्रीका की दूसरी कान्फ़रेंस

दक्षिणी-अफ़्रीका के प्रवासी भारतवासियों को दबाने तथा उन्हें नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित करने के लिए वहाँ की यूनियन सरकार जो चालें चलती रही है, उसका विरोध भारत-सरकार आरम्भ से ही करती आई है। उसकी दृष्टि में वहाँ के प्रवासी भारतवासियों की समस्यायें अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से तो महत्त्व-पूर्ण हैं ही, साथ ही साम्राज्य की दृष्टि से भी हेय नहीं हैं। इसी भावना से प्रेरित होकर लन्दन की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भारत-सरकार ने इस सम्बन्ध में विशेष ज़ोर डाला था। सन् १९२१ ईसवी की उक्त कान्फ्रेंस में वहाँ के गोरे निवासियों के ही समान प्रवासी भारतवासियों को भी नागरिकता के अधिकार दिलाने की दृष्टि से इसका वाद-विवाद हुआ था और यह भी निश्चय हुआ था कि यूनियन सरकार को भारतीयों को नागरिकता के अधिकार देने चाहिए। परन्तु वहाँ की सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। सन् १९२३ ईसवी की इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भी जब इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तब दक्षिणी अफ़्रीका के प्रधान प्रतिनिधि जनरल स्मट्स ने इसे ठुकरा दिया। तब से इम्पीरियल

कान्फ्रेंस ने इस सम्बन्ध में फिर कभी कोई विचार नहीं किया। किन्तु बार बार असफल होकर भी भारत-सरकार इस दिशा में उदासीन नहीं हो सकी, यूनियन सरकार से वह बराबर लिखा-पढ़ी करती रही। अन्त में सन् १६२७ की जनवरी में यूनियन सरकार ने अपने यहाँ भारत-सरकार का एक प्रतिनिधि रखना स्वीकार कर लिया, जो भारतीय प्रवासियों की हित-रक्षा का ध्यान रक्खेगा और उनका तथा यूनियन सरकार का मध्यस्थ होकर रहेगा। इन दोनों सरकारों के बीच में इसी आशय का एक स्वीकृति-पत्र लिखा गया और यह निश्चित हुआ कि दोनों ही ओर से इस समझौते को कार्यरूप में परिणत करने का पूर्ण रूप से प्रयत्न किया जायगा और यदि आवश्यकता हुई, तो परिवर्तन के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होता रहेगा। परन्तु भारत अपने इस समझौते में विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सका।

इस समझौते में दक्षिणी अफ़्रीका में योरपीय सभ्यता को प्रश्रय देने के लिए भारतवासियों की संख्या कम करने की सबसे अधिक महत्त्व की शर्त थी। इस बात को सिद्धान्त-रूप में स्वीकार करने के लिए भारत-सरकार पर ज़ोर डाल कर यूनियन सरकार ने उसकी सहमति प्राप्त कर ली, साथ ही अपने इस उद्देश की पूर्ति में उसने उसका पूर्ण सहयोग भी प्राप्त किया। इसके बदले में उसने भारतीय प्रवासियों पर से भेद-भाव उठा लेने का वचन दिया अवश्य, किन्तु वह केवल भारतवासियों को अपने देश से खदेड़ने में भारत-सरकार का सहयोग प्राप्त करने के लिए। इस समझौते के बाद वहाँ के गोरे निवासी उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जब दक्षिणी-अफ़्रीका में भारतवासी इनी-गिनी संख्या में ही मिल सकें। अस्तु।

इस समझौते के द्वारा प्रवासी भारतवासियों को वापस लेने का प्रस्ताव स्वीकार करके भारत-सरकार ने उन बहुसंख्यक प्रवासी भारतीयों के अधिकारों पर जो दक्षिणी-अफ़्रीका में ही उत्पन्न हुए थे, आघात पहुँचाया, साथ ही और भी कितनी ही ऐसी बातें स्वीकार कर लीं जिनसे भारतवासियों को यथेष्ट क्षति उठानी पड़ी, किन्तु हर तरह का लाभ उठा कर तथा शान्तिप्रिय भारतवासियों को दबाकर भी यूनियन सरकार समझौते पर पूर्णरूप से दृढ़ न रही, इन्हें तङ्ग करने के लिए वह अपना प्रयत्न बराबर करती रही। भारतवासियों को वहाँ से भारत भेजने का ही प्रयत्न करके वह सन्तुष्ट नहीं रह सकी, मादक द्रव्यों की खपत पर नियन्त्रण करने के बहाने से उसने इस आशय का भी एक क़ानून तैयार किया कि जिन कारख़ानों में शराब या उसके लिए बोतलें आदि बनाई जाती हों, वहाँ कोई एशियाई या आदिमनिवासी न रक्खा जाय, और न ऐसे लोग शराब की दूकानों पर ही नौकरी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की और भी कितनी ही छोटी, बड़ी बातें हैं।

दक्षिणी अफ़्रीका से भारतवासियों को भारत भेजने के लिए जो नियम बना था वह उसके उद्देश की पूर्ति के लिए यथेष्ट नहीं हुआ। उस नियम के अनुसार जितने आदमी वहाँ से भारत के लिए लौटे उनके तिगुने फिर वहाँ पहुँच गये। तात्पर्य यह है कि दक्षिणी अफ़्रीका में जितने भारतीय स्थायी रूप से बस गये थे, उनके स्त्रियों-बच्चों के भी वहाँ पहुँच जाने पर भारतवासियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई। इससे वहाँ के गोरे निवासियों का रुष्ट होना स्वाभाविक था, किन्तु कुड़मुड़ा कर रह जाने की अपेक्षा निर्दिष्ट समय अर्थात् पाँच वर्ष तक और उपाय ही क्या था। समझौते की अवधि अब समाप्त हो गई है और वहाँ के प्रवासी भारतवासियों, तथा गोरी जातियों की परिस्थिति पर विचार करने तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा व्यक्तिगत अधिकारों का निर्णय करने के लिए दूसरी कान्फ्रेंस होने जा रही है। आशा है, इस बार भारतीय प्रतिनिधि गत अनुभव से काम लेंगे और कोई ऐसा समझौता करेंगे जिससे वहाँ के प्रवासी भारतवासियों की सभी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी और वे सच्चे नागरिकों का अधिकार प्राप्त कर वहाँ सम्मान-पूर्वक अपना जीवन बिता सकेंगे।

—ठाकुरदत्त मिश्र

६—मौलिकता का भूत

मौलिकता अभिनन्दनीय वस्तु है। किसी भी भाषा के साहित्य का मूल्य उसकी मौलिक थाती से ही आँका

जाता है। उसके गौरव का अन्दाज़ा उसकी मौलिक रचनाओं से ही लगता है। जिस भाषा में मौलिक रचनाओं की न्यूनता होती है उसकी गणना हीन श्रेणी में की जाती है। मौलिकता वास्तव में राष्ट्र के जीवन का निदर्शक है। साहित्य में भी उसकी क़द्र का यही कारण है और इसी से जो जाति उन्नतिपथ पर अग्रसर होती है वह अपने साहित्य के मौलिक रूप की ओर निगाह रक्खे तो उसका यह काम सर्वथा उचित ही होता है। परन्तु मौलिकता का भूत सवार होना दूसरी बात है। सन्तोष की बात है, इस समय हिन्दी में मौलिकतावादी शान्त हैं और हिन्दी के साहित्य-निर्माण का कार्य अपने स्वाभाविक ढङ्ग से शान्तिपूर्वक होता जा रहा है। मौलिक रचनायें पहले की अपेक्षा अधिक संख्या में दिखाई देने लगी हैं, यह सही है, साथ ही यह भी सही है कि मौलिकतावादियों की अवमानना से जो अनुवाद-कार्य शिथिल हो गया था उसने फिर क़दम उठाया है और इस बार अधिक तेजस्विता-सूचक रूप में। पिछले दिनों जिन ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद हुआ है उनकी नामावली देखने से अनुवाद-कार्य के महत्त्व का पता लग जाता है। अगर दो वर्ष के भीतर हमें प्रेमचन्दजी के ४ उपन्यास पढ़ने को मिले तो वैसे ही महत्त्वपूर्ण सोलह उपन्यास-ग्रन्थ हमने अन्य भाषाओं से अनुवाद कर लिये तो क्या बेजा हुआ? वर्तमान हिन्दी-प्रेमी भी इसे अब बेजा नहीं समझते, यह हिन्दी की उन्नति का शुभ लक्षण ही है।

मौलिक रचनायें रचिए, कौन मना करता है! मौलिकता के गुण-गान कीजिए, बाधा कोई नहीं डालेगा। पर आप हिन्दी के भूतपूर्व साहित्यकारों की जो विगर्हणा करते हैं, पुराने साहित्यकार का नामोल्लेख करके जब आप यह कहने लगते हैं कि उन्होंने तो सिर्फ़ दूसरी भाषाओं के कुछ ग्रन्थों का अनुवाद किया है, उनमें इतनी ही मौलिकता थी कि उन्होंने साहित्य के अभाव का अनुभव कर दूसरी भाषाओं के सद्-ग्रन्थों का अनुवाद किया और इससे अपनी मातृ-भाषा के साहित्य-भाण्डार की वृद्धि की, बस, इससे अधिक उन्होंने और क्या किया, तब यह बात उचित नहीं लगती है।

इस तरह के विचार रखनेवाले हिन्दी-विरोधी महानुभावों की आँखें अब खुल जानी चाहिए। उन्हें समझ लेना चाहिए कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा के रूप में सर्वत्र स्वीकृत हो चुकी है। अभी हाल में सुदूर ट्रावनकोर राज्य की व्यवस्थापक सभा में उस दिन वहाँ के स्कूलों में हिन्दी के प्रचलित किये जाने के सम्बन्ध में जो वाद-विवाद हुआ था उससे उसका महत्त्व और भी स्पष्ट हो जाता है। उस सभा के एक मुसलमान सदस्य तक ने हिन्दी का गौरव यह कह कर स्वीकार किया है कि उसका उर्दू से अधिक मेल है और यही एक भाषा है जिससे दो विभक्त जातियाँ एक हो सकती हैं। हिन्दी की ऐसी अवस्थिति में उपर्युक्त ढङ्ग के विचार संयत नहीं माने जा सकते।

अब रहा यह कि हिन्दी का साहित्य-भाण्डार ख़ाली है, सो यह शिकायत एक अंश तक ठीक है। यह हम मानने को तैयार हैं कि आधुनिक सभ्यता के साहित्य का उसमें बहुत कुछ अभाव है। परन्तु इसके साथ हम यह भी ज़ोर देकर कह सकते हैं कि हिन्दी के प्रवीण लेखकों ने इस सम्बन्ध में अपनी ओर से ज़रा भी कोर कसर नहीं की और गत तीस चालीस वर्षों के भीतर जो कुछ लिखा गया है वह सब आधुनिक सभ्यता के साहित्य की ही रचना है। जब हिन्दी-साहित्य का विवेचना-पूर्ण इतिहास लिखा जायगा तब इस काल का महत्त्व भले प्रकार स्वीकार किया जायगा। खेद है कि हिन्दी-लेखक दलबन्दी के फेर में पड़ कर उस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। अपने अपने दलों के सुलेखकों को ही अभी वे दाद दे रहे हैं। परन्तु जिस दिन उनकी निगाह काशी और कलकत्ते से हट कर पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रदेश, बिहार एवं संयुक्त-प्रान्त के दूसरे नगरों पर पड़ेगी और वे साहित्य की प्रगति का सिंहावलोकन करेंगे तब हमारी उदयोन्मुख हिन्दी का वास्तविक रूप प्रकट होगा।

७—समालोचकों के प्रति

इधर पिछले दिनों हिन्दी के दो-तीन पत्रों में हिन्दी के मासिक पत्रों की वर्तमान गति-विधि के सम्बन्ध में कुछ लेख प्रकाशित हुए हैं और उनमें उनकी आलोचना की गई है। ऐसी आलोचनायें सदैव अभिनन्दनीय हैं। और सबसे अधिक उत्साह-जनक बात तो यह है कि हमारी हिन्दी में समालोचकों का जो अभाव था उसकी पूर्ति के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। यह सच है कि समालोचना करना सब किसी का काम नहीं है। यह कह देना भर समालोचना नहीं है कि अमुक पत्रिका में अच्छी कवितायें नहीं निकलतीं या अमुक के लेखों का चुनाव अच्छा नहीं होता। तथापि यह उसका प्रारम्भिक रूप है, प्रारम्भ में ऐसी त्रुटि अनिवार्य है। इस अवस्था की उपेक्षा कर हिन्दी के पाठक उस दिन की धैर्य के साथ राह देखेंगे जब वे अपने विद्वान् समालोचकों को अपनी उचित समालोचनाओं-द्वारा साहित्य की उपयुक्त सेवा करते देखेंगे। अनेक लोग यह जानने के लिए उद्ग्रीव रहते हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा का साहित्य-भाण्डार उसे कैसे उज्ज्वल ग्रन्थ-रत्नों से अलङ्कृत किया जा रहा है। अतएव यह अधिकाधिक आवश्यक होता जाता है कि हिन्दी के समालोचक आगे आकर बतावें कि आधुनिक हिन्दी में इधर पिछले दिनों कहाँ कैसा काम हुआ है। हमारा अपने इन कतिपय समालोचक महानुभावों से यह अनुरोध है कि जहाँ वे सामयिक पत्र-पत्रिकाओं की उल्टी-सीधी खोज-ख़बर लेते रहते हैं, यदि कुछ और आगे आकर हिन्दी के सुलेखकों तथा सुकवियों की भी कभी कभी जाँच-पड़ताल कर लिया करें तो उससे साहित्य का और भी अधिक हित होगा। उदाहरण के लिए हम यहाँ हिन्दी के उपन्यास-लेखकों की बात लेते हैं। श्रीयुत प्रेमचन्द, श्रीयुत जयशङ्करप्रसाद, श्रीयुत बेचन शर्मा 'उग्र', श्रीयुत जैनेन्द्र कुमार। इन्हीं चार महानुभावों की रचनाओं की भली-बुरी चर्चा अभी तक हुई है। परन्तु उनकी इतनी ही संख्या नहीं है। और भी अनेक महानुभावों ने उपन्यास लिखे हैं। परन्तु समालोचकों के अभाव से उनकी रचनाओं के जौहर नहीं प्रकट हुए। ऐसे लेखकों में बाबू वृन्दावनलाल, श्रीयुत सुदर्शन, श्रीयुत ऋषभचरण जैन, श्रीयुत भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला,' श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी, श्रीयुत राजेश्वरप्रसाद-सिंह, श्रीमती तेजरानी दीक्षित, श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल, श्रीयुत सद्गुरुशरण अवस्थी, श्रीयुत चतुरसेन शास्त्री, श्रीयुत श्रीनाथसिंह, श्रीयुत शम्भुदयाल सक्सेना आदि के लिखे हुए उपन्यास सुपाठ्य हैं। यहाँ स्वर्गीय मन्नन द्विवेदी और चण्डीप्रसाद का भी उल्लेख करना उचित है। परन्तु अभी तक हम इन लोगों की रचनाओं का महत्त्व हृदयङ्गम नहीं कर पाये। हिन्दी के इस अभ्युदयकाल में अपने सुलेखकों के प्रति यह उपेक्षा-भाव क्या वाञ्छनीय है? परन्तु यह सब कुछ करने में परिश्रम करना पड़ेगा, अललटप्पू लिख देने से यहाँ थोड़े ही काम चलेगा? यह हमारे साहित्य के रक्षक समालोचकों का कर्तव्य होना चाहिए कि अपने इन प्रतिभावान् लेखकों की क़द्र करें और इनका परिचय दूसरे हिन्दी-प्रेमियों को करावें। ऐसा करने से साहित्य का हित होगा। इन पारखियों को चाहिए कि अपने सत्कार्य को अब शिथिल न होने दें और अधिक अध्ययनशील होकर अपनी प्रतिभा का उपयोग सत् समालोचना के कार्य में लगाकर हिन्दी के नये लेखकों के लिए मार्ग-दर्शक बनें।

८—नव वर्ष

गत वर्ष संसार के लिए अच्छा नहीं रहा। कहीं भूचाल, कहीं बाढ़ और कहीं गृह-युद्ध हुए, जिससे उसने मनुष्य-समाज को घोर कष्ट पहुँचाया। उसकी सबसे बड़ी भीषणता अर्थ-संकट की उस आँधी के रूप में प्रकट हुई जो अब भी संसार के बड़े बड़े राष्ट्रों को हिला रही है। भारतवर्ष के लिए तो वह और भी बुरा रहा। उसने पंडित मोतीलाल नेहरू, महाराजा महमूदाबाद, मौलाना मुहम्मद अली, मिस्टर के० टी० पाल, रायबहादुर आनन्दस्वरूप, मिस्टर केशवचन्द्र राय, पंडित विष्णु दिगम्बर, मिस्टर पी० टी० श्रीनिवास आयङ्गर, श्रीमती

सदाशिव ऐय्यर, और श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी जैसे लोकनेताओं को समय के पर्दे में छिपा दिया। उसका कठोर हाथ हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, गर्मदल, नर्मदल, पंडित, संगीतज्ञ और स्त्री सब पर बराबर पड़ा। किसी के साथ उसने कोई रियायत नहीं की।

कानपुर और तिनावली में आग से बड़ी क्षति पहुँची। बङ्गाल में बाढ़ आजाने से क़रीब २,५०० मील गिर्द के लोग बे-घर-बार होगये। इसके द्वारा जान-माल की जो हानि हुई सो अलग। गत वर्ष साम्प्रदायिक दङ्गे भी हुए। रावलपिंडी, मुलतान, लाहौर, बनारस, आगरा, और मिर्ज़ापुर में हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य दङ्गे के रूप में फूट पड़ा और कानपुर में तो वह अपनी चरम सीमा को पहुँच गया—जहाँ न देव-स्थानों का कोई ख़याल किया गया और न स्त्री-बच्चों का। लोगों ने आपस में लड़कर अपने आप अपने जीवन को नरक बना डाला।

देश के दुर्भाग्य से गत वर्ष हिंसात्मक क्रान्ति से सम्बन्ध रखनेवाली घटनायें भी हुईं। ईश्वर के अदृश्य हाथों ने बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर ई० हाटसन और कलकत्ता के योरोपियन एसोसिएशन के सभापति मिस्टर विलियर्स की रक्षा कर ली। तो भी हमें खेद है कि मेदनापुर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर जेम्स पेड्डी, अलीपुर के सेशन जज मिस्टर गार्लिक, ढाका के मजिस्ट्रेट मिस्टर डनरो और कोमिल्ला के मजिस्ट्रेट मिस्टर स्टीवेन्स आदि सरकारी अफ़सरों की हत्यायें हो ही गईं। ब्रह्मदेश का विद्रोह अभी तक चला जा रहा है और काश्मीर जैसे सुन्दर स्थान को भी भीषण अशान्ति का सामना करना पड़ा। इन सब बातों ने गत वर्ष में कोई ख़ूबी नहीं रहने दी।

गत वर्ष भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति भी बड़ी डावाँडोल रही। राउंडटेबुल कान्फ़्रेंस के दो अधिवेशन हुए। दूसरे में कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी भी सम्मिलित हुए। इन दोनों कान्फ़्रेंसों के बीच में दिल्ली का समझौता हुआ। और यही गत वर्ष की सबसे बड़ी घटना कही जा सकती है। इसने भारतवर्ष के राजनैतिक जीवन की धारा को एक नई दिशा की ओर प्रवाहित किया।

इसी समय विलायत की सरकार में भी परिवर्तन हुए। मज़दूर-सरकार टूट गई और उसके स्थान पर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हुई। पर इसका राउंडटेबुल के कार्य पर कोई प्रभाव न पड़ा। यदि व्यर्थ की साम्प्रदायिक अड़चनें न उपस्थित हो जातीं और कान्फ़्रेंस का अधिकांश समय अल्पमत और बहुमत के झगड़े में न लग जाता तो यह कान्फ़्रेंस बहुत अंशों में सफल कही जा सकती थी।

कान्फ़्रेंस के अन्त में यद्यपि महात्मा गांधी ने कहा कि हमारे रास्ते यहाँ से अलग हो रहे हैं, तथापि उन्होंने यह भी कहा कि कोई आन्दोलन आरम्भ करने से पहले वे समझौते के लिए कोई उपाय शेष न रहने देंगे। परन्तु इस समय हालत जैसी गम्भीर हो उठी है वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। सरकार ने बङ्गाल, सीमा-प्रान्त और संयुक्त-प्रान्त में नये आर्डिनेन्स जारी किये हैं। इधर कांग्रेस ने भी सत्याग्रह-संग्राम को पुनर्जीवित करने का प्रस्ताव पास किया है। इस प्रकार पुराना वर्ष देश को एक भीषण परिस्थिति में डाल कर चला गया है।

यह जानते हुए भी कि देश का भविष्य अन्धकारमय है हम नव वर्ष का स्वागत करते हैं। भारतवर्ष की राजनैतिक समस्या के इसी वर्ष में हल होने की आशा है। क्या अच्छा हो कि समझौते की कोई सूरत निकल आवे और सन् १९३२ भारतवर्ष के राजनैतिक गगन में सुख-शान्ति और आशा के उज्ज्वल तारे की भाँति उदित हो उठे।

—श्रीनाथसिंह

९—एक प्रतिवाद

मुंशी कन्हैयालाल हिन्दी के बड़े प्रेमी और सुलेखक हैं। आप अपने एक लम्बे पत्र में हमें लिखते हैं—

"महोदय,

दिसम्बर की सरस्वती के "वर्षान्त में" शीर्षक के सम्पादकीय विचार में आपने सब हिन्दी की मासिक पत्रि-

कार्यों का ब्योरा देते समय "चाँद" जो कि इलाहाबाद ही से निकलता है और जिसने अभी अभी अपने जीवन के दशम वर्ष में पग रक्खा है एक-दम भुला दिया। जब कि बहुत-सी नवजन्मा पत्रिकाओं को स्थान दिया गया है। यह तो असंभव है कि एक ऐसी नामी पत्रिका का आपको ज्ञान नहीं। यदि ऐसा है तो मैं इस अवसर पर आपको विदित कर देना चाहता हूँ। यदि आपने यह सोचा हो कि "चाँद" हिन्दी पत्रिकाओं में स्थान पाने योग्य नहीं है तो आपने अपने निर्णय करने में शीघ्रता की। यदि आपकी भूल से ऐसा हुआ है तो कृपया मेरा यह पत्र छाप दीजिए।"

[चाँद का नाम हमें उक्त नोट लिखते समय नहीं याद रहा। खेद है, हम अपने प्रसिद्ध सहयोगी चाँद के साथ-साथ माया, सहेली, त्रिवेणी, आर्य-महिला आदि जैसी सुन्दर पत्रिकाओं का भी नामोल्लेख करना भूल गये थे।—सम्पादक]

१०—चित्र-परिचय

इस अङ्क में जो चार तिरङ्गे चित्र दिये गये हैं वे प्रसिद्ध चित्रकार पूर्ण बाबू की चित्रकारी के सुन्दर नमूने हैं। मुखपृष्ठ के चित्र में उन्होंने भगवान् शङ्कर के प्रसिद्ध ताण्डव-नृत्य का चित्रण किया है। शेष तीनों चित्रों में कृष्णचन्द्र और राधाजी के अभिसार और उनके मिलन के दृश्यों का अङ्कन किया गया है। पूर्ण बाबू अपने इन चारों पौराणिक चित्रों में तत्सम्बन्धी भावों की अभिव्यक्ति में भले प्रकार सफल हुए हैं। सभी चित्र भावपूर्ण और नयनाभिराम हैं।

नव प्रकाशित पुस्तकें

रूपक रहस्य

(रायसाहब बाबू श्यामसुन्दर दास और पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल)

(हिन्दी में नाट्यशास्त्र की अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। सारी पुस्तक को नौ अध्यायों में विभक्त करके उसमें नाटक के प्रायः सभी अंगों पर विशदरूप से विवेचन किया गया है। मूल्य २)

उद्धव-शतक

(श्रीयुत 'रत्नाकर')

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति व्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए० का यह नया खण्ड काव्य है। हिन्दी-साहित्य में कृष्ण-काव्य में गोपिकाओं के विरह-निवेदन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। श्रीयुत रत्नाकरजी की यह नई रचना उस विषय के पुराने कवियों की रचनाओं जैसी ही सुन्दर और सरस है। इसका गेट-अप और छपाई भी अभिनव है। रंगीन स्याही से छपी हुई सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य दो रुपये हैं।

हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

(श्रीयुत नन्ददुलारे बाजपेयी)

यह रायसाहब श्रीयुत श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा लिखित हिन्दी-भाषा और साहित्य नामक ग्रन्थ का संक्षिप्त संस्करण है। इसकी सहायता से हिन्दी-साहित्य के इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान भली भाँति प्राप्त किया जा सकता है। मूल्य ॥=)

छुटकारा

शरद् ग्रन्थावली की यह नवीन संख्या है। लेखक के अन्यान्य उपन्यासों के ही समान यह भी बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद है। मूल्य १) एक रुपया।

शुभ सूचना — शीघ्र प्रकाशित हो रही है

हिन्दी की सर्वोत्तम कहानियाँ

संग्रहकर्त्ता तथा भूमिकालेखक

मु० कन्हैयालाल, एम० ए०, एम० आर० ए० एस०

हिन्दी में कहानियों का यही सर्वोत्तम संग्रह होगा। इसमें हिन्दी के सभी प्रसिद्ध कहानी लेखकों की उत्तमोत्तम रचनायें प्रकाशित हो रही हैं, कहानियों की संख्या लगभग १२५ तथा पृष्ठ-संख्या १००० से ऊपर होगी। मूल्य ७॥) साढ़े सात रुपये। किन्तु अभी से आर्डर भेजने वालों के लिए केवल ६) छः रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad

F. 4

केवल सात रुपये में

फ़ोटोग्राफ़ी

अर्थात्

घर बैठे फ़ोटोग्राफ़र बनने का सबसे आसान तरीक़ा

फ़ोटो खींचने के लिए जिन-जिन बातों का जानना ज़रूरी है, उन सबका इस पुस्तक में समावेश किया गया है और स्थान-स्थान पर चित्र देकर एक-एक बात को ऐसे विस्तार के साथ समझाया है कि शिक्षार्थी के हृदय में शंका का लेश तक नहीं रह जाता। भारतीय भाषाओं में यह पुस्तक अपने विषय की बेजोड़ तो है ही साथ ही अँगरेज़ी तथा अन्यान्य उन्नत भाषाओं में भी इसके टक्कर की बिरली ही पुस्तकें मिलेंगी।

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

शुभ संवाद ! लाभ की सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्त्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् डाक्टर भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। सुन्दर जिल्द है। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शङ्कायें पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अच्छा हो कि ऐसी शङ्काओं का समाधान जिज्ञासु पाठक, इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ की सहायता से घर बैठे कर लिया करें। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्यायें सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। मूल्य ४) चार रुपये। महाभारत के स्थायी ग्राहकों से केवल २॥) ढाई रुपये।

मैनेजर बुकडिपो—**इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्तप्रांत, प्रयाग की पुस्तकें

(१) **मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था**—लेखक, मिस्टर अब्दुल्लाह यूसुफ़अली, एम० ए०, एल्-एल्० एम०। सुन्दर छपाई, बढ़िया काग़ज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के १०० पृष्ठ, उर्दू या हिन्दी संस्करण, मूल्य १।)

(२) **मध्यकालीन भारतीय संस्कृति**—लेखक रायबहादुर महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा। सुन्दर छपाई बढ़िया काग़ज़, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के २३० पृष्ठ तथा २४ हाफ़टोन चित्र, मूल्य ३)

(३) **कवि-रहस्य**—लेखक, महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा एम० ए० डी० लिट्। सजिल्द, रायल साइज़ के ११६ पृष्ठ, मूल्य १।)

(४) **चर्म बनाने के सिद्धान्त**—लेखक, बाबू देवीदत्त अरोरा, बी० एस-सी०। सचित्र, आयवरी फ़िनिस पेपर, कपड़े की जिल्द, रायल साइज़ के ३०४ पृष्ठ, मूल्य ३)

(५) **हिन्दी सर्वे कमेटी की रिपोर्ट**—लेखक, रायबहादुर लाला सीताराम, बी० ए०, मूल्य १॥)

(६) **अरब और भारत के सम्बन्ध**—लेखक, मौलाना सय्यद सुलैमान साहब नदवी; उर्दू या हिन्दी संस्करण, मू० ४)

(७) **जन्तु-जगत्**—लेखक, बाबू ब्रजेशबहादुर, बी० ए०, एल्-एल्० बी०। सचित्र मूल्य ६॥)

(८) **धोखा-धड़ी**—(Skin Game by J. Galsworthy)—अनुवादक, पण्डित ललिताप्रसाद शुक्ल, एम० ए०, मूल्य १।॥)

(९) **चाँदी की डिबिया**—(Silver Box by J. Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचन्द, बी० ए०। मूल्य १॥)

(१०) **न्याय**—(Justice by J. Galsworthy)—अनुवादक बाबू प्रेमचन्द, बी० ए०, मूल्य २।)

(११) **हड़ताल**—(Strike by J. Galsworthy)—अनुवादक, बाबू प्रेमचन्द, बी० ए०, मूल्य २)

मिलने का पताः—

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

चार भागों में

जिस हिन्दी-शब्दसागर का सम्पादन करने में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा नियुक्त किया हुआ सम्पादक-मण्डल वर्षों से लगा था, जिसके समान बड़ा, विस्तृत और अच्छा कोष हिन्दी में क्या, दूसरी भाषाओं में भी किसी का ही निकला होगा—पूरा हो गया। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी को इस कोष का संग्रह अवश्य करना चाहिए। पूरा कोष कपड़े की सुन्दर और मज़बूत जिल्द बँधे हुए चार भागों में विभक्त है।

प्रत्येक भाग का मूल्य १२॥)

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

हिन्दू-सभ्यता का प्राचीनतम निदर्शन

सचित्र

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

संसार के साहित्य में आदि-कवि महर्षि वाल्मीकि की रामायण का बड़ा उच्च स्थान है। हिन्दू-जाति तो रामायण को अपनी सभ्यता का प्राण ही समझती है, किन्तु संसार की अन्यान्य सभ्य जातियों में भी इस ग्रन्थ-रत्न का यथेष्ट आदर है। जैसे यह धार्मिक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण है, वैसे ही ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से भी बड़े गौरव के साथ पढ़ी जाती है। वास्तव में इस ग्रन्थ की एक एक पङ्क्ति अमूल्य है। यह पुस्तक उसी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते और मूल पुस्तक पढ़ने में असमर्थ हैं, वे भी इस अनुवाद की सहायता से महर्षि वाल्मीकि की रामायण को पढ़कर आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

राम लक्ष्मण और सीता

यह अनुवाद इतना सरल और मधुर है कि इसे कम पढ़े-लिखे लोग भी आसानी से समझ लेते हैं। इस प्रकार यह पुस्तक बूढ़े-जवान और स्त्री-बच्चे सभी के काम की है। प्रत्येक हिन्दू के घर में इसकी एक प्रति अवश्य होनी चाहिए।

पुस्तक भर में रंगीन और सादे चित्रों की भरमार है।

मूल्य १०) दस रुपये

मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

भारतवर्ष के इतिहास में **मौर्य-साम्राज्य का** विशेष महत्त्व है। इसके संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में स्मिथ साहब ने लिखा है कि भारत के प्रथम सम्राट् (चन्द्रगुप्त मौर्य) ने उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त किया था जिसके लिए ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ में आहें भरते हैं और जिसको सोलहवीं और सत्तरहवीं सदी के मुग़ल-सम्राटों ने भी कभी पूर्णता के साथ नहीं प्राप्त किया।

ऐसे महत्त्वपूर्ण युग का क्रमबद्ध तथा प्रामाणिक इतिहास हिन्दी में क्या अँगरेज़ी में भी अभी तक प्राप्य नहीं था। हर्ष का विषय है कि गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक तथा इतिहास के प्रोफ़ेसर **श्रीयुत सत्यकेतु विद्यालङ्कार** ने इस कमी को पूरा कर दिया है।

यह पुस्तक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अँगरेज़ी आदि भाषाओं के कितने ही प्रामाणिक तथा महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों का मन्थन करके लिखी गई है। भारतीय पुरातत्त्व-विभाग से छाँट कर इसमें कई प्रामाणिक तथा नयनाभिराम चित्र भी प्रकाशित किये गये हैं।

इसकी मौलिकता तथा प्रामाणिकता पर मुग्ध होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने लेखक को अपने गोरखपुर के अधिवेशन में १,२००) रुपये का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक प्रदान किया है।

सचित्र पुस्तक का मूल्य ५)

योरुप का इतिहास

बहू-बेटियों को उपहार देने योग्य पुस्तकें

स्त्रियों के कोमल हृदय पर सती तथा पतिव्रता नारियों के जीवन-चरित पढ़ने से जो प्रभाव पड़ सकता है, वह अन्य पुस्तकों से नहीं। यदि आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर मातायें बनें एवं सुचरित्रा तथा सुशीला बनें और गृहस्थी सोने की हो जाय तो नीचे लिखी भारतीय विदुषियों के चरित्र उन के हाथों में अवश्य दीजिए।

पतिव्रता

सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला-इन छः पतिव्रताओं के चरित का इसमें सङ्ग्रह है। इसकी भाषा बहुत ही सीधी सादी है। वर्णन-शैली भी बहुत अच्छी है। हमारे देश की प्रत्येक हिन्दी पढ़ी-लिखी स्त्री को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य १), सुन्दर संस्करण १॥)

पतिव्रता गान्धारी

प्रातःस्मरणीया पति-परायणा सती गान्धारी का यह उज्ज्वल चरित्र बड़ी मनोहर तथा सरल भाषा में नये ढँग से लिखा गया है। भारतीय स्त्रियाँ इस पुस्तक से पातिव्रत्य, धर्मपरायणता, अतिथि-सेवा, क्षमा, सार्वजनिक प्रेम, धैर्य, शील, शान्ति और सुख इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत कुछ सीख सकती हैं। मूल्य ॥=)

भारतीय विदुषी

इस पुस्तक में प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक की भारती, उर्वशी, लीलावती, आत्रेयी, मन्दालसा, देवहूति, गार्गी, मैत्रेयी, मीराबाई, जेबुन्निसा, गुलबदन बेगम, लक्ष्मीबाई आदि आदि कोई ४० देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। इसमें स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातें ऐसी हैं जिनके पढ़ने से पढ़नेवालियों के हृदय में विद्यानुराग की लालसा प्रबल हो जाती है। मूल्य ॥)

रामायण का सार

शिक्षा का भाण्डार

यह जगन्माया, त्रिभुवनसुन्दरी सती सीता का चरित हिन्दू बालक-बालिकाओं और गृहलक्ष्मियों के पढ़ने योग्य सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न और हिन्दी-साहित्य का सुललित शृङ्गार है। इसके पढ़ने से एक ही साथ इतिहास, पुराण, काव्य, नाटक,

उपन्यास और नीतिशास्त्र का आनन्द मिलता है। यह राजनीति, धर्मनीति, समाज, जाति और गार्हस्थ्य नीति की कुंजी है। इसके पढ़ने से घर-घर में सुख-शान्ति का निवास होता है। पृष्ठ-संख्या २३४, सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) सुन्दर संस्करण २।)

मिलने पता—मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

आदर्श महापुरुषों के जीवन-चरित्र

स्वदेश-प्रेम को जाग्रत तथा उन्नत करने के लिए प्रसिद्ध पुरुषों का चरित अवश्य पढ़ना चाहिए और विचार करना चाहिए कि किन कारणों से इन पुरुषों ने इतना नाम पाया। नामी आदमियों का चरित पढ़ने से मनोरंजन भी होता है, इतिहास-ज्ञान भी बढ़ता है और उन बातों का अनुकरण करने की इच्छा भी होती है। अस्तु। निम्नलिखित जीवन-चरितों को मँगाकर अवलोकन कीजिए:—

विद्यासागर

प्रातःस्मरणीय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अनेक गुणों और कार्यावली का इसमें विस्तृत, वर्णन है। इसकी जोड़ का जीवन-चरित, इस समय, भारत की किसी भी भाषा में नहीं पाया जाता। यदि आप अपनी सन्तान को कर्मवीर, निडर, देशभक्त और जाति-सेवक बनाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक की अपेक्षा बढ़िया साधन आप को न मिलेगा। मूल्य केवल ३), सुन्दर संस्करण ३॥)

गारफील्ड ॥)

महादेव गोविन्द रानडे

न्यायमूर्ति रानडे प्रसिद्ध देशभक्त और समाज-सुधारक हो गये हैं। सरकारी नौकर होने पर भी वे सदा किसी न किसी रूप में देश-सेवा किया करते थे। राजा और प्रजा सभी के यहाँ उनका मान था। देश और समाज की उन्नति के लिए कटिबद्ध, अनेक सज्जन उनको गुरु का आसन देते हैं। पृष्ठ-संख्या पाने चार सौ से ऊपर। मूल्य केवल १॥)

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि ।=)

अकबर

प्रसिद्ध मुग़ल-सम्राट अकबर का यह सविस्तर जीवन-वृत्तान्त है। इसके पढ़ने से आपको बादशाह अकबर से सम्बन्ध रखनेवाली बहुतेरी नई-नई बातें मालूम होंगी। बादशाह ने बहुत छोटी उम्र में ही राज्य सँभाल कर बड़े विचित्र काम किये थे और हिन्दू-मुसलमानों के भेदभाव से बच कर शासन किया था। मूल्य केवल १)

इस पुस्तक में फ्रांस के प्रसिद्ध वीर सम्राट नेपोलियन के जीवन की प्रायः समस्त छोटी बड़ी घटनाओं का समावेश हो गया है। नेपोलियन की शिक्षा, सरकारी नौकरी में प्रवेश, सम्राट की गद्दी तक पहुँचना, यूरोप के भिन्न भिन्न नरेशों के साथ सन्धि-विग्रह, प्रजा-पालन-चातुरी, कार्यदक्षता, उसके पश्चात् फ्रांस की दशा आदि का वर्णन इस ग्रन्थ में है। हिन्दी में नेपोलियन का ऐसा विस्तृत जीवन-चरित अब तक नहीं था। पृष्ठ-संख्या ६५० से ऊपर। मूल्य २॥), सुन्दर संस्करण ३)

मिलने का पता—मैनेजर बुकडिपो, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

उपन्यास-जगत् में शरद् बाबू के उपन्यास चमकती हुई किरणें हैं, जो गार्हस्थ्य-जीवन को प्रकाशित कर देती हैं। इन्हें ... मनुष्य अँधेरे से उजाले में आ जाता है। संसार की प्रायः सभ... भ...
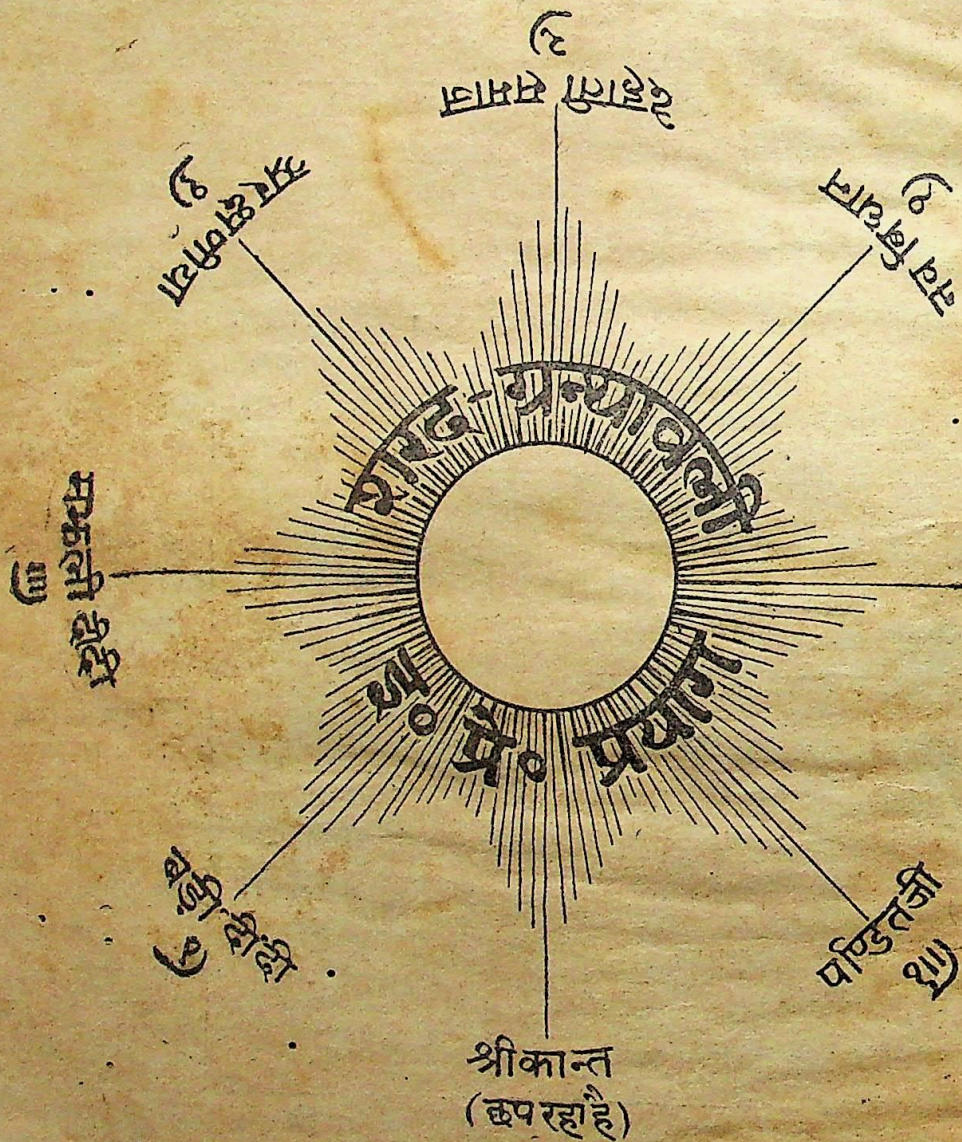
इन्हें अपना लिया है। यदि आप उपन्यास-प्रेमी न हों तो भी ... अनुरोध से इन्हें सफल जीवन की कुंजी समझ कर एक बार पढ़ ... इसका नया ग्रन्थ 'लेन-देन' भी प्रकाशित हो गया है। मूल्य २) दो ...

नोट—॥) आठ आने प्रवेश-फीस भेजकर स्थायी ग्राहक हो जाने से शरद्-ग्रन्थावली के सब ... मूल्य में ही मिलेंगे।

SARASWATI—Reg. No. A-248

भू-प्रदक्षिणा

मूल-लेखक

श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर

अनुवादक

हिन्दी के यशस्वी लेखक

पण्डित रूपनारायण पाण्डेय
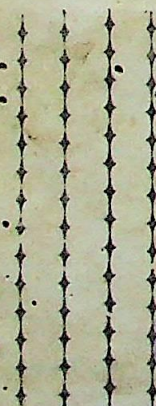
यह पुस्तक कई वर्ष के कठिन परिश्रम से तैयार की गई है। लेखक महोदय ने जो कुछ लिखा है, स्वयं उसका अनुभव किया है, और जिस स्थान या वस्तु का वर्णन किया है, स्वयं उसे देखा है। इसके पन्ने उलटते ही धन-धान्य तथा व्यापार-व्यवसाय के केन्द्र विशाल नगरों के दृश्य आँखों के सामने नाचने लगते हैं। भिन्न भिन्न देशों के निवासियों की रहन-सहन, उनका स्वभाव तथा वहाँ की प्राकृतिक अवस्था का सजीव चित्र 'भू-प्रदक्षिणा' की सहायता से आप घर बैठे देख सकते हैं।

यदि देश-विदेश की बातें पढ़कर व्यवहार-कुशलता और चतुरता प्राप्त करनी हो तो इस अमूल्य पुस्तक को मँगाकर अवश्य पढ़िए और थोड़े व्यय में अपूर्व मनोरञ्जन तथा साथ ही साथ ज्ञान-सञ्चय भी कीजिए।

पृष्ठ-संख्या ७८०, चित्र-संख्या ३७, मनोरम जिल्द, मूल्य केवल ५) पाँच रुपये।

मैनेजर (बुकडिपो)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग